मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतन

MAITHLISHRAN GUPT : WOMEN CONSCIOUSNESS IN POETRY

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

को पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

संजय सिंह बैरवा

शोध–निर्देशिका

डॉ. विजयलक्ष्मी सालोदिया

हिन्दी विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूँन्दी

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2018

CERTIFICATE

Ifeel great pleassure in certifying that the thesis entitled

'मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतना'
(MAITHLISHRAN GUPT : WOMEN CONSCIOUSNESS IN POETRY)

संजय सिंह बैरवा (SANJAY SINGH BAIRWA)

He has completed the following requirements as per Ph.D regulations of the University .

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the University (200 days).

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented his work in the departmental committee.

(e) Published minimum of one research paper in a referred research journal,

I rcommend the submission of thesis.

24-1-18

डॉ. (श्रीमती) विजयलक्ष्मी सालोदिया

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूँन्दी (राज.)

Date : 24.01.2018

डॉ. (श्रीमती) विजयलक्ष्मी सालोदिया
विभागाध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बूँन्दी (राज.)
टेलीफोन : 0747 – 2445415

बी. आर. 546
न्यू कॉलोनी
बूँन्दी (राज.)
मो.9468524551

दिनांक : 24.01.18

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **संजय सिंह बैरवा** ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा को पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए **'मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतना'** शीर्षक से अपना शोध–प्रबन्ध मेरे निर्देशन में पूर्ण किया है। प्रतिपाद्य विषय को पढ़ने, समझने और हृदयंगम करने में इनकी अभिरूचि ने सर्वत्र योगदान देकर इस विषय को गहराई से विश्लेषित किया है। अतएव मैं इसे मूल्यांकन हेतु अग्रेषित करती हूँ। साथ ही मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

24-1-18
शोध निर्देशिका

डॉ. (श्रीमती) विजयलक्ष्मी सालोदिया

GOVERNMENT COLLEGE, BUNDI (RAJ.)

Department of Hindi

PRE-SUBMISSION SEMINAR CERTIFICATE

This is to certify that :-

1) A pre-submission seminar for Ph.D. Thesis was held on 18.01.2018 in the Department of Hindi, Govt. College, Bundi.

2) In this seminar Shri **SANJAY SINGH BAIRWA** research scholar in the Department of Hindi gave a presentation on his topic "मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतना"

3) All the members present in the meeting appreciated the presentation given by Shri **SANJAY SINGH BAIRWA.**

4) On behalf of all the members we recommend the thesis to be submitted for the degree of Ph.D.

18-1-18 | 18-1-18 | 18-1-18

Dr. Vijay Laxmi Salodia
Supervisor

Head of Department
Hindi

Principal
Govt. College, Bundi

Candidate's Declaration

I, hereby, certify that the work, which is being presented in the thesis, entitled **' MAITHLISHRAN GUPT : WOMEN CONSCIOUSNESS IN POETRY'** in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy, carried under the supervision of Professor / **Dr. Vijay Laxmi Salodia** and submit ted to the (University Department **of Department of Hindi, Govt. College, Bundi (Raj.)** /University Center/ Research Center), University of Kota, Kotarepresents my ideas in my ownwords and where others ideas or words have been included. I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any Institutions. I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea /data /fact /source in my submission. I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

Sanjay Singh Bairwa

Date : 24.01.2018

This is to certify that the above statement made by **Sanjay Singh Bairwa** (Enrolment No. **2000/19349**) is correct to the best of my knowledge.

Date: 24.01.2018

24-1-18

Dr. Vijay Laxmi Salodia
Head of Department
Govt. College, Bundi (Raj.)

प्राक्कथन

सृष्टि सृजन में महत्वपूर्ण योगदान रखने वाली नारी की स्थिति में सदैव परिवर्तन होते रहे हैं। स्त्री पुरुष कि सहगामिनी है। वह बुद्धि में पुरुषों की अपेक्षा किसी भी प्रकार से कम नहीं है। पुरुषों की तरह वह भी स्वतंत्रता पाने की अधिकारी है। इसी नूतन भावना को बलवती बनाने में कवि गुप्त की नारियों ने समाज, राष्ट्र और विश्व में अपनी अलग पहचान बनाई है।

बाल विवाह, प्रर्दाप्रथा का विरोध, शिक्षा का प्रचार–प्रसार, तत्कालीन आंदोलनों में महती भूमिका, विधवा विवाह निषेध एवं संकीर्ण मनोवृत्ति, कुरीतियाँ, शराबखोरी पर लगाम लगाना मानो उनका शगल बन गया है। रूढ़ियों से दो–दो हाथ होना, कष्ट झेलना, यातना झेलना उनकी नियती बन गई थी। किन्तु समय ने करवट बदली महिलाओं की दुःख भरी स्थिति को साहित्यकारों ने देखा परखा और अपने अमृत कलश में स्थान दे सुशोभित किया। महिलाओं ने अपने लिए नई ज़मीन तैयार की जिसका बीजारोपण ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः'' में देखने को मिलता है।

हिन्दी साहित्य की राष्ट्रीय काव्यधारा एवं नारी चेतना के प्रबल समर्थक, प्रखरचिंतक, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भारतीयता एवं नारी स्वाभिमान जागृत करने वाले कालजयी कवि है। वे आस्था, धार्मिक सहिष्णुता व राष्ट्रप्रेम के उदात्त विचारों के महानायक थे। उनका काव्य भारत की प्राचीन संस्कृति और राष्ट्र की गौरव गाथा से अभिमंडित है। सर्वहारा वर्ग के हितैषी, साहित्य मर्मज्ञ व जननायक कवि के रूप में उनका हमारे लिए इससे अनूठा मार्गदर्शन और क्या हो सकता है ? उनका मानवता का यह महत्वपूर्ण संदेश कालजयी बन गया है।

मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए जिऐ,
मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे,

मैंने आधुनिक हिन्दी काव्य के भीष्म पितामह राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतना को जानने का प्रयास प्रस्तुत शोध प्रबंध को सात अध्यायों में विभाजित कर किया है।

प्रथम अध्याय – 'मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' के अन्तर्गत उनका जीवन परिचय, परिवार, शिक्षा, जीवन क्षेत्र, व्यवसाय एवं आंतरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व के साथ व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताओं और उनके काव्य–साहित्य का परिचय दिया गया है। जिसमें महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, मुक्तक काव्यों व चम्पूकाव्यों के साथ उनके द्वारा अन्य भाषाओं से किए गए अनुवादित काव्यों पर भी प्रकाश डाला गया है। उनकी उपलब्धियों स्वरूप अभिनंदन ग्रन्थ एवं साहित्यिक पत्रिकाओं के माध्यम से उनके समग्र व्यक्तित्व को रेखांकित किया गया है।

द्वितीय अध्याय – 'नारी चेतना : तात्त्विक विश्लेषण' में साहित्य एवं समाज के संदर्भ में नारी का विश्लेषण कर, चेतना के विविध आयाम जैसे–सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना के अर्थ एवं स्वरूप के साथ, कवि गुप्त के काव्य में वर्णित इन विविध चेतनाओं का तात्त्विक विश्लेषण करते हुए वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता प्रकट की।

तृतीय अध्याय – 'महाकाव्यों में नारी चेतना' के माध्यम से उनके 'साकेत' एवं 'जयभारत' महाकाव्यों के ऐतिहासिक, पौराणिक, प्रमुख एवं अन्य नारी पात्रों के माध्यम से नारी चेतना को उद्घाटित कर, मानव जीवन में नारी के योगदान को रूपायित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय – 'खण्डकाव्यों में नारी चेतना' में उनके पौराणिक, ऐतिहासिक एवं प्रमुख खण्डकाव्यों में चित्रित नारी–पात्रों के माध्यम से नूतन संदर्भों में नारी अस्मिता को रूपायित कर वर्तमान में उसके अस्तित्व को पहचानने की कोशिश की है।

पंचम् अध्याय – 'कवि गुप्त के अन्य काव्यों में नारी चेतना' में उनके समस्त अनुदित काव्यों गीतिकाव्यों, चम्पूकाव्यों व मुक्तक काव्यों का अध्ययन कर नारी–पात्रों के माध्यम से प्राचीन परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति नारी के विद्रोह को चित्रित कर नारी में मानव–मूल्यों, जीवन दर्शन, आशा, विश्वास एवं नारी के प्रति श्रद्धा भाव को व्यक्त किया गया है।

षष्ठ अध्याय – 'पुरुष पात्रों में नारी चेतना' के अन्तर्गत कवि गुप्त के काव्य में चित्रित पौराणिक, ऐतिहासिक, प्रमुख, गौण एवं अन्य पुरुष–पात्रों के माध्यम से नारी के विविध स्तरों पर नर को प्रदत्त योगदान एवं प्रोत्साहन को चित्रित कर, नारी अस्मिता की रक्षार्थ पुरुष के योगदान को वर्णित किया है। नारी के समाज, राष्ट्र तथा विश्व के प्रति योगदान को पुरुषों के द्वारा वर्तमान जीवन के समकालीन परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की पूर्णता में जिन्होंने मेरा मार्गदर्शन किया, प्रेरित किया, उत्साहित किया उनके प्रति आभार व्यक्त करना मेरा कर्त्तव्य ही नहीं, धर्म भी है। मैं अपनी श्रद्धेया मातृतुल्या गुरु एवं शोध निर्देशिका डॉ. (श्रीमती) विजयलक्ष्मी सालोदिया, विभागाध्यक्ष–हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी (राजस्थान) के प्रति श्रद्धावनत हूँ, जिन्होंने अपने ज्ञान के सागर से मेरा मार्गदर्शन किया। उन्होंने स्नेह से मेरा मार्ग आलोकित कर समय–समय पर आने वाली मेरी समस्त बॉधाओं को दूर किया। उन्हीं के आशीर्वादात्मक सहयोग, उत्साहवर्धिनी प्रेरणाओं तथा विद्वत्तापूर्ण सत्परामर्शों के बिना यह कार्य कदापि पूर्ण नही हो सकता था। उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मैं डॉ. पीयूष कुमार सालोदिया, प्राचार्य, राजकीय कन्या महाविद्यालय, बून्दी (राज.) के प्रति हृदय से आभारी हूँ। साथ ही डॉ. हरकेश बैरवा, व्याख्याता–संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी (राज.) का भी आभारी हूँ जिन्होंने विभिन्न प्रकार के ग्रंथों को उपलब्ध कराकर शोध कार्य में आदि से अंत तक मार्गदर्शन दिया जिससे मेरे शोध–प्रबन्ध को संबल मिला और मेरा यह प्रयास शोध–प्रबन्ध में परिणत हो सका उसके लिए मैं हृदय से आपके सहयोग का आभारी हूँ।

मैं अपने पूज्य पिता श्री पैमाराम बैरवा और ममतामयी व स्नेहमूर्ति माता श्रीमती मुन्नी देवी से प्राप्त सदाशीष के अभाव में ज्ञानार्जन के क्षेत्र में मेरा इस सोपान तक पहुँच पाना असंभव था। उन्होंने समय–समय पर मुझे प्रेरित कर नवस्फूर्ति प्रदान की। मैं अपने काकाजी श्री खिलाड़ीराम बैरवा (प्रधानाध्यापक) एवं काकीजी श्रीमती लाडबाई के प्रति मेरा मस्तक श्रद्धा से नत हैं जिन्होंने मेरे शोध के समय में पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त कर हर सम्भव सहयोग दिया।

अपने अग्रज भ्राता श्री रामदयाल बैरवा (तकनीकी सहायक) अनुज पूरन सिंह बैरवा (प.म.रे.) व बलराम और बहन श्रीमती मंजू व पूजा का बहुत अधिक आभारी हूँ जिन्होंने शोध कार्य हेतु हर सम्भव प्रेरित किया। इसी क्रम में सहधर्मिणी श्रीमती राजकुमारी के प्रति हृदय से आभारी हूँ। जिन्होंने सदैव ही गृहस्थ–जीवन के वातावरण को शान्त और सौहार्द्रपूर्ण बनाये रखा तथा मुझे इस कार्य को शीर्घ ही पूर्ण करने के लिए अहर्निश प्रेरित करती

रही। मेरे सुपुत्र मनीष एवं बिटिया अंकिता को महिनों मेरे पितृ–वात्सल्य से वंचित रहना पड़ा। यह शोध प्रबन्ध मेरी ही नहीं अपितु उनकी भी उपलब्धि है।

अपने शोध संबंधी कार्य के लिए राजकीय महाविद्यालय, बून्दी के प्राचार्य, पुस्तकालयाध्यक्ष एवं श्रद्धेय गुरुवर डॉ.रमेशचंद वर्मा व्याख्याता–संस्कृत राजकीय महाविद्यालय, गंगापुरसिटी (राज.) का मैं हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। जिन्होंने शोध कार्य में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सहयोग प्रदान किया।

शोध–प्रबन्ध का रुप प्रदान करने में मनोयोग पूर्ण कार्य के लिए टंकणकार श्री नन्दप्रकाश शाक्यवार को बहुत–बहुत धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को मैं मूल्यांकन हेतु प्रबुद्ध जन की सेवा के साथ दादाजी स्व. श्री चौथी लाल एवं दादीजी श्रीमती नर्वदा देवी के श्रीचरणों में अर्पित करता करता हूँ।

संजय सिंह बैरवा

अनुक्रमणिका

पृ. सं.

प्राक्कथन i - iv

अनुक्रमणिका v - vii

प्रथम–अध्याय : मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 1–54

– भूमिका

– जन्म, नामकरण, माता–पिता एवं परिवार

– बाल्यकाल, शिक्षा एवं विवाह

– जीवन क्षेत्र एवं व्यवसाय

– व्यक्तित्व

बाह्य व्यक्तित्व

आन्तरिक व्यक्तित्व

व्यक्तित्व की विशेषताएँ

– कृतियों का परिचयात्मक विश्लेषण

महाकाव्य

खण्डकाव्य

मुक्तक काव्य

चम्पू काव्य

अनुदित काव्य

गीति नाट्य

– निष्कर्ष।

द्वितीय–अध्याय : नारी चेतना : तात्त्विक विश्लेषण 55–103

– भूमिका

– नारी चेतना : अर्थ एवं स्वरूप

– साहित्य, समाज एवं नारी

– हिन्दी साहित्य में नारी
– नारी चेतना के विविध आयाम
सामाजिक चेतना,
आर्थिक चेतना
राजनीतिक चेतना
धार्मिक चेतना
सांस्कृतिक चेतना
– निष्कर्ष।

तृतीय–अध्याय : महाकाव्यों में नारी चेतना 104–152
– भूमिका
– साकेत के प्रमुख स्त्री–पात्रों में नारी चेतना
– साकेत के गौण स्त्री–पात्रों में नारी चेतना
– साकेत के अन्य स्त्री–पात्रों में नारी चेतना
– जयभारत के प्रमुख स्त्री–पात्रों में नारी चेतना
– जयभारत के गौण स्त्री–पात्रों में नारी चेतना
– जयभारत के अन्य स्त्री–पात्रों में नारी चेतना
– निष्कर्ष।

चतुर्थ अध्याय : खण्डकाव्यों में नारी चेतना 153–206
– भूमिका
– पौराणिक खण्डकाव्यों में नारी चेतना
रामायण आधारित खण्डकाव्यों में नारी चेतना
महाभारत आधारित खण्डकाव्यों में नारी चेतना
– ऐतिहासिक खण्डकाव्यों में नारी चेतना
– प्रमुख स्त्री–पात्रों में नारी चेतना
– गौण स्त्री–पात्रों में नारी चेतना
– अन्य स्त्री–पात्रों में नारी चेतना
– निष्कर्ष।

पंचम्–अध्याय : कवि गुप्त के अन्य काव्यों में नारी चेतना **207–247**

– मुक्तक काव्यों में नारी चेतना

– गीतिकाव्यों में नारी चेतना

– चम्पूकाव्यों में नारी चेतना

– अनुदित काव्यों में नारी चेतना

– निष्कर्ष।

षष्ठ–अध्याय : प्रमुख पुरुष–पात्रों में नारी चेतना **248–289**

– भूमिका

– पौराणिक पुरुष–पात्रों में नारी चेतना

वैदिककालीन पुरुष–पात्रों में नारी चेतना

रामायणकालीन पुरुष–पात्रों में नारी चेतना

महाभारतकालीन पुरुष–पात्रों में नारी चेतना

– ऐतिहासिक पुरुष–पात्रों में नारी चेतना

– प्रमुख पुरुष–पात्रों में नारी चेतना

– गौण पुरुष–पात्रों में नारी चेतना

– अन्य पुरुष–पात्रों में नारी चेतना

– निष्कर्ष।

सप्तम्–अध्याय : – उपसंहार **290–298**

परिशिष्ट – **299–303**

– मूल ग्रंथ–सूची

– संदर्भ ग्रंथ–सूची

– हिन्दी एवं अंग्रेजी कोश–ग्रंथ

– पत्र–पत्रिकाएँ

प्रकाशित दो शोध पेपर–

प्रथम – अध्याय

मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय

मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील चेतना और मानवतावादी विचारधारा से आवद्ध, नवजागरण के अग्रदूत, यशस्वी एवं प्रतिष्ठित राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भारतीय संस्कृति के पर्याय माने जाते हैं। अपने साहित्यागार एवं जीवन को भारतीयता की पवित्रधारा से सिंचित करने वाले कवि गुप्त को राष्ट्रकवि की उपाधि से विभूषित किया जाना स्वाभाविक ही था। उनकी काव्य–साधना भारतीय संस्कृति के प्रत्येक तट को तर करती हुई निर्बाध रूप से प्रवाहित हुई है।

कवि गुप्त ने भारतीय संस्कृति के पुरोधा के रूप में स्वयं के अस्तित्व को स्थापित कर यश प्राप्त किया है। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य को समर्पित किया है। व्यक्ति की गरिमा, उनकी उर्ध्वमुखी साधना उनके प्रयत्नों की उपलब्धियों से परखी जाती है। यही एक कसौटी है जिस पर कसकर व्यक्ति रूपी स्वर्ण की शुद्धता एवं उत्कृष्टता की परख होती है। वे वास्तव में हिन्दी साहित्य में सूर्य की भांति दैदीप्यमान है।

कविवर गुप्त ने साहित्य के प्रति सच्ची निष्ठा से समर्पित होकर अभावों की आँधी तथा विरोधों के थपेड़ों को झेलते हुए प्रचण्ड साहित्य साधना की आग में तपते हुए जीवन भर प्रतिकूल परिस्थितियों से रूबरू होते हुए, क्षमतावान, समन्वय साधक, निर्भीक लेखन, सांस्कृतिक विचारक, तथा नारी को गरिमामयी सामाजिक स्वीकृति दिलाने वाले वे सर्वोच्च स्थान के अधिकारी है। उनकी यह प्रवृत्ति हिमालय की भाँति विराट, गंगा की भाँति उदार और ध्रुव की भाँति अटल थी। इसलिए आज के भौतिक, वैज्ञानिक एवं पुरुष प्रधान युग में भी उनकी आदर्श नारी की भावना तनिक भी विचलित नहीं हुई। "उनकी नारी सामर्थ्य का परिचय स्वयं सामर्थ्यवान होकर खुद अपने जीवन की संचालिका बनकर देती है।" 1

---

1 औरों के हाथों यहाँ नही पलती हूँ ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ ।
मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 138

हिन्दी कवि परम्परा में कवित्व के उत्कर्ष की दृष्टि से युग और प्रवृत्ति के आधार पर कवि गुप्त सर्वश्रेष्ठ है। नारी के प्रति उनकी भावना सदा आदरमयी रही है। भारतीय आर्य संस्कृति में भी नारी का महत्वपूर्ण, आदरणीय एवं पूजनीय स्थान रहा है। भारतीय संस्कृति के नियामक महर्षि मनु की अवधारणा यह है कि जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहीं देवताओं का अधिवास होता है। मनुस्मृति में नारी के स्थान को वर्णित करते हुए वे लिखते है कि –

" यत्र नार्यस्तु पूजन्ते रमन्ते तत्र देवता : ।
यत्रैतास्तु न पूजयन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया।" 1

हिन्दी काव्य–साहित्य में अन्य कवियों की अपेक्षा कवि गुप्त के मन में नारी के प्रति आदर एवं श्रृद्धा का भाव सर्वाधिक रहा है। उन्होंने अपने काव्य में साहित्यिक एवं सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित नारियों को यथोचित् आदर एवं गरिमामय धरातल प्रदान किया है। उर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया आदि नारियों का चरित्र उनकी लेखनी रूपी ज्योति से प्रकाशित एवं उज्ज्वल हुआ है।

इस प्रकार कवि ने नारी अस्मिता, स्वतंत्रता तथा नारी समानता का स्वर मुखरित किया है। भारतीय संस्कृति और मानव मूल्यों के पुरोधा कवि गुप्त ने अपने काव्य में नारी के तप, त्याग उनकी तितिक्षा सेवा, प्रेम वियोग का मर्मान्तक एवं हृदयी स्पर्शी चित्रण ही नहीं किया है अपितु नारी की गरिमा एवं परोपकार भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति भी की है। "उनके काव्य की नारियाँ परहित रक्षार्थ अपने पति एवं पुत्र को भी मरण का वरण करने हेतु भेजने में कोई संकोच नहीं करती है।" 2 इस प्रकार कवि गुप्त ने पुरुष और स्त्री के अधिकृत संबंध स्वीकार कर स्त्री–पुरुषों के समान अधिकारों की प्रस्थापना पर बल दिया है।

मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व –

जन्म –

वीर प्रसूता भारत–भूमि ने सूरमाओं के साथ–साथ लब्धप्रतिष्ठित

---

1 महर्षि मनु : मनुस्मृति पृ. सं. 3/56

2 स्वयं सुसज्जित करके क्षण में प्रियतम को प्राणों के पण में
हमीं भेज देती है रण में– , क्षात्र धर्म के नाते।
मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा पृ. सं. 138

साहित्यकारों को भी जन्म दिया है। हिन्दी साहित्य में भारतीय संस्कृति के वाहक नारी चेतना के पुरोधा तथा सम्पूर्ण हिन्दी साहित्याकाश में प्रतिष्ठित एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी युग में सर्वश्रेष्ठ स्थान के अधिकारी, आधुनिक हिन्दी कवियों में सबसे अधिक सरल और लोकप्रिय, हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 3 अगस्त 1886 (विक्रम सं. 1943) को श्रावण शुक्ल द्वितीया, सोमवार को रात्रि के तीसरे पहर में चिरगाँव, तहसील मोंठ, जिला–झाँसी (उत्तरप्रदेश) में सेठ रामचरणदास के घर वैष्णवभक्त परिवार में उनका जन्म हुआ।

कवि गुप्त के पूर्वजों का जन्म स्थान मॉडेर में था, जो प्राचीन समय में भद्रावती कहलाता है। उनके परिवार की पाँच पीढ़ियाँ मॉडेर में ही रहती थी। पाँचवीं पीढ़ी के बाद उनके पूर्वज मॉडेर से चिरगाँव आकर बस गये। चिरगाँव आकर बसने का कारण व्यापार विस्तार था। बाल सुलभ मन पर पारिवारिक पृष्ठभूमि का प्रभाव पड़ना स्वभाविक था। इस संदर्भ में डॉ.शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री का मानना है कि “इनका परिवार वैष्णव था और पैतृक आस्तिकता उनको विरासत में मिली थी। पिताजी की रामभक्ति उनमें संचारित हुई।” 1

नामकरण –

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के नामकरण पर उनके पारिवारिक विरासत एवं विद्वता की छाप रही है। पारिवारिक संस्कारित नाम लाला मदनमोहन ‘जू’ था। लेकिन कवि गुप्त के पिताजी ईश्वरीय भक्ति के सखा रूप के उपासक थे। उनके नामकरण के सम्बंध में डॉ. कृष्णा कुमारी का मानना है कि ” उनका पितृप्रदत्त नाम ‘मिथिलाधिप नन्दिनीशरण’ रखा गया। लेकिन उनका यह नाम अत्यधिक लम्बा स्कूल के रजिस्टर की एक पंक्ति में न आने के कारण संक्षिप्त में मैथिलीशरण गुप्त रख दिया गया। आगे चलकर यही नाम साहित्य के इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। ” 2

साहित्यिक जीवन में कवि गुप्त की आरम्भिक रचनाओं में उनका ‘रसिकेश’ नाम प्रचलित था। लेकिन साहित्य एवं जनमानस में ‘रामरसायन’ के कवि ‘रसिक बिहारी’ का यही उपनाम होने के कारण उन्होंने अपना उपनाम ‘रसिकेन्द्र’ रख लिया। इस कारण परिवार में उनका उपनाम ‘रसिकेन्द्र ’ प्रचलित हो गया। अनुवादक के रूप

---

1 डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री : भारत भारती एक अध्ययन पृ. सं. 01

2 डॉ. कृष्णा कुमारी : मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतना पृ. सं. 13

में कवि गुप्त 'मधुप' उपनाम से अनुवाद करने लगे। उनकी कुछ रचनाओं में उनका उपनाम 'भारतीय' भी मिलता है। इस उपनाम से उन्होंने अमरिकी कवि 'लावेल' की कविताओं का पद्यानुवाद किया जो 'स्वदेश' नामक शीर्षक से सरस्वती पत्रिका में छपी। इन सब उपनामों के बावजूद कवि गुप्त ने अपने नाम के आगे 'गुप्त' उपनाम लगाना ही उचित समझा और हिन्दी साहित्य में उनका यही उपनाम अमरमणि की भाँति जाज्वल्यमान है।

माता–पिता –

कवि मैथिलीशरण गुप्त का परिवार एक आस्तिक परिवार था। वे प्राचीन संस्कारों में पले थे। उनका परिवार रुढ़िवादी न होकर युग चेतना के प्रति सजग था। कवि गुप्त के पिता सेठ रामचरण दास परम वैष्णव भक्त थे। वे ईश्वर के सखा रूप के उपासक तथा मध्यवर्गीय गृहस्थ थे। उनका घी का पैतृक व्यवसाय तथा आढ़त की दुकान थी। वे कुछ गाँवों के जमींदार भी थे। धार्मिक कथा–वार्ता, भजन–पूजन उनका दैनिक नियम था। स्वभावतः कवि गुप्त पर भी उस पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। उनके पिताजी अपने कार्यों से समय मिलने पर कविता किया करते थे।

सेठ रामचरणदास की कविता करने की स्वभाविक रुचि के बारे में डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा का मानना है कि "गुप्तजी के पिता की कविता करने में रुचि थी। उन्होंने राम भक्त कवि तुलसीदास जी की 'कवितावली' के अनुकरण पर कुछ सवैये भी लिखे थे। सवैया लिखने के बाद वे मैथिलीशरण गुप्त को पढ़ने के लिए देते, तब गुप्त उन्हें पढ़कर उनमें कुछ संशोधन सुझाते थे। उनके पिता इस पर बहुत हर्षित होते और पुत्र की बात को मानते।"[1] इस प्रकार काव्य सृजन करने वाले बालमन में सवैया को काँटना छाँटना, तराशना मानों उनका शगल बन गया।

बालक के जीवन में पिता की तुलना में माता के ऑचल की छॉव जीवन प्रेरणारूपी शीतलता अधिक प्रदान करती है जिसमें बालक पलता बढ़ता है। इस प्रकार की शीतलता देने वाली कवि गुप्त की माता काशीबाई सरल, संकोची तथा विनम्र स्वभाव की

---

1 डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा : मध्यकालीन भारतीय साहित्यिक कवि पृ. सं. 149

प्रतिमूर्ति थी। गुप्त पर उनका विशेष वात्सल्य था। वे अपनी माता को ममता की मूर्ति मानते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी माता को 'मोहमयी ममता' का संबोधन दिया है। माता काशीबाई उनको हमेशा साहित्य लेखन संबल प्रदान करती रही। वे कवि गुप्त के काव्य सृजन में कर्मरत होने के लिये प्रेरणादायी बनी। कवि गुप्त ने अपने कवि कर्म में उनकी प्रेरणा को अपनाते हुए विभिन्न खण्डकाव्यों में कौशल्या, कुंती, यशोधरा आदी नारी पात्रों को यथोचित सम्मान प्रदान किया।

परिवार –

परिवार व्यक्ति के जीवन की प्रथम पाठशाला होती है। जिसमें जीवन–मूल्यों के साथ भावी जीवन की शिक्षा बालक को मिलती है। पारिवारिक जीवन में उतार चढाव एक नियमित प्रक्रिया है। कवि गुप्त का पारिवारिक जीवन भी इस प्रक्रिया से अछूता नहीं रहा। उनका पारिवारिक जीवन विशाल थार मरुस्थल के समान है, जिसमें दुःख एवं कष्टों की लू के थपेड़ें हमेशा आते रहे है। लेकिन कवि गुप्त विजयस्तम्भ की भाँति उन कष्टों के झंझावातों में भी मजबूत स्थिरता के साथ खड़े रहें।

परिवार परिजनों का एक समूह होता है। जिसमें सभी सुख–दुख में एक साथ रहते है। पाँच भाईयों में कवि गुप्त का तीसरा स्थान था। महरामदास, रामकिशोर गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त तथा चारुशीलशरण गुप्त। सभी भाईयों में परस्पर प्रेम था। विनम्र और सज्जन स्वभाव के कारण वे परिवार में सभी के प्रिय थे। कवि गुप्त का परिवार संयुक्त गृहस्थ प्रथा का खूबसूरत उदाहरण था। उनका परिवार एक आदर्श परिवार माना जाता था। इस प्रकार उनका परिवार भारतीय संस्कृति का आधारभूत स्तम्भ, सांस्कृतिक गुणों का वाहक तथा संयुक्त परिवार की प्रथा से युक्त एक वैष्णव परिवार था। स्वयं कवि संयुक्त परिवार के गुणों की महिमा का वर्णन 'भारत भारती' मुक्तक काव्य में करते हुए लिखते है कि –

" सर्वत्र अनुपम एकता का इस प्रकार प्रभाव था ,
थी एक भाषा, एक मन था, एक सबका भाव था।" 1

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती पृ. सं. 29

अतः ऐसे परिवार में रहते हुए उन्होंने परिवार को एक भाव और एक भाषा से जोड़ने का प्रयास किया।

बाल्यकाल –

मानव प्रकृति की श्रेष्ठ एवं अनुपम कृति है। उसे प्रकृति के अन्य प्राणियों में श्रेष्ठ घोषित करने में उसके विचार करने, तर्क करने तथा सद्व्यवहार की शक्ति है। बालक किशोरावस्था में अपने व्यवहार एवं कार्यों से दूसरे व्यक्तियों की तुलना में अलग पहचान बनाता है। मनोवैज्ञानिकों ने भी बाल्यावस्था को संघर्ष और समन्वय की अवस्था कहा है। मनोवैज्ञानिक 'हॉल' ने बाल्यावस्था के संदर्भ में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि "बाल्यावस्था जीवन की एक प्रमुख अवस्था है, यह तूफान और संघर्ष की अवस्था है। " 1

कविवर गुप्त का बाल्यकाल भी उस प्रातःकाल के समान था जिसकी स्वर्णरश्मियों का आलोक जनमानस को प्रकाशित करने में अपूर्व रहा। उनका लालन–पालन एक सम्पन्न और रामभक्त परिवार में हुआ। वे तीव्र एवं प्रखर बुद्धि के धनी थे। खिलाड़ी स्वभाव भी उनकी अपनी विशेषता थी। पतंग उड़ाना, चकरी फिराना उनके प्रिय खेल थे। तालाब व नदियों के चंचल पानी की भांति बाल मन भी पानी को देखकर चंचल हो जाता है। वे तैरने के भी शौकीन थे। नदी में डूबते हुए बच्चों को देखकर स्वयं की परवाह न करते हुए साहस का परिचय देते हुए जान हथेली पर रखकर दो बच्चों की जान बचाई थी। इस प्रकार बचपन की ये घटनाएँ उनके चारित्रिक विकास की सूत्रधार बनी।

बाल्यकाल में बालक अनुकरण द्वारा सर्वाधिक ज्ञान अर्जित करता है। कवि गुप्त ने अपने पिताजी का अनुकरण करके काव्यरूपी मणि को प्राप्त किया। इस प्रकार कवि गुप्त पर अपने पारिवारिक वातावरण और संस्कारों का प्रभाव पड़ा। परिवार में हमेशा नारी के प्रति आदर एवं सम्मान का भाव रहा। इसी कारण बचपन से ही उनके हृदय में नारी के प्रति आदर्श एवं सुकोमल भावना घर कर गई। जो उनके काव्य में अपूर्व नारी चित्रण के रूप में प्रकट हुई।

---

1 डॉ. गणपत शर्मा : अधिगम शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक आधार पृ. सं. 241

शिक्षा एवं विवाह –

शिक्षा वह साधन है, जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। शिक्षा ही वह अग्नि है जिसमें तपकर ज्ञानरुपी स्वर्ण जीवन को श्रृंगारित करता है लेकिन इसे प्राप्त करने हेतु व्यक्ति को तपना पड़ता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की शिक्षा प्राप्ति भी उन बालू के टीलों की भाँति थी जो कभी भी स्थिर न रही। वह संघर्ष की आंधी के प्रत्येक बबंडर के साथ ही बदलती दिखाई पड़ती हैं। कवि गुप्त की प्रारंभिक शिक्षा चिरगाँव के सरकारी स्कूल में हुई।

पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र उनके प्रथम गुरु थे। उनके घर के पास ही गाँव की पाठशाला में अक्षर ज्ञान और प्रारंभिक गणित सीखने के बाद कवि गुप्त के पिताजी तात्कालिक वातावरण के अुनसार उन्हें अग्रेंजी का अध्ययन कराना चाहते थे। लेकिन भारतीय संस्कृति के पुजारी और पुरातन मूल्यों के बाहक गुप्त का मन विदेशी भाषा अंगेजी सीखने में नहीं लगा। डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री का इस संदर्भ में मानना है कि "आरम्भिक शिक्षा चिरगाँव में ही प्राप्त करने के पश्चात यद्यपि उन्होंने अंग्रेजी के अध्ययन के लिए 'मेकडालन हाई स्कूल झाँसी' में प्रवेश लिया पर वहाँ उनका मन नहीं लगा।" 1

संसार में माता–पिता ही अपनी संतान की प्रगति हमेशा देखना चाहते है। कवि गुप्त के पिताजी भी इसी भावना से प्रेरित होकर उन्हें पढ़ा लिखाकर उच्चाधिकारी बनाना चाहते थे। परन्तु सांस्कृतिक मूल्यों के बाहर, राष्ट्रप्रेमी गुप्त अंग्रेजी पढ़ने की बजाय अधिक समय खेलकूद व स्वअध्याय में बिताने लगे। परीक्षा के दिनों में वे रामलीला की मंडली के साथ नाटक मंचन हेतु ओरछा चले गये। अंत में परेशान होकर उनके पिता ने उन्हें चिरगाँव वापस बुला लिया और घर पर ही शिक्षा का प्रबंध कर दिया, जो सुव्यवस्थित नहीं थी। इस प्रकार कवि गुप्त की शिक्षा का प्रबंध अंत में घर पर ही हुआ।डॉ.कृष्णा कुमारी ने कवि गुप्त की स्वध्याय भावना को प्रकट करते हए लिखा है कि "अतः गुप्त की शिक्षा कुल मिलाकर परिवार की पाठशाला में पिता द्वारा संग्रहीत धर्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय से हुई। " 2

---

1 डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री : भारत भारती एक अध्ययन पृ. सं. 02

2 डॉ. कृष्णा कुमारी : मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतना पृ. सं. 15

भाषा विचारों की वाहक होती है। भाषा के द्वारा ही हम अपने विचारों एवं भावों का आदान प्रदान करते है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त भी अंग्रेजी हुकुमत के विचारों को जानना चाहते थे। लेकिन अंग्रेजी भाषा अवरोध बनकर खड़ी हो गयी। अतः राष्ट्रभक्त पं. मदनमोहन मालवीय के आदेश पर उन्होंने अपने अनुज चारुशीलशरण से अंग्रेजी पढ़ी। हिन्दी अंग्रेजी के पद्य–बद्ध कोश लिखने का भी भरसक प्रयास किया। जिसमें वे सफल न हो सकें। इस प्रकार कवि गुप्त को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हो गया जो अंगेजों की नीतियों को सीखने में सहायक हुआ।

कवि गुप्त के मन में सभी भाषाओं के प्रति आदर एवं सत्कार का भाव था। उनकी जिज्ञासु प्रवृत्ति उन्हें उर्दू के प्रति आकर्षित किये बिना नहीं रह सकी। उन्हानें अपने गाँव चिरगाँव के मौलवी से गुप्त ने उर्दू का ज्ञान भी ग्रहण किया। लेकिन उर्दू लिपि का ज्ञान उनका अल्प ही रहा। उन्होंने झांसी में रहकर ही स्वतंत्र रूप से संस्कृत एवं बंग्ला–साहित्य का अध्ययन किया। कथा, साहित्य तथा उपन्यास आदि के अध्ययन में रुचि बढ़ने लगी। इतिहास, पुराण आदि के साथ संस्कृत के काव्य एवं नाटकों का भी उन्होंने अध्ययन किया। उनके मन में प्राचीन हिन्दी एवं संस्कृत के कवियों के प्रति विशेष आदर भाव था। स्वयं कवि ने भाषाओं के प्रति अपने भाव को प्रकट करते हुए माना है कि –

" प्राचीन ही जो है न, जिससे अन्य भाषाएँ बनीं,
भाषा हमारी देववाणी श्रुति–सुधा से है सनी।
है कौन भाषा यों अमर व्युत्पत्ति रूपी प्राण से,
है अन्य भाषा शब्द उसके सामने म्रियमाण से। " 1

विवाह –

मानव जीवन में विवाह एक ऐसा सामाजिक बंधन है जिसमें पति–पत्नी के मध्य समर्पण प्राथमिकता है। विवाह गृहस्त जीवन का प्रथम सोपान है। कवि गुप्त ने भी अपने वैवाहिक जीवन को सुखमय बनाने का भरसक प्रयास किया। लेकिन उनका दाम्पत्य जीवन–सुख

1 मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती पृ. सं. 38

मृगतृष्णा की भाँति दूर होता चला गया। संवत् 1952 में नौ वर्ष की आयु में दतिया से उनका कमला देवी से प्रथम विवाह हुआ। संवत् 1957 में पाँच वर्ष बादनववधू का दूसरी बार घर पर आगमन हुआ। संवत् 1960 में प्रसव पीड़ा में उनकी पत्नी का देहांत हो गया। संवत् 1961 में कवि गुप्त का दूसरा विवाह विमला देवी के साथ सम्पन्न हुआ।

दूसरी पत्नी से कवि गुप्त को दो संतानें हुई, लेकिन दोनों ही अकाल मृत्यु का शिकार हो गई। संवत् 1968 में दूसरी पत्नी का भी असामयिक स्वर्गवास हो गया। दोनों पत्नियों की मृत्यु के बाद अब कवि गुप्त अपना विवाह नहीं करना चाहते थे। वे अपना अधिकांश समय एकांत में ही व्यतीत करना चाहते थे। लेकिन उनके पथ–प्रदर्शक मुंशी–अजमेरी के अनुरोध पर कवि गुप्त का तीसरा विवाह संवत् 1971 में सरयू देवी के साथ हुआ। इस विवाह से उनको को नौ संतानें हुई पर उर्मिलाशरण को छोड़कर सभी बाल्यावस्था में ही कालकलवित हो गई। इस प्रकार अपनी संतानों के गोलोकवासी होने के कारण गुप्त दुख रूपी अथाह सागर में डूब गये।

कविवर गुप्त की अंतिम संतान उर्मिलाशरण गुप्त का जन्म सन् 1936 में हुआ। कवि गुप्त एवं उनकी पत्नी ने अपना सम्पूर्ण वात्सल्य अपने पुत्र उर्मिलाशरण पर न्यौछावर कर दिया। उर्मिलाशरण ने झांसी के बुन्देलखंड कॉलेज में अध्ययन किया। कवि गुप्त ने चिरगाँव में उनके लिए एक नया भवन निर्मित करवाया। सन् 1955 में उर्मिलाशरण के विवाह से पुत्रवधू का आगमन हुआ।

जीवन क्षेत्र एवं व्यवसाय –

यह धुव्र सत्य है कि सरस्वती और लक्ष्मी एक आसन् पर विराजमान नहीं होती है। इसलिए साहित्य–सृजन और व्यवसाय एक साथ नहीं चल सकते। कवि गुप्त ने भी व्यवसाय प्रकृति वाले परिवार में साहित्य सृजन को चुना। उन्होंने अपना अधिकतम जीवन एकान्त साधना में रहकर व्यतीत किया। वे एक योगी की भाँति कर्मफल की प्राप्ति में लगे रहे। स्वभाव संकोचशील होने के कारण वे हमेशा सार्वजनिक समारोह आदि से दूर ही रहते थे।

लेकिन तात्कालिक भारत–दुर्दशा को देखकर उनका मन भी राष्ट्रीयता के रंग में रंगे बिना नहीं रह सका। कवि गुप्त का मन भरभराते मानव मूल्यों को देखकर द्रवित हो उठा दुखी होते हुए गुप्त की चिन्ता को व्यक्त करते हुए डॉ.माधुरी खोंसला लिखती है कि "एक वह समय था कि यह मेरा देश विद्या, कला–कौशल और सभ्यता में संसार में शिरोमणि था और एक यह समय देखा है कि इन्हीं बातों का इसमें शोचनीय अभाव हो गया। " 1

हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग वह काल था जब सम्पूर्ण देश आजादी प्राप्ति हेतु प्रयासरत था। भारतीय संस्कृति के पुरोधा तथा द्विवेदी युग के शीर्षस्थ कवि मैथिलीशरण गुप्त का राष्ट्रीय आन्दोलन में भी अमूल्य योगदान रहा। राष्ट्रीय आन्दोलन में वे क्रांतिकारियों की एक मशाल बनकर उनका पथ आलोकित करते रहे। स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण 17 अप्रेल सन् 1914 को कवि गुप्त को जेल जाना पड़ा। यह जेल यात्रा 14 नवम्बर 1914 तक लगभग सात माह चली। लेकिन साहित्य सृजन कवि का कल्पनाशील मन स्थिर रहने वाला नहीं था। जेल में ही उन्होनें 'अजित', 'कुणाल–गीत' तथा 'जयभारत' जैसे खण्डकाव्यों के कुछ पद्यों का सृजन किया। अंग्रेजी शासन द्वारा निर्दोष भारतीयों को पकड़कर जेल में बंद करने पर वे क्रोधित हो उठे, उन्हें लगने लगा कि यह अंग्रेजी शासन–व्यवस्था ही ठीक नहीं हैं। वे सरकार की खिलाफत करने लगे। निष्क्रिय भीड़ पर अत्याचार होते देख उनकी कलम से सहज ही निकल पड़ा–

" निष्क्रिय बैठी हुई भीड़ पर छूटे घोड़े,
स्त्री–पुरुषों पर पड़े उन्हीं पशुओं के कोड़े। " 2

एक कवि का एक सपना होता है कि वह संसार को विनाश की ओर नहीं विकास की ओर देखता है। राष्ट्रकवि गुप्त के काव्य में भी देश के विकास व समृद्धि का भाव विद्यमान है। महाभारत के ज्वलंत प्रश्नों का समकालीन उत्तर वे आधुनिक भारत में ढूढ़ते हैं। वे देश की समस्याओं को आज के भारत देश में नहीं महाभारत के संदर्भ में देखते हैं। कवि मानव जाति को युद्ध की विभीषिका से सावधान करते हुए युद्ध से बचने का संदेश देते हैं कि शस्त्रों के

---

1 डॉ.माधुरी खोंसला : मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में पात्रों की परिकल्पना पृ. सं. 15

2 मैथिलीशरण गुप्त : अजित पृ. सं. 34

उपयोग आपसी विनाश में न होकर सुरक्षा में होना चाहिए। कवि गुप्त का मानना है कि हम युद्ध क्यों करें, क्यों हम पशुओं सा व्यवहार करें। हमें शास्त्रों की भांति व्यवहार करना चाहिए–

" हिंसक पशुओं के सम युद्ध नर क्यों करें,
शुद्ध सार–शस्त्र जब कर में हो उनके। "1

प्रत्येक व्यक्ति का सपना होता है कि समाज में उसे मान–सम्मान मिलता रहे। क्योंकि लोगों का हार्दिक सम्मान ही व्यक्ति के कर्मों की कसौटी होता है। कविवर मैथिलीशरण गुप्त को भी अपने जीवन में सभी प्रकार का मान–सम्मान प्राप्त हुआ। उनकी 50 वर्ष की आयु में सन् 1936 में स्वर्ण जयंती मनाई गई। स्वर्ण जयंती के अवसर पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने उन्हें 'मैथिली काव्य मान' ग्रंथ भेट करते हए 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से सम्मानित किया। सन् 1936 में उनके महाकाव्य 'साकेत' के लिए हिन्दुस्तानी एकेडमी पुरुस्कार 'और सन् 1937 में साहित्य के श्रेष्ठ पुरुस्कार 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' से सम्मानित किया गया।

सन् 1940 के कराची अधिवेशन में गुप्त को "साहित्य वाचस्पति" की उपाधि से सम्मानित किया गया। कवि गुप्त के सम्मान की माला में एक और बीज शिक्षा सम्मान में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा 20 नवम्बर 1948 को उन्हें 'डी. लिट्' की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् 1954 में कवि गुप्त भारत सरकार द्वारा 'पदम भूषण' की उपाधि से सम्मानित किए गए। स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ.राजेन्द्र प्रसाद द्वारा सन् 1952 से 1964 तक उन्हें राज्यसभा का सदस्य मनोनित किया गया।

कवि गुप्त के जीवन क्षेत्र के विषय में डॉ. विनोद सोमानी 'हंस' का मधुमती पत्रिका के अगस्त 2006 के अंक में उनके लेख 'दद्दा के काव्य में राष्ट्रीय भाव' में मानना है कि " गुप्तजी महाकवि थे, सांसद भी थे स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा भी थे और कवियों के प्रेरक–रक्षक भी थे। गुप्तजी अकेले ऐसे कवि रहे जिन्होंने एक राष्ट्र की प्रतिमा बनाने का कार्य किया।" 2

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : जय भारत पृ. सं. 268

2 डॉ. विनोद सोमानी 'हंस' : 'दद्दा के काव्य में राष्ट्रीय भाव' (लेख)
मधुमती, अगस्त 2006 पृ. सं. 08

व्यक्तित्व –

व्यक्तित्व, व्यक्ति की वह कसौटी है, जिस पर व्यक्ति का जीवन परखा जाता है। व्यक्तित्व ही जीवन की लक्ष्मण रेखा है। एक व्यक्ति के वास्तविक व्यक्तित्व के अंतर्गत यह समाहित है कि वह क्या बनना चाहता है। वह कैसा प्रतीत होना चाहता है। वह दूसरों को कैसा प्रतीत होता है और वह स्वयं को कैसे समाज में स्थापित करता है। व्यक्तित्व में दूसरे लोगों द्वारा एवं उसके स्वयं के द्वारा मानव समाज को प्रदान किया गया योगदान निहीत होता है।

व्यक्तित्व से अभिप्राय यह है कि व्यक्ति द्वारा मानव जाति के समक्ष प्रदत्त व्यवहार की समीक्षा से है। अधिकतर लोग व्यक्तित्व को शारीरिक गठन का परिचायक मानते है, परन्तु ऐसा स्वीकार करना व्यक्तित्व के एक पक्ष को स्वीकार करने से अधिक नहीं है। व्यक्तित्व में व्यक्ति की सृजनशीलता समाहित है, सृजनशून्यता नहीं। व्यक्तित्व, तो व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार का योग़ है। व्यक्ति के विभिन्न प्रकार के व्यवहारों की प्रतिक्रिया उसके व्यक्तिगत चरित्र पर पड़ें बिना नहीं रहती। सामाजिक क्षेत्र में उसकी प्रतिक्रिया उसके व्यक्तिगत क्षेत्र से भिन्न होती है। इन विभिन्न प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व को समाज के प्रांगण में ही अनुभव किया जा सकता हैं। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के वर्णन के समय उसके व्यक्तित्व की व्याख्या ही नही की जाती है, बल्कि उसके प्रति व्यक्ति की सामाजिक प्रतिक्रियाओं का उल्लेख भी किया जाता है। अतः व्यक्तित्व का विश्लेषण व्यक्ति के व्यवहार का विश्लेषण है। व्यक्तित्व के सम्बंध में डॉ.गणपतराम शर्मा का मानना है कि " विशेष तौर पर चरित्र हमारे उस व्यवहारात्मक पहलु से संबंधित है, जिसको हम अच्छे या बुरे नाम से सम्बोधित कर सकते हैं और यह हमारे समाज के अनुकूलित स्तर के अनुकूल या प्रतिकूल हो सकता है। " 1

---

1 डॉ. गणपत शर्मा : अधिगम शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक आधार पृ. सं. 116

व्यक्तित्व का शाब्दिक दृष्टि से आकलन करने पर व्यक्तित्व को अंग्रेजी भाषा में 'पर्सनैल्टी' कहते है। जिसके मूल में लेटिन भाषा का 'परसोना' शब्द है। जिसका हिन्दी अनुवाद 'मुखौटा' होता है। डॉ. वंदना जादौन के शब्दों में " व्यक्तित्व स्वभाव की शारीरिक रचना, स्वास्थ्य, सौन्दर्य एवं स्वभाव का समन्वित रूप माना जाता हैं इसमें व्यक्ति के बाह्य एवं आंतरिक दोनों पक्षों का परिचय प्राप्त होता है।" 1 इस प्रकार व्यक्तित्व में व्यक्ति के बाहरी एवं आंतरिक मन की दशा एवं दिशा दोनों का अध्ययन किया जाता हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व को बाह्य एवं आंतरिक दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

बाह्य एवं आंतरिक व्यक्तित्व –

बाह्य व्यक्तित्व –

बाहरी आवरण को देखकर व्यक्ति के व्यक्तित्व को आसानी से समझा जा सकता है। महात्मा गांधी के अनुशरणकर्ता कविवर गुप्त का बाह्य व्यक्तित्व गांधीजी के स्वरूप के समान नजर आता है। गांधीजी का 'मूलमंत्र' सादा जीवन उच्च विचार' सदा ही गुप्त के व्यक्तित्व में झलकता है।

उनके बाह्य व्यक्तित्व में एक असाधारण आकर्षण था। उनकी कायिक बनावट में लम्बे कान एवं कानों के ऊपर बाल जो हमेशा उनकी गंभीरता की निशानी थे। लम्बी नाक, चौड़ा ललाट, साधारण मझोला कद, मजबूत शारीरिक गठन, हल्का–सॉवला रंग, विशाल बदन आदि कवि के व्यक्तित्व की बाह्य विशेषताएँ थी। इन विशेषताओं में एक ऐसा आर्कषण समाहित था कि एक बार कोई भी उनको देखने पर उनका होकर रह जाता था।

कविवर गुप्त समय–समय पर अपनी वेशभूषा में परिवर्तन करते रहते थे। वे गांधी टोपी, कुर्ता–धोती अक्सर पहना करते थे। उनकी टोपी नबावी तथा कुर्ता–धोती भारतीय शान थी। इस प्रकार उनकी पोशाक में भी साम्प्रदायिक एकता का भाव प्रकट होता है। विद्यार्थी जीवन में साहबी पोशाक पहनने वाले कवि गुप्त आल्हा–गान में खाकी रंग का साफा

---

1 डॉ.वंदना जादौन : शिक्षा मनोविज्ञान के आधार पृ. सं. 57

पहनते थे। इस प्रकार गुप्तजी की वेशभूषा में एक विशेष आकर्षण के साथ गम्भीरता भी दृष्टिपात होती है।

आंतरिक व्यक्तित्व –

किसी भी व्यक्ति का आंतरिक व्यक्तित्व उसके विचार एवं समझ पर निर्भर करता है। कवि गुप्त का आंतरिक व्यक्तित्व उस सागर के समान है, जिसमें कितनी ही विचारों रूपी नदियाँ आकर मिलती है, पर उन्होंने अपनी सीमा की मर्यादा को कभी नहीं तोड़ा। उनके जीवन में चाहें दाम्पत्य जीवन की निराशा हो या सम्मान का पारितोषिक हो, वे विजयस्तम्भ की भाँति स्थिर खड़े रहने वाले व्यक्ति थे। सामाजिकता, विनोद प्रेम और सद्भावना, प्रकृति प्रेम, अनुभूति निष्ठता, उनमें कूट–कूट कर भरी थी। अनुभूतिशील होते हुए भी वे स्वकेन्द्रीत नहीं थे।

कवि गुप्त के संबंधों का दायरा हिमालय की भांति विशाल था। जिससे विभिन्न पवित्र रिश्ते रुपी नदियों का उद्गम होता है, जो बिना किसी विभेद के सभी तटों को समान रुप से सिंचित करती रही हैं। उनके मन में साम्प्रदायिक भेदभाव लेश मात्र भी नहीं था। मुंशी अजमेरी उनके धनिष्ठ और निकटतम तथा परिवार के सदस्य के समान थे। वे मुसलमान होकर भी वैष्णव थे। इस प्रकार कवि का आंतरिक व्यक्तित्व भास्कर के समान दैदीप्यमान है।

व्यक्तित्व की विशेषताएँ –

किसी भी साहित्यकार का व्यवहार उसके स्वयं के व्यक्तित्व के अनुरूप ही होता है। उनके व्यक्तित्व का विकास उनकी प्रारंम्भिक अवस्था में ही प्रारंभ हो जाता है। मनुष्य का उद्देश्य समाज व देश को एक नई दिशा प्रदान करना होता हैं। जीवन एवं जगत् के प्रति उसकी कल्पना प्रगतिशील होती है। उसका व्यक्तित्व ऐसा ग्रहणशील माध्यम है, कि उसमें मानव समाज का विकास, पथप्रदर्शक, सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा, देश भक्ति तथा स्त्री–पुरुष के समान अधिकारों का संकलन होता है।

इन सब कसौटियों पर यदि हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के पक्षधर, पुनर्जागरण के अग्रदूत राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तित्व को परखा जाये तो वे खरे उतरते है। उनका व्यक्तित्व समाज के प्रति आदर्शवादी तथा मानवीय उत्तरदायित्वों के प्रति सशक्त एवं प्रगतिशील रहा है। उनका व्यक्तित्व समाज और राष्ट्र के हित एवं प्रगति के लिए समर्पित है। कविता उनके लिए मनोरंजन का उपकरण न होकर लोक–मंगल की साधना के उच्चतर प्रयोजन से युक्त है। वे व्यक्ति के शोषण नहीं पोषण करने के समर्थक है। परोपकार एवं परपीड़ाहरण उनका मूल मंत्र था। कवि का मानना है कि आज हिन्दुस्तान में विदेशियों का निवास होना हमारी परदुःखकातरता का कारण रहा है–

" अन्याय–अत्याचार करना तो किसी पर दूर है
जिसका किया हमने किया उपकार ही भरपूर है।
पर पीड़ितों की सेवा कर जो दुःख हम खोते नहीं
तो आज हिन्दुस्तान में ये पारसी होतें नहीं। " 1

कविवर गुप्त गाँधीजी को अपना प्रेरणा स्रोत मानते थें। वे गाँधीजी के साथ राष्ट्रीय आन्दोलनों से भी जुड़े रहे। राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने के कारण उनको जेल भी जाना पड़ा। जो उनका देश के प्रति समर्पण भाव था। उन्हें झांसी की जेल में रखा गया। आजादी की रणभूमि में देशवासियों को मातृभूमि की रक्षा हेतु अपने आप को समर्पित करने की हूँकार भी उन्होंने भरी। गाँधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन की प्रशंसा और अपने स्वदेश के प्रति अपने काव्य में जो निष्ठा व्यक्त की है वह आजादी के आन्दोलन में मील का पत्थर सिद्ध हुई। कवि गुप्त ने विदेशी शासन से त्रस्त भारतीयों की आजादी प्राप्ति का समर्थन पुरजोर किया है। वे गाँधीजी के योगदान को स्वीकार करते हुए 'स्वदेश–संगीत' मुक्तक काव्य में लिखते हैं कि –

" प्रेम सहित, आतंक–रहित था
उसका प्रबल प्रताप,

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती पृ. सं. 50

पुण्य है पुण्य, पाप है पाप,
कभी, किसी का चला न चारा।
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा।" **1**

व्यक्ति को अपने जीवन में दूसरे व्यक्तियों के द्वारा किये गये उपकारों को स्वीकार करना चाहिए। कवि गुप्त अपने जीवन में दूसरों के द्वारा किये गये उपकारों को स्वीकार करने वाले व्यक्ति थे। उनका मानना था कि यदि रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास पर यदि हनुमानजी की कृपा न होती तो वे निश्चय ही रामचरितमानस की रचना नहीं कर पाते। इसी प्रकार कवि गुप्त ने स्वीकार किया कि उन्हें काव्य–सृजन की प्रेरणा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्राप्त हुई। द्विवेदी जी की उन पर अपार कृपा थी और यह उसी गुरुकृपा का परिणाम है कि उन्होंने अनेक बहुमूल्य कृति–रत्नों से हिन्दी साहित्य के भण्डार को गौरवान्वित किया। द्विवेदी जी की कृपा को उन्होंने इस प्रकार कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया–

" करते तुलसी भी, कैसे मानस–नाद ?
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद। " 2

भारतीय मनीषियों का मूलमंत्र है कि मनुष्य को अपने धर्म में आस्था रखकर धर्मपालक होना चाहिए। इसी मूलमंत्र का जाप करने वाले कवि गुप्त धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनकी यह प्रवृत्ति हिमालय की भाँति उत्तुंग, गंगा की भाँति उदार और ध्रुव की भाँति अटल थी। इसलिए आज के भौतिक वैज्ञानिक युग में भी वे अपनी धार्मिक भावना, आस्था और निष्ठा को पूर्णतयः सँजोये हुए है।

उनकी धार्मिक मान्यताएँ सम्पूर्ण मानव जाति को एकता के सूत्र में पिरोये हुए है। वे 'भारत भारती' में मानव द्वारा स्वार्थवश ईश्वर को बाँटने वाले लोगों पर प्रहार करते हुए कहते है कि यह हमारा दुर्भाग्य है कि मानव ने ईश्वर को विभिन्न मत–मतान्तरों में बाँट दिया जिससे हममें आपसी शत्रुता को बढ़ावा मिला और यह बंटवारा हमारे आपसी वैष्मय का कारण भी बना है–

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश–संगीत पृ. सं. 99

2 मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 01

" प्रभु एक किन्तु असंख्य उसके नाम और चरित्र हैं,
तुम शैव, हम वैष्णव, इसीसे हा अभाग्य! अमित्र हैं।
तुम ईश को निर्गुण समझते, हम सगुण भी जानते,
हा ! अब इसीसे हम परस्पर शत्रुता हैं मानते। " 1

कवि गुप्त भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि और आख्याता माने जाते है। इनके जीवनकाल में हिन्दी साहित्य ने कितनी ही करवटें ली कितने ही साहित्यवाद आए और चले गए, कितनी ही काव्य रीतियाँ आविर्भूत हुई और साहित्य सागर में विलीन हुई, पर कवि गुप्त अपने पथ पर पैर जमाये ध्रुव की भाँति अटल खड़े रहे, उससे जरा भी टस से मस नहीं हुए। यह उनके महान व्यक्तित्व की दृढ़ता का परिणाम था।

भारतीय संस्कृति में नारी का विशेष, महत्वपूर्ण एवं आदरणीय स्थान रहा है। कवि गुप्त ने भी नारी के प्रति अपनी श्रद्धा साहित्यिक दृष्टि से उपेक्षित यशोधरा, उर्मिला, विष्णुप्रिया आदि नारी पात्रों को उचित स्थान प्रदान करके प्रकट की है। वे समस्त नारी समाज की ओर पुरुष जाति का ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं कि नारियों की दुर्दशा के लिए पुरुष स्वयं जिम्मेदार है। क्योंकि हम उन्हें संतानोंत्पति का एक साधन मात्र मानते हैं कवि गुप्त का मानना है कि –

" पाले हुए पशु–पक्षियों का ध्यान तो रखते सभी,
पर नारियों की दुर्दशा क्या देखते हैं हम कभी ?
हमने स्वयं पशु–वृत्ति का साधन बना डाला उन्हें,
सन्तान–जनने मात्र को वसनान्न दे पाला उन्हें। " 2

किसी भी देश की संस्कृति वहाँ की उन्नति की परिचायक होती है। संस्कृति के विकास में उस देश के नागरिकों का अमूल्य योगदान होता है। कवि, लेखक उस संस्कृति के वाहक होते हैं। कविवर गुप्त भी भारतीय संस्कृति के अनन्य प्रशंसक थे। लेकिन संस्कृति के अंधानुकरण की प्रवृत्ति उनमें नहीं थी। इनके काव्य में भी सांस्कृतिक पृष्ठाधार एकदम सटीक एवं उपयुक्त है। उनकी

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती पृ. सं. 116

2 वहीं, पृ. सं. 125

भारतीय संस्कृति के प्रति इस विशेषता को डॉ. नगेन्द्र ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस प्रकार उद्घोषित किया है। " अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं में आस्था रखने पर भी उन्होंने युगधर्म की कभी उपेक्षा नहीं की वे भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता होने के साथ–साथ नवीन भारत के राष्ट्रीय कवि भी थे। "1

इस प्रकार कवि गुप्त का व्यक्तित्व राष्ट्रोत्थान के उन्नत लक्ष्य को पाने वाला तथा आधुनिक भौतिकवादी युग में भी समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रेरणा प्रदान करता है। उनका नारी विषयक दृष्टिकोण भारतीय नारी को गौरव प्रदान करने के साथ नारी के प्रति पूजनीय दृष्टिकोण का परिचय प्रदान करता है जो उनके के व्यक्तित्व की मौलिकता है।

निर्वाण –

प्रकृति का ध्रुव सत्य है कि संसार में जन्म लेने वाले प्रत्येक प्राणी को एक दिन दुनिया से विदा होना ही पड़ता है। हिन्दी साहित्यागार को अपनी अमर कृतियों से सुशोभित करने वाले राष्ट्रवादी विचारधारा से परिपूर्ण राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भी इस अटल सत्य से अछूते नहीं रहे। उनका 10 दिसम्बर सन् 1964 को अपने पैतृक निवास चिरगाँव में उनका स्वास्थ्य कुछ खराब हुआ। प्राथमिक उपचार लेने पर भी उसमें कुछ सुधार नहीं हुआ और रात भर नींद नहीं आई। 11 दिसम्बर सन् 1964 की सायं वेला में गहरी नींद ने उनको अपने आगोश में समेट लिया।

उनकी आत्मज्योति महाज्योति मे विलीन हो गई। 12 दिसम्बर 1964 को प्रातः 9.30 बजे उनकी शव यात्रा चिरगाँव, झाँसी से प्रारंभ हुई। जिसमें उनके परिवारजन, परिचित, सम्भ्रांत व्यक्ति, विद्वान तथा चिरगाँव की समस्त जनता शामिल हुई। कवि गुप्त के पवित्र शव को चिता पर लिटाया गया, फिर वैष्णव रीति से उनका अंतिम संस्कार किया गया। उनके पुत्र उर्मिलाशरण गुप्त ने पूज्य दद्दा के साकेतवासी होने पर अपने भावों को व्यक्त करते हुए माना है कि ईश्वर द्वारा प्रदत्त दद्दा को पुनः ले लिया गया–

---

1 डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. सं. 488

" जैसे बीते काल, बिता देना ही होगा,
जो कुछ देगा दैव, हमें लेना ही होगा। " 1

इस तरह हमारे बीच से वे चले गये जो मानव जाति तथा नारी गरिमा को सबसे अधिक अपनी छाया से ढ़के हुए थे। जो सबसे अधिक छायादार, फल–फूल व सांस्कृतिक गंध से भरे, नारी को सम्मान की ऊँचाइयों पर ले जाने वाले, वट–वृक्ष के समान थे। जिनकी स्मृति हम सब के मन में किसी यज्ञ की पवित्र आग की आँच की तरह आजीवन बनी रहेगी। हम सब उस पवित्र ज्योति की याद में श्रद्धानत है।

कृतित्व –

काव्य–कृतियों का परिचयात्मक विश्लेषण –

साहित्य शब्द में हित–सहित होने का भाव निहित है। साहित्य में जीवन और समाज के अनुभवों को ऐसा सरल, सरस एवं कलात्मक चित्रण होता है साहित्य प्रकृति और जीवन का लोकमंगलपरक व सर्जनात्मक अनुशीलन है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का साहित्य के संबंध में मानना है कि "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृतियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है।" 2

भारतीय सभ्यता संस्कृति एवं राष्ट्रीय एकता के सशक्त कवि मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य भी इन्हीं विशेषताओं को समेटे हुए हैं। कवि गुप्त की लेखन यात्रा सन् 1909 में उनकी प्रथम कृति 'रंग में भंग' से आरंभ होकर सन् 1960 में 'रत्नावली' के प्रकाशन तक अनवरत चलती रही। इस दीर्घकालिक सृजन यात्रा में गुप्त ने अपनी लेखनी से हिन्दी साहित्यगार में श्रीवृद्धि की। अपनी काव्य यात्रा में कवि गुप्त ने युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप अपने रचनात्मक प्रतिभा और सर्जनात्मक शक्ति को समाज और राष्ट्र की हित प्रगति के लिए समर्पित कर दिया था। कविता उनके लिए मनोरंजन का उपकरण न होकर लोकमंगल की साधना के उच्चतर प्रयोजन से युक्त होकर ही सार्थक थी। उन्होंने स्पष्ट कहा था–

---

1 उर्मिला शरण गुप्त : साकेत (सम्पादक) पृ. सं. 01

2 रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. सं. 01

" केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए ,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।" 1

किसी भी भाषा के साहित्य में उस भाषा के कवि, लेखकों द्वारा तात्कालिक युग एवं परिवेश का चित्रण अनिवार्यतः किया जाता है। कवि गुप्त ने भी हिन्दी को प्रचुर मात्रा में साहित्य प्रदान किया है जो कि युग–प्रवृत्ति के अनुरूप सभी विधाओं में समेटे हुए है। उनका काव्य अपने समय में प्रचलित विभिन्न भाव धाराओं से प्रभावित है। उस समय में जो नई भावनाएँ जाग्रत हुई, तब कवि गुप्त ने उस भाव धारा पर अपनी लेखनी चलाने में कोई हिचक नहीं की। उनके रचना कार्य पर डॉ. मंजू अग्रवाल ने अपने मत की पुष्टि करते हए लिखा है कि " साधारण फुटकर गीतों से लेकर महाकाव्य तक की रचना इन्होंने की है। इनकी काव्य प्रतिभा का आरंभ खण्डकाव्यों से होता है जो महाकाव्यों में जाकर चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो जाता है। " 2

कवि गुप्त का काव्य उनके कवित्व के उत्कर्ष का शिखर बिन्दु है। जिसमें विकास उतरोत्तर होता गया। उनके काव्य में उनकी युग चेतना, सांस्कृतिक भावना, जीवन दर्शन तथा काव्य–कला हमेशा मौजूद रही। विषय और काव्य की दृष्टि से उनके काव्य का वर्गीकरण निम्नांकित किया जा सकता हैं –

(1) **महाकाव्य** : (अ) साकेत (ब) जय भारत

(2) **खण्डकाव्य** : रंग में भंग, जयद्रथवध, किसान, पंचवटी, शक्ति, सैरन्ध्री , वन–वैभव, वकसंहार, गुरुकुल, द्वापर, सिद्धराज, नहुष, अर्जन और विसर्जन, काबा और कर्बला, अजित, प्रदशिक्षा, युद्ध, पृथ्वीपुत्र, विष्णुप्रिया, रत्नावली आदि

(3) **मुक्तक काव्यः** भारत भारती, पद्य–प्रबंध, पत्रावली, वैतालिक, स्वदेश–संगीत, झंकार, मंगलघट, कुणालगीत, विश्ववेदना, अंजलि और अर्घ्य, राजा और प्रजा आदि प्रमुख है

(4) **चप्पू काव्य** : यशोधरा

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती पृ. सं. 157

2 डॉ. मंजू अग्रवाल : मैथिलीशरा गुप्त की काव्यकला पृ. सं. 13

(5) **अनुदित काव्य** : शकुन्तला, विरहिणी व्रजागना, प्लासी का युद्ध, मेघनाद वध, स्वप्नवासवदत्ता, उमर खय्याम की रुबाइयाँ आदि।

(6) **नाटक** : तिलोत्तमा, चन्दहास, अनघ आदि।

महाकाव्य –

भारतीय आचार्यों ने काव्य के दो भेद किये है। दृश्य काव्य और श्रव्य–काव्य। दृश्य काव्य के अंतर्गत नाटक, तथा दृश्य काव्य के अंतर्गत गद्य, पद्य और चम्पू काव्य आते हैं। पद्य काव्य की श्रेणी में प्रबंध काव्य तथा मुक्तक काव्य समाहित है प्रबंध काव्य में महाकाव्य समाहित है। महाकाव्य को परिभाषित करते हुए डॉ.कृष्णदेव शर्मा ने लिखा है कि "महाकाव्य में कथा प्रवाह विविध भंगिमाओ के साथ मोड़ लेता आगे बढ़ता है, अधिकतर वर्णनों या व्यंजनाओं पर ही कवि की मूल दृष्टि रहती है। " 1

इस प्रकार काव्य की विषय प्रधान विधाओं में महाकाव्य का स्थान महत्वपूर्ण है। महाकाव्य को प्रबंध काव्य के अंतर्गत ही रखा जाता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य के स्वरूप का विवेचन सर्वप्रथम आचार्य भामह के विवेचन में प्राप्त होता है। महाकाव्य की कथा सर्गों में विभाजित होती है। प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग होता है। महाकाव्य का नायक सद्वंश में उत्पन्न राजा होता है । इन सब कसौटियों के आधार पर कवि गुप्त के महाकाव्यों को कसा जाये तो वे खरे उतरते हैं। उनके महाकाव्यों से हिन्दी साहित्यकोश प्रकाशमान है।

साकेत – सन् 1932

साहित्य में प्रत्येक काव्यकृति का नाम साभिप्राय और सार्थक होता है। यह नामकरण कवि, कथावस्तु , नायक, और स्थान विशेष के आधार पर होता है। 'साकेत' महाकाव्य का नामकरण भी प्रभु श्रीराम के लीलाधाम साकेत (अयोध्या) के आधार पर हुआ है। कविवर गुप्त की साकेत के प्रति विशेष आसक्ति थी। उनके साहित्यागार में 'साकेत' महाकाव्य कवि की प्रमुख रचना है। जिसमें रामकथा वर्णित है। प्रभु श्रीराम ने संसार को पथ दिखाने के

---

1 डॉ. कृष्णदेव शर्मा : भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र पृ. सं. 158

लिए और असुरों का संहार करके संसार में सुख शांति स्थापित करने के लिए अवतार लिया है। जिस प्रकार काव्य में नाटकों को श्रेष्ठ माना गया है, उसी प्रकार हिन्दी साहित्य के आधुनिक महाकाव्यों में 'साकेत' को उत्कृष्ट माना गया है।

'साकेत' महाकाव्य कवि गुप्त की दीर्घकालीक काव्य–साधना का परिणाम है। द्विवेदीयुगीन कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' लेख से प्रेरित होकर उन्होनें इस क्षति–पूर्ति हेतु 'साकेत' महाकाव्य की रचना की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साकेत की रचना का उद्देश्य बताते हुये लिखा है– "साकेत की रचना तो मुख्यतः इस उद्देश्य से हुई है कि उर्मिला 'काव्य' की उपेक्षिता न रह जाये।" 1 कवि गुप्त ने राम कथा को आधार बनाकर रचित इस महाकाव्य का प्रमुख उद्देश्य रामकथा में उपेक्षित किन्तु तपस्वी पात्रों–उर्मिला, लक्ष्मण, भरत, आदि के चरित्र का भावपूर्ण उन्मेष दिखाकर रामकथा को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अधिक तर्कसंगत, मनोवैज्ञानिक तथा युगसापेक्ष बनाकर प्रस्तुत करना है।

कवि गुप्त 'साकेत' महाकाव्य की कथा का आरंभ राम के राज्याभिषेक की तैयारी तथा लक्ष्मण–उर्मिला के उल्लासित प्रेमालाप से होता है। प्रथम सर्ग से लेकर आठवें सर्ग में अयोध्या कांड की सभी घटनाएँ वर्णित है। 'नवम् सर्ग' में उर्मिला के विरहवर्णन की प्रासंगिक पृष्ठभूमि तैयार की है। 'साकेत' महाकाव्य में कवि गुप्त ने राम और सीता के महत्व को अक्षुण्ण रखते हुए, भातृ–भक्त लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के महत्व को प्रतिपादित करना, उनके चरित्र का उन्नयन चित्रण कर उर्मिला की उदार सहिष्णुता, लोकमंगलकामना और तपस्पूत उत्सर्ग भावना की नवीन उद्भावना की है।

इस महाकाव्य में कवि गुप्त ने साहित्यिक एवं सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित पात्रों को अभिनव व्यक्तित्व और महत्व देने का भरसक प्रयास किया है। कवि ने भरत की माता कैकेयी को भी विस्मृत न करके पंचवटी प्रसंग के माध्यम से उनके माथे पर लगे कलंक का उदारमयी गंगा के जल से प्रक्षालित करके मनोवैज्ञानिकता के संस्पर्श से उसके चरित्रगत कलंक को मिटाने का यथासाध्य प्रयास किया है।

---

1 रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. सं. 103

कवि गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य में अन्य पात्र जो साहित्य में किसी न किसी प्रकार से उपेक्षित थे। उन पात्रों को नूतन योजना के साथ वर्णित करना कवि का समग्र प्रयोजन है। जिनमें राम–सीता, लक्ष्मण–उर्मिला, भरत–माण्डवी, शत्रुघ्न–श्रुतिकीर्ति, दशरथ–कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, मन्थरा, उमा, सुलक्षणा, केतकी, रति, कमला, ताड़का, अहिल्या, शूर्पणखा, शबरी, अंजनी, आदि को भी व्यापक चरितोत्कर्ष के साथ प्रस्तुत किया है। इस प्रकार 'साकेत' महाकाव्य की महत्ता आज भी सार्थक व प्रासंगिक है।

जयभारत – सन् 1952

भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि और आख्याता कवि मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रमुख कवि है। भारत की राष्ट्रीय चेतना और देश भक्ति की प्रमुख एवं प्रखर भावनाओं के कारण उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से विभूषित किया गया है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना, देश–प्रेम, सांस्कारिक आस्था, नैतिकता, सार्थक सोद्देश्यता एवं पौराणिक, ऐतिहासिक वृत्तों का बुद्धिसंगत और प्रासंगिक पुराख्यान इनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। इन विशेषताओं के आधार पर कवि गुप्त के 'जयभारत' महाकाव्य को परखा जाये तो 'जयभारत' उनका सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि महाकाव्य है जिसमे भारत देश के प्राचीन गौरव तथा उसकी महिमा का वर्णन किया है।

'जयभारत' कवि गुप्त का सर्वाधिक विशाल महाकाव्य है जिसमें नहुष के जन्म से लेकर पांडवों के स्वर्गारोहण तक सभी प्रमुख महाभारतकालीन घटनाओं का समावेश किया है। महाभारत की घटना के बाद होने वाले विनाश को कवि गुप्त ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में देखने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि शासक अपने स्वार्थो की पूर्ति हेतु विनाश करता है। इस महाकाव्य में मानव जाति के महत्व की स्थापना करना उनका मूल उद्देश्य है।

नायक युधिष्ठर में मानवीय गुणों का औदात्य अपनी चरम सीमा पर है। 'जयभारत' के अन्य क्रूर एवं उपेक्षित पात्र भी मानवता का जयघोष करते दृष्टिगत होते हैं। कवि का मानना है कि यदि भूमि पर जन्म लेने वाला मनुष्य विन्रमता धारण कर ले तो अपने लक्ष्य को सरलता से प्राप्त कर सकता है। वे जयभारत महाकाव्य में युधिष्ठिर के माध्यम से कहते है कि –

" धन्य हमारी धरा, जहाँ तुम प्रकट हुये प्रत्यक्ष।
नम्र भाव धारण कह हम भी साधे अपना लक्ष्य।" 1

कवि गुप्त ने 'जयभारत' महाकाव्य की कथा का पुनःराख्यान महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित 'महाभारत' की कथा के आधार पर किया है। 'जयभारत' की कथा को आधुनिक संदर्भ में इस प्रकार प्रकट किया है कि उनका एकमात्र उद्देश्य मानव जाति की रक्षा रह जाता है। 'जयभारत' महाकाव्य में उपेक्षित पात्रों को उन्होंने श्रेष्ठ स्थान देने का प्रयास किया है। डॉ. माधुरी खोंसला ने 'जयभारत' के पात्रों की महत्वता कि ओर इंगित करते हुये लिखा है कि " जिसमें एक ओर उपेक्षित एवं दूषित पात्रों का उद्धार परिष्कार है, तो दूसरी ओर पारिवारिक परिवेश में भारतीय संस्कृति को आधुनिक स्वरों में पुनर्व्याख्यायित किया गया है। " 2

इस प्रकार 'जयभारत' महाकाव्य समकालीन परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति है। जिसमें कवि गुप्त ने मानव मूल्यों की स्थापना करके मानव द्वारा इन मूल्यों को ग्रहण करने का संदेश दिया है। अतः 'जयभारत' महाकाव्य की कथा को महाभारत की कथा के साथ भारत देश के संदर्भ में भी ग्रहण किया जा सकता है। इस प्रकार कवि गुप्त 'जयभारत' महाकाव्य में मानवतावादी आदर्श की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है।

खण्डकाव्य –

प्रबंध काव्य का दूसरा भेद खण्डकाव्य है। खण्डकाव्य की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कथावस्तु सम्पूर्ण न होकर उसका एक अंश ही भी होता है। प्रायः जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना या दृश्य का इसमें मार्मिक उद्घाटन होता है और अन्य प्रसंग संक्षेप में रहते हैं। खण्डकाव्य में किसी एक घटना, परिस्थिति अथवा पहलू का वर्णन होने के कारण इतना अवसर ही नहीं होता है कि जीवन की समग्रता का वर्णन किया जा सके।

डॉ. भगीरथ मिश्र ने खण्डकाव्य को परिभाषित करते हए लिखा है कि "काव्य के एक देश के एक अंश का अनुशरण करने वाला खण्डकाव्य है। इसमें कथा संगठन आवश्यक है, सर्गबद्धता नहीं। इसमें भी वस्तु–वर्णन, भाव–वर्णन एवं चरित्र का चित्रण किया

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : जय भारत पृ. सं. 102

2 डॉ.माधुरी खोंसला : मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में पात्रों की परिकल्पना, पृ. सं. 60

जाता है, पर कथा विस्तृत नहीं होती। " 1 इन विशेषताओं के आधार पर कवि गुप्त के प्रमुख खण्डकाव्यों का परिचय निम्नांकित है।

रंग में भंग –सन् 1909

'रंग में भंग' कवि गुप्त का प्रथम खण्डकाव्य है। प्रस्तुत खण्डकाव्य सन् 1909 में प्रकाशित हुआ। इस खण्डकाव्य में राजपूती आन–वान–शान के साथ यह बतलाया है कि बिना सोचें समझे बोली गई वाणी कभी भी रंग में भंग डाल सकती है अथवा विनाश का कारण बन सकती है तथा बोलने वाला व्यक्ति लज्जित महसूस करता है। कवि गुप्त ने इस मत के समर्थन में लिखा है कि –

" वचन सुन यों नृपति के कविराज लज्जित हो गये,
पड़ गये दृग दीन मानों कंज हिम से धो गये।
प्रथम सोच विचार जो बात है कहता नहीं,
वह विना लज्जित हुए संसार में रहता नहीं । " 2

इस धारणा को सिद्ध करने के लिए कवि गुप्त ने राजस्थान के बूॅन्दी राज्य की घटना को आधार बनाया है। बूॅन्दी नरेश वरसिंह की पुत्री का विवाह चित्तौड़ नरेश खैतल के साथ सम्पन्न होता है। बारात विदाई के समय राजा खेतल की प्रशंसा करता हुआ उनका राजकवि बारू उनके बारे में कहता है कि आपके समान स्वर्ग तथा पाताल में कोई भी दानी नहीं, और अगर दानी है तो मैं अपना सिर कटवा सकता हूँ। इस पर राजा वरसिंह कहते है कि ईश्वर से बड़ा दानी राजा खैतल नहीं हो सकता। तब कवि बारू लज्जा के कारण स्वयं अपना सिर कलम कर लेता हैं। जिसे वर पक्ष के लोग अपना अपमान समझते हैं, इस प्रकार रंग में भंग हो जाता है। लेकिन राजकुमारी सुचेता अपने पतिधर्म व सतीत्व का पालन करती हुई अंत में पति खैतल के साथ सती हो जाती है। वह अपने पतिधर्म पर अडिंग रहती है। इस प्रकार नारी चरित्र की उच्चता का चित्रण प्रस्तुत काव्य की विशेषता है।

---

1 डॉ.भगीरथ मिश्र : भारतीय काव्यशास्त्र पृ. सं. 62

2 मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग पृ. सं. 10

जयद्रथ वध – सन् 1910

'जयद्रथ वध' कवि गुप्त का ऐतिहासिक खण्डकाव्य है। इसका प्रकाशन सन् 1910 में हुआ। इस काव्य की घटना का मुख्य आधार 'महाभारत' का भीष्मपर्व है। जिसका आधुनिक संदर्भ राष्ट्रप्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना है। इस प्रकार प्रस्तुत खण्डकाव्य द्वारा कवि गुप्त ने बताया है कि भारत देश की आजादी में नर के साथ नारी का योगदान भी अविस्मरणीय है। पराधीन राष्ट्र में व्याप्त निरुत्साह और अवसाद को अत्यंत तीव्रता से अनुभव करते हुए उत्तरा अपने पति अभिमन्यु को राष्ट्र रक्षा हेतु भेजकर क्षत्राणी होने का परिचय देती है। इस प्रकार राष्ट्र रक्षा में दम्भ भरने वाले पुरुष के स्थान पर नारी के योगदान का चित्रण प्रस्तुत काव्य का प्रयोजन है।

" क्षत्राणियों के अर्थ भी सबसे बड़ा गौरव यही।
सज्जित करें पति–पुत्र को रण के लिए जो आप ही। " 1

किसान – सन् 1917

'किसान' खण्डकाव्य की रचना कवि गुप्त ने सन् 1917 में की थी। कवि गुप्त ने 'किसान' खण्डकाव्य के माध्यम से देश के जनमानस का ध्यान उस महत्वपूर्ण वर्ग की ओर खींचा है, जो सामाजिक,राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आधार पर देश में अन्य वर्गो से पिछड़ा हुआ है। किसान अन्नदाता होकर भी स्वयं अन्न से वंचित है। आज देश के किसान को भूखे मरने की नौबत आ गई है कवि गुप्त ने किसान की स्थिति का चित्रण करते हुये माना है कि –

" कुत्ते भी हैं किसी भाँति दग्धोदर भरते।
करके अन्नोत्पन्न हमीं है भूखों मरते।" 2

इस प्रकार किसान खण्डकाव्य में कवि गुप्त ने शोषित और वंचित वर्ग की विषम परिस्थितियाँ का परिचय देते हुये किसान की दिनचर्या को प्रभावी अभिव्यंजना के साथ प्रस्तुत किया है।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : जयद्रथ वध पृ. सं. 11

2 मैथिलीशरण गुप्त : किसान पृ. सं. 10

पंचवटी – सन् 1925

कवि गुप्त के खण्डकाव्यों में 'पंचवटी' उनकी प्रमुख एवं महत्वपूर्ण रचना है। 'पंचवटी' खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् 1925 में हुआ। 'पंचवटी' काव्य के मूल में रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस' की चेतना विद्यमान हैं। 'पंचवटी' कवि गुप्त की काव्य रचना में एक क्रांतिकारी परिवर्तन है। उन्होंने शूर्पणखा में स्त्रियोंचित गुणों की छाप छोड़ी हैं जो राक्षसी होने के बावजूद स्त्री–सुलभ दया, विनय तथा दीनता के भावों से युक्त है। वह रात्रि के समय प्रहरी लक्ष्मण द्वारा अपमानित होने के बाद भी दाम्पत्य जीवन को ही श्रेष्ठ मानती है और अपनी भूल पर पछतावा करती है। इस प्रकार कवि गुप्त का शूर्पणखा के माध्यम से समाज में आपसी सहयोग की भावना के साथ सामाजिक मर्यादा को दर्शाना कवि का समग्र प्रयास है। वह देवी सीता से अनुनय–विनय करती हुई कहती है कि –

" रमणी बोली–रहे तुम्हारा मेरा रोम रोम सेवी,
कहीं देवरानी यदि अपनी मुझे बना लो तुम देवी। " 1

शक्ति – सन् 1928

'शक्ति' खण्डकाव्य कवि गुप्त का एक लघुकाव्य है। इस काव्य की कथावस्तु पौराणिक देव–दानव संग्राम पर आधारित है। जिसमें सम्पूर्ण शक्ति नारी में निहित की गई है। काव्य का आधार पौराणिक होते हए भी आधुनिक जीवन मूल्यों से सम्पृक्त है। इस काव्य में दुर्गा शक्ति के माध्यम से पराधीन भारत को स्वकर्त्तव्य एवं अधिकार का बोध करना ही कवि का प्रतिपाद्य है। लक्ष्य प्राप्ति के लिए मानव के सामूहिक प्रयत्नों की संस्तुति करते हए पराधीन देश को आत्मसम्बल के प्रति सचेत कराना ही काव्य की मूल चेतना है।

'शक्ति' काव्य में कवि गुप्त ने अनेक देवताओं द्वारा अपनी दिव्य शक्ति को दुर्गाशक्ति के रूप में समन्वित करना और दुर्गा द्वारा महिषासुर, शुम्भ, निशुम्भ और धुम्रलोचन जैसे दानवों का वध करना वर्तमान जीवन में अन्याय व अत्याचार के समापन की प्रेरणा प्रदान करता

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी पृ. सं. 41

है। इस प्रकार कवि गुप्त ने 'शक्ति' खण्डकाव्य में बताया है कि समन्वित प्रयास अगर अनाचार के खिलाफ किया जाय तो सफलता निश्चित है। इस विषय में कवि का मानना है कि –

संघ–शक्ति ही कलि दैत्यों का मेटेगी आतंक,
इतना कहते कहते हरि की हुई भृकुटि कुछ वंक।" 1

सैरेन्ध्री – सन् 1928

प्रस्तुत खण्डकाव्य का प्रकाशन कवि गुप्त ने सन् 1928 में किया। 'सैरन्ध्री' खण्डकाव्य की कथा महाभारत के एक प्रमुख प्रसंग पर आधारित है। अज्ञातवास के दौरान द्रौपदी विराट की रानी सुदेष्णा की दासी के रूप में सैरन्ध्री के छद्म वेश में रहती है। कीचक नामक राक्षस जो कि अनाचार का प्रतीक है। द्रौपदी पर मोहित होकर उसे पाना चाहता है। कीचक के कामातुर व्यवहार से संतृप्त होकर द्रौपदी पहले राजा की सभा में न्याय की गुहार लगाती है। परन्तु वहाँ न्याय न मिलने पर भीम के पास जाती है। भीम द्वारा कीचक का वध कर दुराचारी कीचड़ के समान कीचक को उसके पाप का फल देते हैं। इस प्रकार कवि गुप्त ने इस खण्डकाव्य में नारी शक्ति के माध्यम से यह बतलाया है कि पाप एवं असत्य प्रवृत्ति का विनाश निश्चित है। दूसरी ओर द्रौपदी के माध्यम से कवि गुप्त ने बताया है कि नारी अबला हो सकती है पर कुलटा नहीं। नारी संसार में ऐसा कोई काम करना नहीं चाहती जिससे उसकी मर्यादा भंग हो कवि गुप्त ने भारतीय सद्नारी को गुणों की खान मानते हुए लिखते है कि –

" है मेरा भी धर्म, उसे क्या खो सकती हूँ ?
अबला हूँ , मैं किन्तु न कुलटा हो सकती हूँ।
मैं दीना हीना हूँ सही, किन्तु लोभ–लीना नहीं,
करके कुकर्म संसार में मुझको है जीना नहीं। " 2

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : शक्ति पृ. सं. 08

2 मैथिलीशरण गुप्त : सैरन्ध्री पृ. सं. 07

वन वैभव – सन् 1928

प्रस्तुत खण्डकाव्य 'वन वैभव' की रचना कविवर गुप्त ने महाभारत के लघु प्रसंग के आधार पर की है। इस काव्य में कवि गुप्त ने आधुनिक सदर्भ में देश की एकता एवं अखण्डता पर बल दिया है। वन के वैभव में शांतिपूर्वक रहते हुए पाण्डवों को कष्ट पहुँचाने के लिए अज्ञानता एवं कुटीलता से वशीभूत होकर कौरव कुटिल बन जाते हैं। वे पाण्डवों को मारने की योजना बनाते हैं। जहाँ कौरवों को गंधर्वराज चित्ररथ द्वारा पराजित कर बंधक बना लिया जाता हैं। कौरवों के संकट के समय में पाण्डवों के द्वारा ही उनको मुक्त कराया जाता है। कौरवों की अज्ञानता और कुटिलता के विपरीत पाण्डवों के मन में सहयोग व सहायता की भावना रहती है। अंत में कौरव भी अपनी कुटिलता त्याग देते हैं।

इस घटना को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो कौरव तथा पाण्डव देश के दो समुदाय हिन्दू और मुस्लिम धर्म का प्रतिनिधित्व करते है। जब कोई बाहरी शक्ति आपसी फूट का लाभ उठाकर देश पर हमला करना चाहती है। तब हम भी पाँच पाण्डव व सौ कौरवों की भाँति मिलकर एक सौ पाँच हो जाए तो आक्रमणकारियों को मुँहतोड़ जबाब देगें। एकता में सामाजिकता का भाव है इसी भाव को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए वे लिखते है कि –

" जहाँ तक है आपस की आँच–
वहाँ तक वे सौ हैं, हम पाँच ।
किन्तु यदि करे दूसरा जाँच
गिनें तो हमें, एक सौ पाँच। " 1

वकसंहार –सन् 1928

'वकसंहार' नामक खण्डकाव्य का प्रकाशन कवि गुप्त ने सन् 1928 में किया। 'वकसंहार' खण्डकाव्य की घटना महाभारत के एक लघु प्रसंग पर आधारित है। जिसमें कवि गुप्त ने माता कुंती के माध्यम से नारी मातृत्व की व्यापकता, उदारता और जीवनोत्सर्ग को अभिव्यक्त किया है।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : वन–वैभव पृ. सं. 21

अज्ञातवास के समय पाँचों पाण्डवों द्वारा माता कुंती के साथ एक ब्राह्मण के घर छद्म वेश में आतिथ्य स्वीकार किया। उस परिवार के एक सदस्य को दैत्य वकासुर के यहाँ भोज्य रूप में जाना होता है उस परिवार की समस्या का समाधान माता कुंती अपने एक पुत्र भीम को भेजकर करती है। भीम द्वारा दैत्य का वध करके, प्रजा को अभयदान प्रदान करता है। इस तरह माता कुंती के रूप में नारी सुलभ मातृत्व की व्यापकता, उदारता एवं जीवनोत्सर्ग प्रस्तुत खण्डकाव्य की मौलिकता है।

विकटभट – सन् 1929

'विकटभट' कवि गुप्त का ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित प्रथम अतुकान्त खण्डकाव्य है। इस काव्य में कवि गुप्त ने राजस्थान के जोधपुर राज्य के राजपूतों की आन–वान–शान, दर्प, शौर्य एवं संकल्पशक्ति की अभिव्यक्ति दी है। काव्य का वर्ण्य राजपूती शौर्य, निर्भीकता, प्रतिज्ञा–पालन, बलिदान–भावना, सत्यनिष्ठा आदि है। इस प्रकार प्रस्तुत खण्डकाव्य में कवि गुप्त ने देश के युवाओं में राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य भावना का संचार किया है।

गुरुकुल – सन् 1929

'गुरुकुल' खण्डकाव्य में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने धार्मिक समन्वय, सामाजिक एकता, त्याग एवं बलिदान की भावना प्रकट हुई है। सिख गुरुओं के मानवीय आदर्श, त्याग, साहस, वीरता, बलिदान, आदि गुणों की अभिव्यक्ति प्रस्तुत खण्डकाव्य में की गई है। कवि ने उन गुरुओं तथा उनकी नारियों में भी पुरुष के सुख–दुख में यथाशक्ति सहयोग देने का परिचय दिया है जो कभी उनकी सफलता में बाधक न बनी, बल्कि छाया की भांति साथ खड़ी नजर आती है। कवि गुप्त ने गुरुकुल काव्य में गुरुपत्नियों के योगदान को इस प्रकार वाणी दी है–

" मैं संकट में साथ छोड़ दू, नाथ यही क्या मुझको न्याय।
भार सिद्ध हूँगी न कभी मैं, दूँगी यथाशक्ति सहाय। " 1

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : गुरुकुल पृ. सं. 110

कवि ने सिख गुरुओं की धर्मसाधना, नैतिकता, संयम, बलिदान के चित्रण के साथ साम्प्रदायिक सामंजस्य की भावना का प्रसार कर कवि ने भारतीय सामाजिक जीवन को पारस्पारिक बंधुत्व, स्नेह एवं सौहार्द की भावना को ओत–प्रोत किया है। गुरु नानक, अंगद, अमरदास, रामदास, हरिराय, अर्जुनदेव, हरगोविंद, तेगबहादुर आदि के जीवन की बलिदान–कथाए, त्याग आदि की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए गौरवशाली गुरु परम्परा की मार्मिक एवं ओजस्वी अभिव्यक्ति प्रस्तुत काव्य की मौलिकता है।

द्वापर – सन् 1936

'द्वापर' खण्डकाव्य की रचना कवि ने सन् 1936 में की थी। श्रीमद्भागवतगीता कथा के दशम्स्कन्ध के तेईसवें अध्याय की कथा को आधार बनाकर की गई इस रचना में श्रीकृष्ण अपनी मण्डली के साथ वन विहार करते हुए दूर निकल जाते हैं। वहाँ उनके बंधुओं को भूख लगती। निकट ही स्थान पर यज्ञ होता देख वे भोजन प्राप्ति के लिए उन्हें वहीं भेजते हैं, परन्तु याज्ञिक ब्राह्मणों द्वारा उन्हें दुत्कार कर भगा दिया जाता है। भगवान कृष्ण ने उन्हें फिर भी यज्ञशाला में भोजन हेतु भेजा परन्तु इस बार पुरुषों के पास नहीं, स्त्रियों के पास, वहाँ उनकी अभिलाषा पूरी हुई। इस प्रकार स्त्रियों ने उनकी भोजन देकर सहायता की। वे नारियाँ उदार भावना की परिचायिका है–

इस प्रकार कवि ने इस खण्डकाव्य में नवीन उद्गारों के साथ राधा, यशोदा, देवकी, कुब्जा और गोपीयों की मानसिक स्थितियों को आत्याभित्यंजक भावोद्गारों के रूप में व्यक्त किया है। 'द्वापर' की कुब्जा राधा की सौतन न होकर सेविका है और राधा से एक पल भी दूर नहीं रहना चाहती है–

" मेरा ही अधिकार यहाँ सुन, राधा रुष्ट न होगी,
दासी को वंचित कर, तेरी, रानी तुष्ट न होगी। "1

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर पृ. सं. 103

सिद्धराज – सन् 1936

'सिद्धराज' खण्डकाव्य की रचना कविवर गुप्त ने सन् 1936 में की थी। इस चरित्र प्रधान ऐतिहासिक खण्डकाव्य में कवि ने भारत के मध्यकालीन राजपूत वीरों की आन–वान–शान के साथ उनकी शूरवीरता, संकल्प–शक्ति तथा वचन–वद्धता के साथ उनकी मानवीय चारित्रिक दुर्बलताओं का प्रतिपाद्य करना कवि का मुख्य प्रयोजन हैं। कवि गुप्त ने इस खण्ड़काव्य में इतिहास और कल्पना का सुन्दर मिश्रण करके सिद्धराज जयसिंह द्वारा किए गए युद्धों का चित्रण करते हुए देश की राष्ट्रीय एकता और अखण्डता पर भी बल दिया है। उन्होंने सिद्धराज जयसिंह के माध्यम से राष्ट्रीय एकता और नारी के चरित्रोत्कर्ष की सुदंर व्यंजना की है। इस खण्डकाव्य में उनकी माता व पत्नी का चरित्रोत्कर्ष भी काव्य को उच्चता प्रदान करता है। डॉ. माधुरी खोंसला का मानना है कि " भारतीय नारी के आदर्श माँ और पत्नी रूप की आकर्षण व्यंजना भी काव्य को उत्कर्ष प्रदान करती है।" 1

नहुष – सन् 1940

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'नहुष' खण्डकाव्य हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य धरोहर है। यह भाव, भाषा और अभिव्यक्ति की दृष्टि से सरल, सरस एवं सुंदर रचना हैं इस खण्डकाव्य के माध्यम से कवि गुप्त ने मानव जाति को सावचेत करते हुए संदेश दिया है कि मनुष्य बार–बार ऊँचा उठने का प्रयत्न करता है। लेकिन नारी का अपमान और मानवीय दुर्बलताएँ उसे बार–बार गर्त की ओर ले जाती है। मनुष्य को उन पर विजय प्राप्त करनी ही होगी। मानव धर्माचरण, बुद्धि, कौशल, क्षमा और दया जैसे गुणों द्वारा उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है लेकिन अधिकाधिक सुख प्राप्ति पुरुषोचित दुर्बलताओं एवं अहंकार के कारण वे अकर्मण्य हो रहे हैं।

प्रस्तुत खण्डकाव्य की कथानुसार नहुष अपने सत्कर्मों द्वारा इन्द्रासन प्राप्त कर लेता है। स्वर्गाधिकार प्राप्त कर विषय भोगों में लीन होते हुए शची को भी अपनी कामाशक्ति का लक्ष्य बनाता है। इस प्रकार मानवोचित दुर्बलताएँ और नारी का

---

1 डॉ.माधुरी खोंसला : मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में पात्रों की परिकल्पना पृ. सं. 54

अपमान उसे अधोगामी बनाता है। वह अभिशिप्त होता हुआ स्वर्ग–भ्रष्ट होता है। लेकिन ऊपर उठने के दृढ़ निश्चय की अभिव्यक्ति उसका मनोबल टूटने नहीं देती। इस प्रकार नहुष मानव जाति को सतत् प्रयत्नशील तथा आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। कवि गुप्त ने नहुष के माध्यम से भारतीयों को आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए कहा है कि –

" गिरना क्या उसका उठा ही नहीं जो कभी ?
मैं ही तो उठा था आप, गिरता हूँ जो अभी ।
फिर भी उठूँगा और बढ़के रहूँगा मैं,
नर हूँ पुरुष हूँ मैं, चढ़के रहूँगा मैं। " 1

अर्जन और विर्सजन– सन् 1942

'अर्जन और विसर्जन' नामक खण्डकाव्य में इन दो कविता खण्डों का प्रकाशन कवि गुप्त ने सन् 1942 में किया। 'अर्जन' नामक कविता खण्ड में कवि ने नारी के त्याग, बलिदान तथा सीरियावासियों के देश–प्रेम, जाति गौरव एवं स्वधर्म निष्ठा को अभिव्यक्ति दी है। इन गुणों का देशवासियों को अर्जन करना चाहिए।

'विर्सजन' नामक कविता खण्ड में कवि ने अफ्रीका की 'मूर' जाति की रानी काहिना जो कि सम्पूर्ण नारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है। उसका दृढ़ चरित्र प्रस्तुत करते हुए स्वाधीनता एवं मानव मूल्यों को अभिव्यक्ति दी है। स्वाधीनता एवं राष्ट्र के लिए सर्वस्व विर्सजन गुप्त के आत्मोंत्सर्ग व्यक्तित्व का प्रतिफल प्रकट होता है। कवि गुप्त ने देशवासियों को देश की यज्ञ वेदी में अपना सर्वस्व विसर्जन करने का आह्वान किया है। अतः मानव को अर्जित भावों का अर्जन तथा विसर्जित भावों का विसर्जन प्रस्तुत खण्डकाव्य का मुख्य प्रतिपाद्य है।

काबा और कर्बला – सन् 1943

कवि गुप्त ने प्रस्तुत 'काबा और कर्बला' खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् 1943 में किया। 'काबा' खण्ड में कवि गुप्त के विराट समन्वयवादी व्यक्तित्व, मानवतावादी

1 मैथिलीशरण गुप्त : नहुष पृ. सं. 56

दृष्टिकोण तथा सर्वधर्म सम्भाव्य का स्वरूप उजागर हुआ है। उन्होंने इस्लाम धर्म के संस्थापक मोहम्मद साहब के उदार, मन बलिदान भावना तथा समन्वयता आदि मानवीय गुणों के बारे में बतलाते हुए कहा है कि मोहम्मद साहब द्वारा स्थापित मुस्लिम धर्म में उतनी कट्टरता नहीं है जितना लोग मानते है। उनके अनुसार कुछ स्वार्थी लोगों ने इस्लाम को कट्टरता का आवरण पहना दिया है। जिसके कारण आज इस्लाम धर्म लोगों की नजर में कट्टर धर्म बन गया है।

दूसरे खण्ड 'कर्बला' में मोहम्मद साहब के नाती इमाम हुसैन की उदार मानसिकता, दयालु प्रवृत्ति सर्वधर्म–समभाव, सहिष्णुता, स्वार्थरहित भक्ति तथा उनके द्वारा किये गये अनुकरणीय कार्यों को काव्यवद्ध किया गया है। कवि गुप्त ने इस खण्डकाव्य मे प्रत्येक भारतीय नागरिक को सर्वधर्म सम्भाव अपनाने पर बल दिया है। जो खण्डकाव्य का मूल उद्देश्य है –

अजित –सन् 1946

प्रस्तुत 'अजित' खण्डकाव्य की रचना कवि गुप्त ने सन् 1946 में अपनी कारावास अवधि के दौरान की थी। यह रचना बहुत समय बाद पूर्ण की थी। प्रस्तुत खण्डकाव्य का नामकरण भी उसके प्रमुख पात्र 'अजित' के नाम पर ही हुआ है। स्वयं कवि गुप्त के शब्दों में "अपने कारा–वास की स्मृति के रूप में 'कारा' नाम से कहीं मैने इस रचना का आरंभ किया था। बहुत दिनों तक यह अधूरी पड़ी रही। इधर जब मै इसे पूरा कर सका तब इसके प्रमुख पात्र अजित के नाम पर ही इसका नाम–संस्कार कर देना उचित समझा जान पड़ा।" 1

इस प्रकर 'अजित' नामकरण कवि गुप्त ने इस खण्डकाव्य के नायक के आधार पर किया है। इस खण्डकाव्य में कवि का विराट समन्वयवादी व्यक्तित्व, मानवतावादी स्वर का जयघोष एवं सांस्कृतिक समन्वय की भावना ही प्रमुख रूप से मुखरित हुई है। गाँधीजी की अहिंसा चेतना का प्रबल स्वर भी इसमें दिखाई देता है। कवि गुप्त ने स्वयं अहिंसा धर्म को अपनाते हुये मर्यादित अहिंसा धर्म अपनाने का आह्वान किया है। वे लिखते हैं कि –

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : अजित पृ. सं. 01

" स्वयं अहिंसा–धर्म मानता हूँ मैं दादा!
पर होती है एक धर्म की भी मर्यादा। " 1

प्रदशिक्षा – सन् 1950

'प्रदशिक्षा' खण्डकाव्य का प्रकाशन कवि गुप्त ने सन् 1950 में किया। इस खण्डकाव्य का मूलोद्देश्य रामभक्ति भावना को प्रकट करना हैं। प्रस्तुत काव्य में कवि ने प्रभु श्रीराम के प्रति अपनी निष्ठा और आस्था का पुनरोदय व्यक्त किया है। रामकथा का यह लघु संस्करण बिना किसी सर्ग या सन्दर्भ विभाजन के रामकथा का प्रस्तुतीकरण है। इसमें वैष्णव भक्त कवि गुप्त ने भगवान राम के जन्म से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की घटनाओं को प्रस्तुत खण्डकाव्य में प्रस्तुत किया है।

पृथ्वीपुत्र – सन् 1951

'पृथ्वीपुत्र' नामक खण्डकाव्य का प्रकाशन कवि गुप्त ने सन् 1951 में किया। इस खण्डकाव्य दिवोदास, जयिनी और पृथ्वीपुत्र नामक तीन कविताओं का संग्रह है। 'दिवोदास' लिखने की प्रेरणा कवि गुप्त को स्वतंत्रता सेनानी सम्पूर्णानन्द जी से मिली थी। संस्कृत साहित्य में संभवतः इस प्रकार की एक घटना है। इसका संकेत पाने के लिए कवि गुप्त लेखक सम्पूर्णानन्द जी का आभारी है। इस प्रकार कवि ने दिवोदास के माध्यम से राष्ट्रभक्ति का बीजारोपण किया है।

'जयिनी' नामक कविता खण्ड में मनीषी कार्लमार्क्स के दाम्पत्य जीवन की झलक है। जिसमें कवि गुप्त स्वयं ही उस ओर आकर्षित है। जिसमें मार्क्स के सिद्धांतों को कवि गुप्त ने व्यवहारिक रूप देने की चेष्टा की है।

'पृथ्वीपुत्र' कविता खण्ड में कवि गुप्त ने बताया है कि पृथ्वी सूर्य का एक टुकड़ा था, जो किसी समय टूटकर गिरा और करोड़ों वर्षों तक जलते रहने के पश्चात् ठंडा हुआ था। इस प्रकार जीवों की उत्पत्ति के कारण पृथ्वी को माता के समान और मानव को पुत्र के

1 मैथिलीशरण गुप्त : अजित पृ. सं. 49

समान मानकर पृथ्वी–पुत्र के रिश्ते का गरिमामय चित्रण किया है। जिसमें माता पृथ्वी अपने पुत्र को हमेशा आगे बढ़ता देखती है। क्योंकि मानव पृथ्वी पर ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। कवि गुप्त ने माता पृथ्वी के माध्यम से मनुष्य को आगे बढ़ने की अभिलाषा इस प्रकार व्यक्त की है –

" तुमको बड़े से बड़ा देखना चाहती हूँ मैं।
मेरे जात जन्तुओं में मुख्य तू ही है।" 1

युद्ध – सन् 1951

'जयभारत' के युद्ध शीर्षक खंड का प्रकाशन सन् 1951 में हुआ। महाभारत के युद्ध के आरम्भ से लेकर दुर्योधन के गदा–युद्ध में परास्त होने तक के युद्ध के अठारह दिनों की घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत कृति में कवि गुप्त ने किया है।

प्रस्तुत खण्डकाव्य में आधुनिक संदर्भ में युद्ध से होने वाले विनाश एवं विकास की रुकावट को वर्णित किया है। कवि गुप्त ने कृष्ण, बलराम और युधिष्ठर द्वारा युद्ध के परिणामों की भयंकरता संबंधी उनका चिन्तन काव्य को मौलिक धरातल प्रदान करता है। युद्धों का प्रभाव केवल एक पीढ़ी पर ही नहीं पड़ता अपितु आने वाली पीढ़ी भी उस विभिषिका को झेलती है। युद्ध चाहे हिरोशिमा या नागाशाकी का हो या भोपाल गैस दुखांतिका का दर्द, आज भी होने वाली बच्चों पर देखा जा रहा है।

विष्णुप्रिया – सन् 1957

खण्डकाव्य 'विष्णुप्रिया' का प्रकाशन सन् 1957 में हुआ। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने पति–परित्यक्ता नारियों को सामाजिक धरातल एवं गरिमामय स्थान प्रदान करने में 'विष्णुप्रिया' चरम सोपान पर अधिष्ठित है। कवि की उर्मिला एवं यशोधरा जैसे पात्रों के चरित्र की अवधारणा का चरम विकास 'विष्णुप्रिया' खण्डकाव्य में हुआ है। जिसमें विष्णुप्रिया चैतन्य महाप्रभु के सिद्धिमार्ग की बॉधक न बनकर सहयोगी की भूमिका में उभरी है

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : पृथ्वीपुत्र पृ. सं. 40

इस खण्डकाव्य में चैतन्य महाप्रभु का हृदय वैराग्य भावना तथा कृष्ण प्रेम से भरा है अतः वे अपनी माता शची और पत्नी विष्णुप्रिया को त्यागकर वैराग्य ले लेते है। लेकिन विष्णुप्रिया अपनी दुविधा को छोड़कर उस भूमीं पर ही रहने की कामना करती है जहाँ सब उर्वरा शक्ति के साथ सुखी एवं प्रेम पूर्वक रहे। इस प्रकार विष्णुप्रिया परहित भाव से अपने सफलता की नहीं अपने जीवन की प्रियतम के सफल होने की कामना करती है। स्वयं कवि गुप्त का मानना है कि –

" प्रियतम, न जाने तुम कहाँ ?
भूमि सुजला और सुफला हो, रहो जब जहाँ।
मैं सुयोग्य वधू तुम्हारी बन न पाई यहाँ,
तो बनो सत्यमेव मेरे योग्य वर तुम वहाँ।" 1

रत्नावली – सन् 1960

'रत्नावली' खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् 1960 में हुआ। कवि गुप्त का यह खण्डकाव्य पति–परित्यक्ता नारियों के जीवन चरित्रों की चिन्तन परम्परा में अंतिम सोपान है। 'रत्नावली' काव्य में कवि गुप्त ने गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी रत्नावली का चरित्र–चित्रण किया है। वह उनके साहित्य की अमूल्य निधि है। यह खण्डकाव्य का कोई उपजीव्य ग्रंथ न होकर लोक–मान्यताओं पर आधारित हैं। जिसमें कवि गुप्त ने नारी जीवन की करुणा, स्वाभिमान और पतिव्रत भावना का अलौकिक चित्रण किया है। रत्नावली हमेशा छाया के समान पतिव्रत धारण करती है। कवि गुप्त ने रत्नावली के पतिव्रत धर्म का चित्रण करते हुए लिखा है कि –

छाया भी छाया नहीं छोड़ती तरु की,
प्रिय तप की तृष्णा तृप्त करोगे कैसे ? 2

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया — पृ. सं. 43

2 मैथिलीशरण गुप्त : रत्नावली — पृ. सं. 32

इस प्रकार 'रत्नावली' खण्डकाव्य आत्मनिवेदन और आत्मग्लानि की द्विधात्मक धाराओं के बीच रत्नावली की वेदना ही कवि का मुख्य प्रतिपाद्य है।

मुक्तक काव्य –

हिन्दी साहित्य में मुक्तक काव्य का एक विशिष्ट स्थान है। मुक्तक काव्य कथा के बंधन से सर्वथा मुक्त काव्य की स्वतः सम्पूर्ण इकाई है। इसमें किसी भी छंद या काव्य इकाई का कोई पूर्वापर संबंध नहीं होता है। प्रत्येक का अपना पृथक प्रसंग, पृथक सौंदर्य होता है। आधुनिक काल में द्विवेदीयुग की फुटकर सभी कविताऐं मुक्त–काव्य की श्रेणी में समाहित है। गीतिकाव्य भी मुक्तक की कोटि में ही समाहित है।आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य में अंतर बताते हुए लिखा है कि –"प्रबंध काव्य विविध फूलों से सजी हरी–भरी वाटिका है, तो मुक्तक काव्य एक चुना हुआ गुलदस्ता है।" 1

हिन्दी साहित्य में कवि गुप्त ने अपने मुक्तक काव्य रूपी गुलदस्ते की महक से हिन्दी साहित्य को सुवासित किया है। जिसकी सुगंध जन–मानस में आज भी कायम है। कवि गुप्त के मुक्तक काव्य का परिचयात्मक विश्लेषण निम्नांकित है।

1 भारत भारती – सन् 1912

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती की रचना सन् 1912 में की थी। इस काव्य में कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत राष्ट्र की राष्ट्रीय चेतना को अवधारित किया है। कवि ने राष्ट्रीय चेतना के प्रेरक और उदयभावक ऐसे तत्वों का संबोधन तथा आवाहन किया है, जो अतीतकालीन गौरवपूर्ण इतिहास को विस्मृत कर चुके हैं और पराधीन तथा अधोगति के कारण बनें हैं। इस रचना के माध्यम से कवि गुप्त ने भारतीय इतिहास के अतीत से प्राप्त आदर्शों के अनुरूप राष्ट्र को पुनः प्राणवान बनाने का प्रयास किया हैं। इस काव्य में कवि गुप्त ने पुरुषों के साथ भारतीय

---

1 रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. सं. 186

इतिहास की उन नारियों का भी उल्लेख किया है जिन्होने अपना सर्वस्व समर्पण करके भारत देश की आन–बान–शान की रक्षा की। वे अपने पति, पुत्र के मोह को त्याग कर हँसते–हँसते उन्हें मातृभूमि की रक्षा हेतु विदा कर देती है। कवि ने वीर नारियों की भावना को इस प्रकार प्रकट किया है –

" हारे मनोहत पुत्र को फिर बल जिन्होनें था दिया,
रहत जिन्होनें नव–वधू के सुत–विरह स्वीकृत किया।
द्विज–पुत्र–रक्षा–हित जिन्होनें सुत–मरण सोचा नहीं,
विदुला, सुमित्रा और कुन्ती–तुल्य माताएँ रहीं।" 1

इस प्रकार प्रस्तुत मुक्तककाव्य में आदि से अंत तक राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय विचारधारा के कारण यह राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत रचना है। भारत भारती काव्य का स्थान हिन्दी साहित्य में सर्वोच्च एवं अमर है। डॉ.विनोद सोमानी 'हंस' ने 'मधुमती' पत्रिका में अपने लेख में 'भारत भारती' मुक्तक काव्य के विषय में लिखा है कि " वास्तव में गुप्तजी का काव्य भारत की प्राचीन संस्कृति और राष्ट्र की गौरव गाथा से अभिमंडित है।" 2

2 पद्य प्रबंध – सन् 1912

कवि गुप्त ने 'पद्य–प्रबंध' मुक्तक काव्य का प्रकाशन सन् 1912 में किया। यह स्फुट गीतों का संकलन है जो नीति–परक और उपदेशात्मकता से युक्त है। कवि गुप्त ने इन गीतों के माध्यम से व्यावहारिक जीवन में संचय की प्रवृत्ति तथा व्यय के जीवनादर्श को व्यक्त किया है। मानव जीवन में शिक्षा के महत्व तथा अशिक्षा से होने वाली हानियों को भी कवि ने 'पद्य प्रबंध' मुक्तक काव्य में मुखरित किया है। पराधीन भारत में भारतीयों को पराधीनता से होने वाले कष्टों को भी कवि ने अपनी कलम से कलमबद्ध किया है। इस प्रकार इस काव्य में कवि ने मानव जीवन में श्रेष्ठ आदर्शों की स्थापना पर बल दिया है।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती पृ. सं. 18

2 डॉ. विनोद सोमानी 'हंस' : 'दद्दा के काव्य में राष्ट्रीय भाव' (लेख) मधुमती, अगस्त 2006 पृ. सं. 08

3 पत्रावली – सन् 1916

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'पत्रावली' मुक्तक का प्रकाशन सन् 1916 में किया। यह सात ऐतिहासिक पत्रों का एक संग्रह है जिसमें कवि ने इन पत्रों के माध्यम से कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों को संबोधित करते हुए उन्हें कुछ पत्र लिखें है। इन पत्रों में मानव द्वारा किए गए नैतिक–अनैतिक कार्यों का कर्त्तव्याकर्त्तव्य तथा धर्माधर्म पक्षों का बोध कराया गया है।

आचार्य विनोबा भावे को लिखे गये पत्र द्वारा भूदान आन्दोलन की सार्थकता व्यक्त की गई है, साथ ही शोषक तथा शोषित के मध्य बढ़ते वैषम्य से बचने का परामर्श देते हुए समानाधिकारों वाले समाज की संरचना में भूदान का महत्व स्थापित किया है।

4 वैतालिक – सन् 1919

'वैतालिक' मुक्तक काव्य सन् 1919 में प्रकाशित हुआ। यह राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का एक जागरण गीत है। जिसमें उन्होंने पराधीन भारतीयों में आत्म–सम्मान की भावना के चित्रण के साथ परतंत्र भारतवासियों में जातीय गौरव, राष्ट्रप्रेम एवं नव जागृति की भावना का संचार किया हैं। कवि गुप्त का राष्ट्रप्रेम और मानवतावदी दर्शन 'वैतालिक' मुक्तक काव्य में उजागर हुआ है। उन्होंने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारण से सम्पोषित एवं प्रेरित होकर अपने देश विशेष की संस्कृति को विश्व की संस्कृति से जोड़कर भारतीयों को कर्मवीर होने का संदेश दिया है। कवि का मानना है कि –

" भारत माता के बच्चें, विश्व–बन्धु तुम हो सच्चे।
फिर तुमको किसका भय है, उद्यत हो जय ही जय है।" 1

5 मंगलघट – सन् 1924

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'मंगलघट' मुक्तक काव्य का प्रकाशन सन् 1924 में किया। 'मंगलघट' रचना में कवि ने 'चांडाल', 'दस्तानें' और 'टाइटनिक की सिन्धु–समाधि' आदि तीन कविताओं का संग्रह किया है। 'चांडाल' कविता के

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : वैतालिक पृ. सं. 23

माध्यम से कवि गुप्त ने हिन्दू धर्म में प्रचलित जाति प्रथा की अवधारणा का प्रबल खण्डन करते हुए नवीन समतामूलक समाज की स्थापना का संदेश दिया है। 'दस्ताने' कविता में कवि गुप्त ने राजूपतों के जातिगत शौर्य का परिचय देते हुए, स्वामिभक्ति, देशप्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावना का पुरजोर समर्थन किया है।

'टाइटनिक की सिन्धु–समाधि' कविता में कवि गुप्त ने 14 अप्रेल सन् 1912 ई. को टाइटनिक जलपोत के सागर में डूबने से हुए विनाश का एवं 2500 यात्रियों के डूबने का चित्रण करते हुए, अंग्रेज सैनिकों द्वारा किये गये बचाव के प्रयास एवं उनके नीतिपरक आचरण को कवि ने काव्यबद्ध किया है। इस प्रकार मंगलघट मानवीय आदर्शो की स्थापना की मौलिक रचना है।

6 स्वदेश–संगीत – सन् 1925

'स्वदेश–संगीत' मुक्तक काव्य का प्रकाशन कवि गुप्त ने सन् 1925 में किया। जिसमें 'निवेदन' से लेकर 'वैदिक–विनय' तक 65 कविताओं का संग्रह है। 'स्वदेश–संगीत' में कवि का हृदय अपनी मातृ–भूमि के प्राकृतिक और भौतिक वैभव की ओर आकर्षित है। कवि गुप्त ने तात्कालिक समय में आजादी पाने हेतु घटित होने वाली घटनाओं एवं स्थान का परिचय इन कविताओं के माध्यम से दिया है।

'स्वदेश–संगीत' को देशवासियों को प्रेरणा प्रदान करने के कारण उनकी राष्ट्रवादी रचना 'भारत–भारती' की प्रतिकृति कहा जा सकता है। इसमें प्राचीन भारत का गुणगान किया है। कवि गुप्त का मानना है कि विश्व के प्रत्येक व्यक्ति की भारत में निवास करने की हार्दिक अभिलाषा होती है। स्वयं कवि ने इस अभिलाषा को व्यक्त करते हुए लिखा है कि –

" भय–रहित भव–सिन्धु तरना सीख ले कोई यहाँ।
विश्व में आकर विचरना सीख ले कोई यहाँ। "1

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश–संगीत पृ. सं. 32

7 हिन्दू – सन् 1927

प्रस्तुत 'हिन्दू' मुक्तक काव्य खण्ड का प्रकाशन सन् 1927 में हुआ। इस रचना में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत देश के निवासी हिन्दू धर्म के लोगों को संस्कृति, धार्मिक मान्यताओं एवं सर्वधर्म सम्भाव की अवधारणा को प्रकट किया है। उनके अनुसार हिन्दू धर्म में मनाये जाने वाले त्यौंहार एक पक्षीय न होकर बहुपक्षीय है। जिसका सटीक उदाहरण रक्षाबंधन का त्यौहार है। इस त्यौंहार के मूल में रानी कर्मावती द्वारा अपनी रक्षार्थ हुमायूँ को राखी भेजना तथा हुमायूँ द्वारा उनकी सहायता करना इसके मूल में है। इस प्रकार इस काव्य में कवि का आशावादी दृष्टिकोण उजागर हुआ है।

8 झंकार – सन् 1929

कविवर मैथिलीशरण गुप्त द्वारा 'झंकार' की रचना सन् 1929 में हुई। जिसमें 'निर्बल का बल' से लेकर 'बस–बस' तक लगभग 63 कविताओं का संग्रह है। प्रस्तुत काव्य में कवि गुप्त की उन कविताओं का संग्रह है जो किसी न किसी कारणवश अन्य रचनाओं में प्रकाशित न हो सकी। कवि गुप्त की इन कविताओं का पाठ करने के बाद पाठक का मन झंकृत होना स्वाभाविक हैं। 'झंकार' के गीतों में प्रकृति के सौन्दर्य तथा रहस्यात्मकता को व्यक्त करने का कवि का अपना एक अलग प्रयास है। कवि गुप्त ने इसी रहस्यात्मकता को 'माधुरी' कविता में इस प्रकार उद्घाटित किया है –

" संसार कब से मुग्ध होकर मर रहा है,
आह ! तेरी माधुरी !
कवि–चित्रकार सुवर्ण–रंजित कर रहा है,
वाह तेरी माधुरी! " 1

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : झंकार पृ. सं. 49

9 कुणाल गीत – सन् 1942

प्रस्तुत 'कुणाल गीत' गीतिकाव्य का प्रकाशन सन् 1942 में हुआ।, जिसमें लगभग 95 गीतों का संकलन है। इस काव्य में कवि गुप्त ने बौद्धकालीन इतिहास की महत्वपूर्ण घटना को इस काव्य का आधार बनाया है। महाराज अशोक के पुत्र कुणाल को अपनी विमाता के क्रोध एवं प्रतिहिंसा के कारण देश से निष्कासित कर दिया जाता है।

लेकिन कुणाल के मन में बदले की भावना न होकर करुणा, अहिंसा और विश्वबन्धुत्व की भावना समाहित है। आजादी के संदर्भ में देखें तो कुणाल की माँ अंग्रेजों का, तथा कुणाल भारतीय नागरिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीयों के मन में विदेशियों के प्रति हमेशा दया करुणा तथा ममता की भावना रही हैं। प्रस्तुत काव्य का यही मुख्य प्रतिपाद्य है।

10 विश्व वेदना – सन् 1942

'विश्व वेदना' गीतिकाव्य का प्रकाशन सन् 1942 में हुआ। कवि गुप्त ने इस काव्य में यह प्रकट किया है कि न केवल भारत देश बल्कि सम्पूर्ण विश्व किसी न किसी वेदना से दुःखी है। कवि ने समग्र मानव जाति को आह्वान कर यह संदेश दिया है कि स्वार्थ तथा लोभ से प्रेरित वृत्तियाँ ही मनुष्य को हिंसक तथा विध्वंसक बनाती है। काव्य के अंत में कवि ने वैज्ञानिक शक्ति के दुरुपयोग और विनाशकारी उपयोग से त्रस्त मानव जाति का ध्यान इस ओर खींचा है कि वैज्ञानिक शक्ति का उपयोग विकास एवं सद्कार्यों में हो सके। अतः विश्व के वेदना के साथ नव–निर्माण का संदेश प्रस्तुत काव्य का प्रयोजन है।

11 अंजलि और अर्घ्य – सन् 1951

प्रस्तुत 'अंजलि और अर्घ्य' काव्य की रचना राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा सन् 1951 में की गई। यह एक शोक गीत है। जिसमें कवि ने राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी की अकाल मृत्यु पर शोक प्रकट किया है। कवि गुप्त ने स्वयं माना है कि

गॉधीजी की मृत्यु पर शोक हेतु रचना करना उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। 'अंजलि और अर्ध्य' के निवेदन में सहज ही इस बात को स्वीकारते हुए वे लिखते है कि "श्रद्धांजलि न देने में धर्म–हानि थी। इसी से बचने का यह प्रत्यन है। इतना भी करना सम्भव न होता, यदि वर्तमान व्याधियॉ इसे न कर जा सकने की ग्लानिमयी व्याधि उत्पन्न न कर देती।" 1 काव्य के अंत में राष्ट्रकवि गुप्त ने राष्ट्रपिता के हत्यारों को हिन्दू जाति पर कलंक माना है और बताया है कि गॉधीजी हमारे ही अपनों के द्वारा परलोक गये हैं। उनकी मुत्यृ से उत्पन्न लज्जा और शोक के जिम्मेदार हम स्वयं भारतीय है। कवि गुप्त ने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है कि –

" अरे राम! कैसे हम झेलें, अपनी लज्जा उसका शोक ?
गया हमारे ही पापों से, अपना राष्ट्रपिता परलोक। " 2

12 राजा–प्रजा, सन् 1956

कवि गुप्त ने 'राजा–प्रजा' मुक्तक काव्य का प्रकाशन सन् 1956 में किया। यह चिन्तन प्रधान कृति दो खण्डों 'राजा' और 'प्रजा' में विभक्त हैं। 'राजा' शीर्षक के अंतर्गत राजा (शासक) के कर्त्तव्य का बोध कराते हुए कवि ने आदर्श राज–व्यवस्था और जनकल्याण की अनिवार्यता तथा उपादेयता की ओर राजा का ध्यान आकर्षित किया है। कवि गुप्त का मानना है कि शोषण और गुलामी के बाद देशवासियों को मिली आजादी का खुलकर एवं अनुशासित रहकर उपयोग करना, तथा समतामूलक समाज की स्थापना राजा का मुख्य प्रयोजन होना चाहिए।

" सबके शासन में कौन सहे अनुशासन!
सबका समान पद और एक–सा आसन।
भोगी तुमने चिरकाल, कराल विषमता,
करके छोड़ोगे क्यों न भला तुम समता। " 3

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : अंजलि और अर्ध्य पृ. सं. 05
2 वहीं, पृ. सं. 09
3 मैथिलीशरण गुप्त : राजा–प्रजा पृ. सं. 16

'प्रजा' शीर्षक के अंतर्गत कवि गुप्त ने प्रजा के जो राजा के प्रति अपने कर्त्तव्यों की जानकारी दी है। प्रजा का यह दायित्व है कि वह आधी प्रजा की प्रतिनिधि 'नारी–शक्ति' का सम्मान व आदर करें। नारी की महिमा को कवि गुप्त ने मानते हुए बताया है कि हम अपनी उम्र के आधार पर ही उसका सम्बोधन करें । नारी ही वह शक्ति है जो नर की पशुवृत्ति की नाशक हैं। उनका मानना है कि –

" आधे का अधिकार उचित ही उन्हें मिला है,
मानव का पशुभाव उन्हीं के हाथ हिला है।
छोटों की माँ, और बड़ों की वे बेटी हैं,
समवयस्कों की बहन, कहाँ किसकी चेटी हैं।" 1

13 उच्छ्वास – (सन् 1960)

'उच्छ्वास' का प्रकाशन कवि गुप्त ने सन् 1960 में किया। यह काव्य कवि का अपने आत्मीय स्वजनों के निधन पर लिखी गई शोक कविताओं का संग्रह है। निजी दुःखों से सन्तृप्त कवि का हृदय द्रवीभूत होकर इन शोक प्रधान गीतों में प्रकट हुआ है। इस प्रकार उन्होनें स्वजनों की मृत्यु से शोक विह्वल काव्य में उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख करते हुए उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है।

इस प्रकार राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत–भारती' से लेकर 'उच्छ्वास' तक अपने मुक्तक–काव्य में भारतीय नारी के चरित्र, गौरव उसके विकास और समाज में सम्मानपरक स्थान की प्रतिष्ठा के लिए सम्पूर्ण संवेदना के साथ अपनी भावना प्रकट की है।

चम्पूकाव्य –

साहित्य मनीषियों ने साहित्य को गद्य और पद्य दो भागों में विभाजित किया है। गद्य–पद्य से मिश्रित रचना चम्पूकाव्य कहलाती है। अतः वह

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : राजा–प्रजा पृ. सं. 24

रचना विधान जिसमें साहित्य की दोनों विधाओं गद्य एवं पद्य का समन्वित प्रयोग हो चम्पूकाव्य की परिभाषा से परिभाषित किया गया है। चम्पूकाव्य की कसौटी पर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'यशोधरा' को कसा जाय तो उक्त रचना सौलह आना खरी उतरती है। डॉ.माधुरी खोंसला के शब्दों में "गुप्त ने कविता, गीत, नाटक, गद्य–पद्य सभी विधाओं के समन्वित रूप में 'यशोधरा' कृति की रचना की।" 1

यशोधरा –सन् 1932

प्रस्तुत 'यशोधरा' चम्पूकाव्य का प्रकाशन सन् 1932 में हुआ। कवि गुप्त ने 'यशोधरा' काव्य में पुरुष समाज के उस पूर्वाग्रह को तोड़ा है कि पुरुषों के भक्ति (सिद्धि) मार्ग में नारी बॉधक होती है। कवि ने युगों से उपेक्षित नारी पात्रों को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाने का भरसक प्रयास किया है। प्रस्तुत काव्य के कथानक का आरम्भ सिद्धार्थ गौतम के वैराग्य चिंतन से होता है। जरा, रोग, मृत्यु आदि के दृश्यों से वे भयभीत हो उठते हैं। अमृत तत्व की खोज के लिए गौतम पत्नी और पुत्र राहुल को सोते हुए छोड़कर 'महाभिनिष्क्रमण' करते हैं। यशोधरा का निरावधि विरह अत्यंत कारुणिक है। लेकिन विरह की दारुणता से भी अधिक उसको खलता है प्रिय का चोरी–चोरी जाना। स्वयं यशोधरा इस प्रकार प्रियतन जाने को जीवन में सबसे बड़ा आघात मानती है हुई कहती है –

" सिद्धि–हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात ,
पर चोरी–चोरी गये, यही बड़ा व्याघात । " 2

इस प्रकार अपमानित और कष्टपूर्ण जीवन की अपेक्षा यशोधरा मरण को श्रेष्ठतर समझती है। परंतु उसे मरण का भी अधिकार नहीं है, क्योंकि उस पर पुत्र राहुल के पालन–पोषण का दायित्व है। फलतः वह 'आँचल में दूध' और 'आँखों में पानी' लिए जीवनयापन करती है। सिद्धि प्राप्त होने पर गौतम बुद्ध लौटते है। सब लोग उनका स्वागत करते हैं परंतु मानिनी यशोधरा अपने कक्ष में रहती है। अंततः स्वयं भगवान बुद्ध उनके द्वार पहुँचते हैं और भीख मांगते हैं।

---

1 डॉ.माधुरी खोंसला : मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में पात्रों की परिकल्पना पृ. सं. 52

2 मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा पृ. सं. 20

यशोधरा उन्हें अपनी अमूल्य निधि राहुल को देती है तथा स्वयं भी उनका अनुसरण करती है। इस प्रकार कवि गुप्त के 'यशोधरा' चम्पूकाव्य की कथा का पूर्वार्द्ध तो इतिहास प्रसिद्ध है पर उत्तरार्द्ध कवि की अपनी उर्वर कल्पना की सृष्टि परिपूर्ण है।

अनुदित काव्य –

अनुदित काव्य से आशय यह है कि कवि या लेखकों द्वारा लिखे गये काव्यों या ग्रंथों के अनुशरण पर नवीन दृष्टिकोंण या नवीन उद्भावना के आधार पर काव्य की रचना करना है। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी अनेक अनुदित काव्यों की रचना कर साहित्यकोश में श्रीवृद्धि की है। कवि गुप्त के प्रमुख अनुदित काव्यों में 'शंकुतला', विरहिणी व्रजांगना, प्लासी का युद्ध, 'मेघनाद वध' स्वप्नवासवदत्ता, उमर खैय्याम की रुबाइयाँ आदि प्रमुख है।

शकुन्तला – सन् 1923

'शकुन्तला' कवि गुप्त की अनुदित रचना है। यह रचना सन् 1923 में प्रकाशित हुई। कवि कि यह काव्य कृति संस्कृत साहित्य के महाकवि कालिदास के विश्व–प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' पर आधारित है। इसके कथानक में एक बार राजा दुष्यंत शिकार खेलते हुए कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँच जाते है। वहाँ वृक्षों को सींचती शकुन्तला को देखकर दुष्यंत शकुन्तला के प्रति आकृष्ट हो जाते है।

इस प्रकार दोनों का गान्धर्व विवाह हो जाता है। इस बीच आश्रम में दुर्वासा ऋषि का आगमन होता है। आतिथ्य सत्कार के अभाव में दुर्वासा शकुन्तला को श्राप दे देते हैं। दुर्वासा के श्राप वश दुष्यंत द्वारा गर्भिणी शकुन्तला को न पहचानना तथा कालान्तर में स्मृति के पुनः प्रकाशित होने पर अंत में दोनों का पुनः मिलन होना। सभी घटनाओं को कवि ने अपनी लेखनी से आबद्ध किया है।

भारतीय संस्कृति की वर्णाश्रम व्यवस्था के पुरजोर समर्थक कवि गुप्त ने शकुन्तला काव्य में कालिदास के स्त्रीयोंचित गुणों को अपनाया है। गुरुजनों की सेवा करना, सपत्नीजनों पर प्रिय सखी जैसा व्यवहार करना, तिरस्कृत होने पर भी क्रोध के कारण पति के प्रतिकूल कार्य न करना, अपने आश्रित जनों पर उदार होना। इस प्रकार का आचरण करने वाली स्त्रियाँ सुगृहिणी पद को प्राप्त होती है। इसके विपरीत आचरण करने वाली स्त्रियाँ दोनों ही कुलों के लिए मानसिक व्यथा का कारण होती है। स्वयं कालिदास ने नारी में मानव मूल्यों की स्थापना हेतु कण्व ऋषि के शब्दों से शकुन्तला की विदाई के समय कहलवाया है –

" शुश्रूषस्व गुरून् कुरू प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयों वामाः कुलस्याधयः।। " 1

कवि गुप्त ने 'शकुन्तला' अनुदित काव्य में प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक मर्यादित आचारण की अपेक्षा की है। भारतीय संस्कृति में मानवीय गुण शील, लज्जा, मर्यादा, का स्थान प्रमुख माना है और कालिदास के मूल–भावों को वाणी दी है।

विरहिणी व्रजांगना – सन् 1925

'विरहिणी व्रजांगना' कवि गुप्त की अनुदित रचना है। कवि की यह कृति बंगाल के विख्यात कवि माइकेल मधुसूदन दत्त के 'व्रजांगना' नामक काव्य का पद्यानुवाद है। कवि ने इस पुस्तक के माध्यम से बंगाली भाषा की सरल एवं मधुर कविताओं का रसास्वादन हिन्दी कवियों को कराया है। स्वयं कवि गुप्त का मानना है कि "एक तो इस पुस्तक कि कविता इतनी मधुर है कि उसने लेखक को विवश किया कि किसी तरह इसका रसास्वादन हिन्दी–प्रेमियों को भी कराया जाए। " 2

---

1 कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् चुतर्थ अंक, श्लोक 18, पृ. सं. 107

2 मैथिलीशरण गुप्त : विरहिणी व्रजांगना पृ. सं. 05

कवि गुप्त ने 'विरहिणी व्रजांगना' अर्थात् ब्रजप्रदेश की विरहिणी राधा के माध्यम से बताया है कि भारतीय सुघड़ नारियाँ स्वक्लेश सहकर भी परदुःखकातरता का भाव रखती है। राधा श्रीकृष्ण के विरह में जल रही है परन्तु वह मलयगिरि से आने वाली सुगंधित मलयमारुत को भी न केवल मनुष्य बल्कि प्रकृति के प्रत्येक प्राणी को राहत प्रदान करने के संदेश के साथ भेजती है। राधा मलयमारुत को अपने समान वियोग सागर को पार कर चुकी कोयल के करीब मधु वर्षा हेतु भेजती है। राधा अपना विरह स्वयं व्रजांगना बनकर सहती है। स्वयं कवि विरहणी राधा के शब्दों में कहते है कि –

" देगी तुम्हें सुरभि मणि नलिनी, राधा क्या दे सकती हाय!,
भींग रही है नयन–नीर से वह दुःखिनी आज निरुपाय।
जाओ, जहाँ कोकिला गाती मधु – वर्षा – सी होती है,
इस निकुंज में आज विरहिणी राधा बैठी रोती है।। " 1

प्लासी का युद्ध –

प्रस्तुत अनुवादित रचना 'प्लासी का युद्ध' का नवीन चन्द्रसेन कृत 'पलासीर युद्ध' प्रबन्ध काव्य का पद्यमय काव्यानुवाद कवि गुप्त ने किया। जिसमें युग प्रवर्तक, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने विविधता में एकता के प्रतीक, सोने की चिड़िया तथा विश्वगुरु, जैसे भारत देश में 'फूट डालो–राज करो' की नीति के बल पर अंग्रेजों ने कैसे प्लासी के युद्ध के बाद देश पर अधिकार कर लिया का चित्रण किया है।

कवि गुप्त ने उद्घाटित किया है कि सन् 1757 में अंग्रेजों ने किस प्रकार भारतीयों को , भारतीयों के विरूद्ध ही युद्ध में खड़ा करके अंग्रेजी हुकूमत की स्थापना की तथा शासन व शक्ति के बल पर किस प्रकार हमारी संस्कृति तथा शाश्वत मूल्यों को बदलते रहें। अंत में कवि ने देश के विभिन्न वर्ग और समुदायो को एकजुट होकर स्वाधीनता प्राप्ति के प्रयास का संदेश दिया है। कवि के इस काव्य का यही मुख्य प्रयोजन है।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : विरहिणी व्रजांगना पृ. सं. 15

मेघनाद वध –

'मेघनाद वध' अनुवादित रचना कवि गुप्त ने 'विरहिणी व्रजांगना' के समान ही बंगाली भाषा के कवि 'श्रीयुत गोगीन्दनाथ बसु ' के 'मेघनाद वध' काव्य का अनुवाद हिन्दी में किया है। कवि का मानना है कि "बंगाली भाषा के श्रेष्ठ कवि माइकेल मधुसूदन दत्त की 'विरहिणी व्रजंगना' से प्रेरणा लेकर उनके समान ही कवि श्री गोगीन्द नाथ बसु के मेघनाद वध के अनुवाद का साहस किया है।" 1

'मेघनाद वध' का मूलोद्देश्य अहंकार रहित मानव समाज की स्थापना है। कवि गुप्त ने बताया है कि यदि पुरुष अपने दंभ में वशीभूत होकर यदि नारी के स्वाभिमान पर प्रहार करने का प्रयास करता है तो उसका परिणाम न केवल उस पुरुष को भोगना पड़ता है बल्कि उसकी भावी पीढ़ी भी उसके प्रभाव से बच नहीं सकती है। कवि गुप्त ने कवि गोगीन्द नाथ बसु के काव्य की रामायणकालीन घटना में बताया है कि रावण भगवान श्री राम की पत्नी माता सीता का अपहरण करके उनके स्वाभिमान प्रहार चोट करता है। तब राम–रावण युद्ध में रावण के साथ भावी पीढ़ी के प्रतीक मेघनाद को भी मृत्यु के रूप में उसका परिणाम भोगना पड़ता है। इस काव्य में माता सीता के अपहरण से लेकर मेघनाद वध तक की घटनाओं का वर्णन है। जिनमें नारी के सम्मान एवं स्वाभिमान की रक्षा कवि का अभीष्ट प्रयोजन है ।

स्वप्नवासवदत्ता –

'स्वप्नवासवदत्ता' का काव्यमय पद्यानुवाद राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने संस्कृत साहित्य के महान नाटककार महाकवि 'भास' के नाटक 'स्वप्नवासवदत्ता' के आधार पर किया है। इस काव्य में कवि ने नारी के त्याग एवं समर्पण की भावना द्वारा न केवल पुरुष की बल्कि सम्पूर्ण राज्य की रक्षा में अपना सर्वस्व बलिदान करने की भास्वरता ही कवि का मुख्य प्रयोजन है।

प्रस्तुत काव्य की कथा का आधार एक पौराणिक कथा है। जिसमें राजा

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : मेघनाद वध पृ. सं. 06

उदयन अपने राज्य की रक्षा तभी कर सकता है जब वह मगध के राजा 'दर्शक' से संधि करे, और यह संधि तभी संभव है जब राजा उदयन, राजा दर्शक की पुत्री 'पदमावती' से शादी करे। लेकिन राजा उदयन अपनी रानी वासदत्ता को छोड़कर किसी भी स्त्री से प्रेम नही कर सकता। राजा उदयन रानी वासवदत्ता के प्रति पूर्णतयः पतिधर्म का पालन करता था। रानी भी राजा के प्रति पूर्णतयः पतिव्रता थी। रानी वासवदत्ता अपने राज्य की रक्षा हेतु छद्म वेश मे राजा दर्शक के दरबार में जाकर और अपने मंत्री के साथ मिलकर वह पदमावती को राजा उद्यन के साथ शादी को तैयार कर लेती है। इस प्रकार काव्य में वासवदत्ता को त्याग, बलिदान, परोपकार, सपर्मण तथा उदारता की प्रतिमूर्ति के रूप में कवि ने स्थापित किया है। इस प्रकार स्वप्नवासवदत्ता काव्य नारी आदर्श का जीवंत दस्तावेज है।

रुबाइयत उमर खय्याम –

'रुबाइयत उमर खय्याम' की रुबाइयों का राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी में पद्यानुवाद किया। कवि फारसी भाषा नहीं जानते थे। लेकिन उनके एक बन्धु कला कोविद राय कृष्णदास के कहने व अर्थ उनके द्वारा करने पर उन्होंने इस रचना का पद्यानुवाद किया। स्वयं कवि ने अपने बंधु के सुझाव को स्वीकार करते हुये लिखा है कि " मैं उमर खय्याम की रुबाइयों का हिन्दी में पद्यानुवाद कर दूँ। वे जानते थे कि मैं मूल नहीं पढ़ सकता मैनें विस्मय–पूर्वक कातर होकर निराश भाव से उनकी ओर देखा। तब उन्होंने इसे स्वीकार किया और मुझे प्रेरित किया। " 1

कवि गुप्त के अनुसार उमर खय्याम फारसी साहित्य की सूफीयाना कविता के महान विद्वान थे। उमर खय्याम का पूरा नाम ' ग्यासुद्दीन अबुल फतह उमर बिन इब्राहिम अल खय्याम' था। 'खय्याम' उनका उपनाम था। जिसका अर्थ होता है 'खेमा बनाने वाला'। कवि गुप्त ने इन रुबाइयों के माध्यम से सदाचार, नैतिकता तथा साम्प्रदायिक भेदभाव को भुलाकर धर्मनिरपेक्ष समाज की स्थापना का संदेश देना अभीष्ट प्रयोजन है।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : रुबाइयत उमर खय्याम पृ. सं. 05

नाटक एवं गीतिनाट्य

हमारे प्राचीन काव्य–मनीषियों ने काव्य के जो भेदोपभेद किये है, उनमें दृश्य–काव्य को भी परिभाषित किया है। नाटक को दृश्य काव्य के अन्तर्गत माना है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नाटक साहित्य की एक विधा है जो पाठ्य होने के साथ ही प्रेक्ष्य भी होती है अर्थात् उसकी विषय वस्तु का पाठक रसास्वादन करने के साथ ही दर्शक मंच पर उसकी प्रस्तुति से आह्लादित होता है। डॉ.कृष्णदेव शर्मा ने नाटक के महत्व को इंगित करते हुए कहा है कि वास्तव में "नाटक एक संवाद प्रधान विशिष्ट विधा है जो पहले रंगमंच पर होती है फिर अपने होने के प्रयोजन की पूर्णता सिद्ध करवाती है यह धारणा अधूरी है कि नाटक पठनीय भी हो सकते हैं। "1

तिलोत्तमा – सन् 1916

कवि गुप्त ने 'तिलोत्तमा' नाट्य कृति की रचना सन् 1916 में की। 'तिलोत्तमा' नायिका प्रधान एक पौराणिक नाटक है। इस नाटक के माध्यम से कवि गुप्त ने स्पष्ट किया है कि जब–जब सत्य पर असत्य का, धर्म पर अधर्म का अधिकार हुआ है तब–तब नारी ने उनका संहार करने में अपना योगदान दिया है। कवि गुप्त ने देवलोक की घटना का वर्णन करते हुए बताया है कि एक बार इन्द्रलोक पर असुरों का साम्राज्य स्थापित हो जाता हैं।

राक्षसों के प्रमुख सुन्द व असुन्द को यह वरदान प्राप्त है कि उनका अंत आपस में लड़कर ही हो सकता है। इस पर सभी देवता समग्र रूप से ब्रह्माजी के पास जाते है। ब्रह्माजी तिलोत्तमा नामक एक अप्सरा का निर्माण करते हैं। तिलोत्तमा दोनों राक्षसों से अपनी शक्ति द्वारा उसे प्राप्त करने का सुझाव देती है। स्वयं तिलोत्तमा के शब्दों में –"अपने आत्मियों की दुर्दशा देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि संसार में शक्ति ही सब कुछ है। मैं अबला ठहरी। इसलिए मैनें प्रतिज्ञा की है कि जो सबसे अधिक शक्तिशाली पुरुष होगा, उसी को यह वरमाला पहनाकर मैं अपना पति बनाऊँगी। " 2

---

1 डॉ. कृष्णदेव शर्मा : भारतीय एवं पाशचात्य काव्यशास्त्र पृ. सं. 191

2 मैथिलीशरण गुप्त : तिलोत्तमा पृ. सं. 63

इस प्रकार दोनों असुरों में युद्ध होता है और वे दोनों आपस में लड़कर एक दूसरे का अंत कर लेते है। इस प्रकार नारी शक्ति एवं नारी चेतना द्वारा स्वर्गलोक में शांति की स्थापना होती है। देवगण नारी की महिमा से अपने खोये हुए वैभव को पुनः प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार नारी शक्ति एवं सत्य की विजय की स्थापना इस नाटक का मुख्य प्रयोजन हैं।

चन्द्रहास – सन् 1916

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा 'चन्द्रहास' नाटक की रचना सन् 1916 में की गई। यह एक पौराणिक घटना प्रधान नाटक है जिसमें कवि गुप्त ने बताया है कि नारी का जीवन एवं उसका जीवनोत्सर्ग सदियों से समाज के लिए हुआ है। मनुष्य प्रकृति के हाथों का खिलौना हैं। उसी प्रकृति के अनुसार मनुष्य की जीवन गति में परिवर्तन होता है। नान्दी के पश्चात् नट–नदी के वातावरण से नाटक का आरम्भ होता है, और समाप्ति देश में सुख–समृद्धि व सम्पन्नता के भरत वाक्य से होती है। 'चन्द्रहास' की कथावस्तु नाटकोचित चमत्कारिक एवं रोचक है। 'चन्द्रहास' नाटक पर संस्कृत नाट्यशास्त्र और पारसी रंगमंच का प्रभाव है।

अनघ– सन् 1925

मैथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ' गीति नाट्य की रचना सन् 1925 में की। इस कृति में कवि ने 'मघ' के रूप में एक ऐसे निस्पृह और लोक–सेवा के प्रति समर्पित व्यक्ति का चित्रण किया है। जो बौद्धकालीन समाज का प्रतिनिधि होते हुए भी गांधीवादी आदर्शों के प्रति समर्पित है। 'मघ' के माध्यम से कवि गुप्त ने अपने युग के स्वतन्त्रता–सेनानी गणेशशंकर विद्यार्थी के त्यागशील व्यक्तित्व का अंकन किया है। कवि का मानना है कि मघ जो कि स्वतंत्रता सेनानी 'गणेशशंकर' विद्यार्थी है। उनके व्यक्तित्व की छटा युवाओं को प्रेरणा प्रदान करने वाली है। उनके अनुसार 'मघ' मानवीय पवित्रता और मानवतादर्श का प्रतीक पात्र है जो अपने आदर्श लोकसेवापरक व्यवहार से चोरों का भी हृदय परिवर्तित कर देता है। परन्तु गांव का मुखिया, ग्राम–पंच तथा राज–परिवार के सेवक जो अंग्रेजी शासक के प्रतीक है। उन्हें बलपूर्वक बंदी बना लेते है। अंत में षड़यंत्रकारियों का भेद खुलता है और मघ निर्दोष घोषित

किया जाता है। इस प्रकार असत्य पर सत्य स्वार्थ पर त्याग, हिंसा और क्रोध पर क्षमा की विजय का जयघोश ही गुप्तजी के अनध नाटक प्रमुख प्रतिपाद्य है।

निष्कर्ष –

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी जगत् के यशस्वी और प्रतिनिधि कवि है। द्विवेदी युगीन काव्यों के शिल्पियों में उनकी गणना सर्वोपरि है। उनकी काव्य–साधना,सर्जनात्मक प्रतिभा तथा उत्कृष्टता सर्वोच्च है। कवि गुप्त ने 'रंग में भंग' से लेकर 'रत्नावली' तक की काव्य सृजन यात्रा में बहुमुखी काव्य प्रतिभा और विशाल काव्य–सृष्टि उजागर हुई है। उनके काव्य में नारी चेतना की सरिता भी समान्तर रूप से प्रवाहित हुई है। उनका काव्य नारी को सम्मानजनक स्थान दिलाने में पूर्ण निष्ठा के साथ खड़ा है। जिसमें उनके सहयोगी ' रामायण और महाभारत' सहारा देकर खड़े नजर आते हैं। कविवर ने रामायण और महाभारत की घटनाओं के साथ दूसरी ऐतिहासिक घटनाओं को भी अपने काव्य का विषय बनाया है। ऐतिहासिक आख्यानों में उन्होंने भारतीय क्षत्रिय योद्धाओं की शूरवीरता एवं प्रतिज्ञापालन तथा बलिदान भावना के चित्रण कर, तात्कालीन परतंत्र भारतीयों में राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्रप्रेम एवं जागृति की भावना उत्पन्न की है।

कवि गुप्त का समन्वयात्म्क और मानवतावदी जीवन–दर्शन गांधीवादी सिद्धांतों तथा विश्व–बंधुत्व की भावना से प्रेरित एवं सम्पोषित है। उन्होंने अपने सम्पूर्ण काव्य–संसार में नारी चेतना की भावना का संचार करते हुए इतिहास में अपमानित तथा साहित्यिक दृष्टि से उपेक्षित नारी पात्रों को भी कवि ने चारित्रिक, गौरव, उनके विकास और समाज में सम्मानपरक स्थान की प्रतिष्ठा के लिए सम्पूर्ण संवेदना के साथ उनका सम्पूर्ण काव्य समर्पित है। उनका सम्पूर्ण काव्य नारी समाज को भारतीय मानस और समाज मे श्रेष्ठ जीवन मूल्य स्थापित करने पर बल देता है। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी भारतीय संस्कृति के आख्याता राष्ट्रकवि गुप्त का जितना आकर्षक व्यक्तित्व है उससे कई गुना अधिक विशालता लिए उनका साहित्य है। साहित्य की विविधता प्रबंध काव्यों, खण्डकाव्यों, चम्पूकाव्य, अनुदित काव्यों एवं नाटकों में परिलक्षित होती है।

द्वितीय – अध्याय

नारी चेतना : तात्त्विक विश्लेषण

द्वितीय अध्याय

नारी चेतना : तात्त्विक विश्लेषण

भारतीय संस्कृति में नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। स्त्री और पुरुष ईश्वर की दो समानधर्मी कृतियाँ है। दोनों एक दूसरे के पूरक है। स्त्री–पुरुष मिलकर जीवन की एक महत्वपूर्ण इकाई का निर्माण करते है। 'दाम्पत्य' शब्द इसी स्थिति को पुष्ट करता है। हमारी संस्कृति में स्त्री की शक्ति की महत्ता इसी बात से पुष्ट होती है कि वह न पुरुष की अनुगामनी है, अपितु वह पूरक है, उसकी जीवन साथी है, सहधर्मिणी है। इन सब के बावजूद वह पुरुष की जन्मदात्री और उत्पन्ना होने से उसका स्थान पुरुष से श्रेष्ठ है।

पुराणों में आदि–पुरुष शिव की कल्पना अर्द्धनारीश्वर के रूप में की गई है। जो भारतीय संस्कृति में नारी के स्थान की ओर संकेत किया है। डॉ. अर्चना शेखावत ने भी भारतीय संस्कृति में नारी के अतीतकालीन स्थान के उत्कर्ष के भव्यचित्र को अंकित करते हुए माना है कि "भारतीय संस्कृति में नारी अर्द्धांगिनी है, और पुरुष अर्द्धनारीश्वर युगल सामंजस्य की विलक्षण कल्पना है। "1

प्राचीन भारतीय मनीषियों नें नारी के स्थान की जितनी सुन्दर, सुव्यवस्थित सम्पूर्ण और सर्वग्रह्य अभिव्यक्ति वेदों में वर्णित की है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। वैदिककाल में हमारे समाज में नारी के प्रति बड़ा आदर भाव था। परिवार की प्रमुख संरचना विवाह का उद्देश्य केवल वासना–पूर्ति न होकर गृहस्थ–धर्म का पालन, धर्मानुष्ठान, यज्ञ–सम्पादन और दाम्पत्य जीवन द्वारा श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति था। घर–गृहस्थी में नारी की प्रधानता थी। परिवार की सभी गतिविधियों के केन्द्र में नारी थी। कन्या में ही धन की देवी लक्ष्मी का निवास माना जाता था। डॉ. सुषमा शुक्ला ने पुरुष उत्पत्ति की प्रथम सीढ़ी कन्या की भूमिका का वर्णन करते हुए माना है कि "अनेक वैदिक साहित्यकारों ने भी कन्या के महत्व को माना है तथा उसकी महत्ता और

---

1. डॉ.अर्चना शेखावत :
   समकालीन हिन्दी महिला कहानीकारों की कहानियों में नारी चेतना पृ.सं. 56

प्रतिष्ठा स्वीकार की है। महाभारतकाल में तो कन्या में सर्वदा लक्ष्मी का निवास माना है। "1 उस समय नारी के बिना कोई धार्मिक अनुष्ठान या धार्मिक कार्य पूरा नहीं हो सकता था। ऋग्वैदिक काल में कन्या का पिता उपयुक्त वर का वरण करके अपनी कन्या का विवाह अग्नि को साक्षी मानकर करता था। वैदिक संस्कृति में स्त्री–शिक्षा का भी महत्व था। उस समय पुत्र–पुत्री के पालन–पोषण शिक्षा–दीक्षा आदि में कोई भेदभाव नहीं था।

कविवर गुप्त ने भी अपनी लेखनी से आर्य–स्त्रियों के स्थान को पुरुष–समाज में निर्धारित करते हुए माना है कि वे सद्गृहस्थी की वाहक दैवीय शक्ति के समान थी। उन्हीं के शब्दों में –

" केवल पुरुष ही थे न वे जिनका जगत को गर्व था,
गृह–देवियाँ भी थीं हमारी देवियाँ ही सर्वथा।" 2

भारतीय इतिहास में रामायण–महाभारत काल के पश्चात् नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय होती गई। मुसलमानों के आगमन से पर्दा–प्रथा ने उसकी स्थिति को और भी विषम बना दिया। बाल–विवाह और दहेज प्रथा के कारण नारी के विकास और स्थिति सर्वथा अवरुद्ध हो गई। भारत में मुस्लिम हमलों व मुस्लिम–राजाओं के प्रभाव से हिन्दू–स्त्रियों पर अनेकानेक सामाजिक बंधन लगे। इस संबंध में कमलेश कटारिया का मानना है कि "उन पर अनगिनत निर्योग्ताएँ थोपी गई, बाल–विवाह, विधवाओं की अमंगलसूचक अभिशापित स्थिति, विधवा–विवाह निषेध, सती प्रथा की अनिच्छुक विधवाओं को भी जबरदस्ती चिताओं में झोंक देना, पर्दा–प्रथा के कारण लड़कियों को शिक्षा से वंचित कर देना, अशिक्षा और अंधविश्वासों में जकड़ी नारी को अधिकाधिक पुरुषों का गुलाम बना दिया जाना। " 3

इस प्रकार तत्कालीन युग में नारी पुरुष की सहधर्मिणी सहकर्मी रूप से वंचित हो गई। ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि एक हजार वर्ष की अवधि में भारतीय समाज में नारी की स्थिति जितनी दयनीय हुई उतनी उसकी पूर्व के हजारों वर्षो में नहीं। वह पुरुष की अनुचरी बन अपने निजी व्यक्तित्व को खोकर यंत्रवत सेवारत हो गई। लेकिन हिन्दी

1. डॉ. सुषमा शुक्ला : वैदिक वाङ्मय में नारी पृ. सं. 41
2. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती, पृ. सं. 17
3. कमलेश कटारिया : नारी जीवन वैदिककाल से आज तक, पृ. सं. 118

साहित्य के आधुनिक काल में नारी–जागृति के कारण उसकी दशा में काफी सुधारात्मक परिवर्तन आया है। आज नारी को सृष्टि की सर्वोत्तम रचना माना गया है। कवि जयशंकर प्रसाद ने नारी के प्रति अपना आदर श्रद्धा भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है–

" नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत–नग–पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में । " 1

आज नारी चेतना हमारे समय की जीवंत वास्तविकता है। आज की नारी अपने वजूद को महसूस करती है। एक सजग इकाई के रूप में वह तमाम यथार्थ स्थितियों से प्रतिकूल होती है। वर्तमान सामाजिक परिवेश के अन्तर्विरोधों व असंगतियों को वह आज के परिप्रेक्ष्य में जानना चाहती है। उनका विश्लेषण विवेचन अपनी चेतना के आधार पर करना चाहती है।

नारी चेतना : अर्थ एवं स्वरूप –

प्रकृति में स्त्री और पुरुष ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है। चेतना मानव शरीर में उपस्थित वह आधारभूत तत्व है। जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूतियाँ होती है। मानव मस्तिष्क चेतना का मूल स्थान है। चेतना के अन्तर्गत वे सभी बातें समाहित हैं जिसके द्वारा हम सोचते समझते और कार्य करते है। व्यक्ति को स्वयं के प्रति सजग रहना मनुष्य का सर्वोच्चय दायित्व है जो उसकी चेतना का प्रथम सोपान है।

डॉ. गणपतराम शर्मा का मानना है कि "चेतन मन में वे मानसिक और शारीरिक क्रियाएँ निहित रहती है जिनके प्रति हम सचेत रहते है और उनका बड़ी सरलता से प्रत्यय स्मरण करना संभव होता है। इनका प्रयोग स्वयं के प्रति जागरूक रहने और स्वयं को समझने में किया जाता है। " 2

---

1. जयशंकर प्रसाद : कामायनी पृ. सं. 38
2. डॉ.गणपतराम शर्मा :
   अधिगम–शिक्षण और विकास के मनो सामाजिक आधार, पृ.सं. 73

इस प्रकार मानव मन में प्रतिकूल भावों के आने अथवा उत्पन्न होने की दशा में अधिकारों के प्रति सावचेत होना ही चेतना है। परिस्थितियों के प्रभाव से चेतना अस्तित्व में आती है, जो व्यक्ति राष्ट्र या समाज को गतिशील अथवा जागरूक करती है। अतः व्यक्ति के विचारों की वाहक दशा चेतना कहलाती है। चेतना की प्रेरणा से ही मनुष्य अपने व समाज के लिए कार्य करने की ओर प्रवृत्त होता है। वृहद हिन्दी कोश में चेतना से अभिप्राय "होश में आना, सावधान होना, सोच–समझकर ध्यान देना, विवेक से काम लेना।" 1 इत्यादि अर्थों में लिया जाता है।

इस प्रकार चेतना को आस–पास के वातावरण को समझने, परखने तथा स्वयं को स्थापित करने की शक्ति माना जाता है। अतः चेतना मानव मन की वह शक्ति है जो मानव को आन्तरिक व बाह्य अनुभूतियों का ज्ञान करती है। संस्कृत साहित्य में चेतना, संज्ञा, बोध, समझ आदि के रूप में प्रयुक्त होती है। 'चेतना' शब्द 'चित् + ल्यूट' प्रत्यय के योग से 'चेतन' शब्द बनता है। इस 'चेतन' शब्द का स्त्री लिंग में 'चेतना' शब्द बनता है। इस चेतना के भाव को ही 'चैत्यन्य' कहा गया है। पूर्ण ब्रह्मा के स्वरूप सत्, चित्, आनन्द में 'चिदान्स' ही चेतना के मूल में है। जो साहित्य में आकर एक पारिभाषिक शब्द बन गया है। जिसका अर्थ है, मुख्यधारा से जुड़ाव, विमर्श अथवा समझ स्थापित करना है। यह विमर्श अधिकारों के साथ कर्त्तव्यों की भी जानकारी रखने की बात करता है।

अतः इस प्रकार चेतना का अर्थ हुआ, मुख्यधारा से जुड़ाव के साथ अधिकारों एवं कर्त्तव्यों की पूर्ण समझ रखना। 'श्रीमद्भागवदगीता' के तृतीय अध्याय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इस 'चेतन' अथवा चेतना तत्व के अनुक्रम को इतना व्यवस्थित समझाया है और बताया है कि "इन्द्रियाँ श्रेष्ठ है मन उनसे भी श्रेष्ठ है, मन से बृद्धि अधिक श्रेष्ठ है, परन्तु जो तत्व बुद्धि से भी श्रेष्ठ है वही तत्व चेतन अथवा चेतना है।"

" इन्द्रियाणि पराणि आहुः इन्द्रियेभ्यः परम् मनः।
मनसस्तु पराबुद्धिः, यो बुद्धेः परतस्तु सः।" 2

---

1. डॉ. हरदेव बाहरी : वृहद हिन्दी शब्दकोश, पृ.सं. 267
2. श्रीमद्भागवद्गीता : पृ. सं. 3/43

ऑक्सफोर्ड हिन्दी–इंग्लिश डिक्शनरी में 'चेतना' को " CONSCIOUSNESS, INTELLIGENCE व RECOLLECTIONN माना गया है। इस प्रकार 'चेतना' शब्द को अंग्रेजी में 'कोन्शसनियेस' कहते है। जो अंग्रेजी भाषा के दो शब्दों CON + SCIO से मिलकर बना है। जिनके अर्थ CON=TOGETHER व SCIO = TO KNOW, WORKING होता है। अतः अंग्रेजी भाषा में लेटिन भाषा के ये दोनों पद मिलकर एक नवीन पद CONSCIOUSNESS का निर्माण करते हैं। जिसका अर्थ चेतना, चेतन, जीव प्राण, सावधानी, जागृतावस्था आदि रूपों में होता है। " 1 अतः कहा जा सकता है कि 'चेतना' मन की वह शक्ति है जो हमें मनोजगत् के सूक्ष्म भावों एवं विचारों के साथ–साथ बाह्य जगत् के विषयों, अधिकारों एवं मनोसामाजिक अनुभूतियों का ज्ञान कराती है।

भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान सदैव सर्वोच्च माना गया है। प्राचीन भारतीय आचार्यों ने नारी के प्रति अपना भाव "मातृ देवों भवः, पितृ देवों भवः, आचार्य देवों भवः" कहकर प्रकट किया है। इससे प्रतीत होता है कि माता का स्थान गुरु और पिता से पहले है। नारी पुरुष की पूरक होकर भी पुरुष की जन्मदात्री और शक्ति होने के कारण स्त्री का स्थान पुरुष से श्रेष्ठ माना गया है। डॉ. इन्द्रराज सिंह ने भी स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के प्रति महत्व एवं समर्पण को स्वीकार करते हुए माना है कि "भगवान ने स्त्री और पुरुष दोनों को एक दूसरे का पूरक बनाया है। एक दूसरे के बिना दोनों का कोई वजूद या अस्तित्व ही नहीं बल्कि सृष्टि का विकास भी संभव नहीं है।" 2

इस प्रकार इसमें कोई संदेह नहीं की नारी का अपना एक वजूद है। परमात्मा ने स्त्री–पुरुष के रूप में जिन दो घटकों की कल्पना की है, वे दोनों आपस में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि स्त्री–पुरुष दोनों आकृति–प्रकृति में एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक–दूसरे से अभिन्न है। पुरुष में जहाँ पौरुष की प्रधानता है वहीं स्त्री में सहज कोमलता है। लेकिन स्त्री–पुरुष में ये दोनों विधान अलग होते हुए भी परोक्ष रूप में एक है। आज स्त्री अपनी सक्षमता एवं चेतना के कारण सुकोमल देह को धारण करने के बावजूद भी वह पुरुषों के क्षेत्रों में भी अपनी प्रतिभा का जीवंत परिचय दे रही है। उनकी यह प्रतिभा मर्यादायुक्त एवं अपने सामाजिक मानदण्ड़ों के अनरूप हैं।

---

1. Dr. R.K. Kapoor : Oxford Hindi - English Dictionary, Page no.-170
2. डा. इन्द्रराज सिंह : नारी और त्याग, पृ. सं. 16

डॉ. रमेश कुमार त्रिपाठी ने माना है कि " नर एवं नारी एक–दूसरे के पूरक है लेकिन दोनों में से जब भी किसी ने अपनी मर्यादा तोड़ने का निरर्थक प्रयास किया है, तब उसे असफलता ही हाथ लगी है।" विधाता ने नर–नारी दोनों को महत्वपूर्ण बनाया हैं। वे एक दूसरे के पूरक है और इसी में जीवन की सार्थकता है। " 1

एक और नारी में गंभीर ममत्व एवं करुणा का भाव निहीत है तो दूसरी ओर वह अपनी बॉधाओं और संकटों को दूर करने के लिए, वह दैवीय शक्ति चण्ड़ी, दुर्गा, अम्बा भी है जो हिंसात्मक पाशविक शक्तियों का दमन करने के लिए रौद्र–रुप धारण करती है और अपनी ऊर्जवित चेतना का परिचय देती है। दूसरी ओर वहीं नारी कोमल चेतना, देह की कर्मठता एवं श्रमशीलता के बल पर निरन्तर आगे बढ़ती है।

नारी को अपनी बुद्धि और बल पर भरोसा है। उसमें पुरुष के प्रति कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है अपितु निजी व्यक्तित्व एवं पारिवारिक दायित्व को प्रधानता देते हुए उसमें ध्येय निष्ठा का भाव है। इस संदर्भ में डॉ. सुषमा शुक्ला का कथन समीचीन जान पड़ता है कि "पुरुष के जीवन का अपूर्ण भाग स्त्री के संयोग द्वारा ही पूरित होता है। स्त्री से ही मनुष्य की उत्पति होती है। स्त्री पुरुष का आधा भाग है, जब तक पत्नी प्राप्त नहीं होती है, तब तक जीवन अपूर्ण रहता है। " 2

भारतीय समाज में शताब्दियों से नारी का पालन–पोषण, देखभाल व व्यवहार इस प्रकार से किया जाता रहा है कि वह अपने को अबला एवं निरीह प्राणी के अतिरिक्त कुछ सोच नहीं पाती तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह पुरुष के साये के सहारे ही आगे बढ़ना चाहती थी। लेकिन आज वह अपनी चेतना के बल पर इस दुर्बलता, बेसहारा और भीरुता से परे हटकर अपनी चेतना द्वारा सभी क्षेत्रों को चैतन्य कर रही है।

नारी चेतना का यह फैलाव समाज के सम्पूर्ण परिवेश से जुड़ा हुआ है। समाज में नारी के माता, पत्नी, भगिनी, पुत्री, सखी, सेविका, परिचारिका, तपस्विनी आदि अनेकानेक रूप है। धार्मिक चेतना की दृष्टि से वह रमा, कमला, जगदम्बा, दुर्गा आदि रूपों में

---

1. डॉ. रमेश कुमार त्रिपाठी : समकालीन हिन्दी पत्रकारिता में नारी संदर्भ, पृ. सं. 113
2. डॉ. सुषमा शुक्ला : वैदिक वाङ्मय में नारी, पृ. सं. 44

श्रद्धा एवं पूजनीय भाव से युक्त है तो राजनीतिक चेतना की दृष्टि से वह इन्द्रा गॉधी प्रतिभा पाटिल बनकर कूटनीतिज्ञ तथा शासिका बनकर देश और दुनिया का नेतृत्व करने का माद्दा रखती है। डॉ. मुकुल रानी सिंह ने नारी का राष्ट्र के प्रति योगदान एवं नारी के योगदान से राष्ट्र के विकास का उल्लेख करते हुए माना है कि "जिस राष्ट्र की नारी मानवीय भावनाओं से अभिप्रेरित होगी, उस राष्ट्र का भावी जीवन अत्यन्तः सुन्दर और सुखद होगा और वे उस राष्ट्र का मानवीय धरातल ऊँचा कर सकती है। "1

नारी परिवार की धुरी है, प्रमुख सदस्या है। नारी से परिवार एवं समाज दोनों के गौरव में अभिवृद्धि होती है। उसका जीवन आदर्श माना गया है। नारी स्वभावतः परिवार के बच्चों में सद्संस्कारों का बीजारोपण करने वाली होती है। नारी मूलतः शिक्षिका है। इससे प्रतीत होता है कि नारी व्यक्तित्व के रचनात्मक रूप में कई गतिविधियों की संचारिका है। इन सबके होते हुए भी नारी अधिकार चेतना के अभाव में अनेकानेक प्रकार से प्रताड़ित होती रही। लेकिन नारी चेतना ने मानो उसके हौंसलों को पंख लगा दिए हो।

इस चेतना से नारी समाज में जो लहर उत्पन्न हुई, उसने पुरुष समाज के विरोध के स्वर अपने में समाहित कर विलीन कर लिए। आज नारी चेतना का ही यह परिणाम है कि आज नारी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसने पुरुष के समान ही अपनी कुशलता एवं कर्मठता का परिचय दिया है। डॉ. अर्चना शेखावत ने नारी चेतना के प्रभाव को नारी जीवन में स्वीकार करते हुए लिखा है कि " सामाजिक जीवन का सुदृढ़ आधार नारी के गौरव और श्रेय का भागीदार पुरुष ही बना रहा और उसने नारी को पीछे ढ़केलने की कोशिश भी की। लेकिन नारी चेतना ने उसे जागृत कर, नारी की दासता का भार अपने कंधे से उतार कर सम्मानपूर्वक जीने की राह प्रदान की " 2

भारतीय समाज में नारी चेतना से उसका क्षेत्र अत्यंत विस्तृत एवं व्यापक हुआ है। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से वह आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी बनी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय नारी को सभी प्रकार के अधिकार दिये गए जिससे उसने चूल्हा–चौका का दायरा

---

1. डॉ. श्रीमती मुकल रानी सिंह : प्रसाद के नाटकों के नारी–पात्र, पृ. सं. 148
2. डॉ. अर्चना शेखावत :
समकालीन हिन्दी महिला कहानीकारों की कहानियों में नारी चेतना, पृ. सं. 60

छोड़कर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को जीवंत किया है। यह नारी चेतना का ही परिणाम है कि जीवन की आपाधापी में भी नारी के व्यक्तित्व निर्माण में, बच्चों का लालन–पालन, परिवार के प्रति उत्तरदायित्व के होते हुए भी उसने अपना वजूद स्थापित किया है।

समाज सुधार के आन्दोलनों, संवैधानिक सुविधाओं, शिक्षा का प्रचार–प्रसार तथा लोकतंत्र में भागीदारी के कारण नारी चेतना में जागृति का भाव उत्पन्न हुआ है। आज वह अपने 'स्व' के प्रति सजग हैं। नारी चेतना के विभिन्न स्वरूपों पर विचार करें तो आज नारी अधिक निर्भीक, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी, निर्णायक, हक माँगने वाली, एक सीमा तक पुरुष के नियंत्रण को स्वीकार करने वाली, परन्तु उससे अधिक नियंत्रण को नकारने करने वाली, यौन–आकांक्षाओं का दमन करने वाली, अपनी अस्मिता और व्यक्तित्व के प्रति सजन एवं संवेदनशील दिखाई देती है।

इस प्रकार नारी में जहाँ रूढ़–परम्पराओं को तोड़ने के प्रति विद्रोह का भाव है, वहीं नवीन जीवन–मूल्यों की स्थापना का दृढ़ विश्वास भी मौजूद है। आज नारी पहले की अपेक्षा वैचारिक दृष्टि से अधिक मजबूत एवं सशक्त है। इस प्रकार नारी चेतना नारी मुक्ति में एक आंदोलन बनकर प्रकट हुई है जिससे नारी में अधिकार–बोध की भावना ने जन्म लिया है। आज नारी अपने अधिकारों के साथ–साथ अपने पारिवारिक दायित्वो का भी पूर्ण निर्वाहन कर रही है।

साहित्य, समाज एवं नारी –

भारतीय समाज में नारी की स्थिति हमेशा ही सम्मानजक रही है। समाज में सदैव ही नारी को शक्ति, सम्पति एवं ज्ञान के प्रतीक के रूप में स्वीकार कर दुर्गा, लक्ष्मी एवं सरस्वती के रूप में पूजा की जाती रही है। हिन्दू धर्म की मान्यताओं के अनुसार स्त्री को अर्द्धागिनी के रूप में स्वीकार किया गया है। वैदिक युग में स्त्री एवं पुरुष दोनों की सामाजिक स्थिति एवं समानता में कोई अंतर नहीं था। लेकिन कालान्तर में नारी के अधिकारों का हनन हुआ और आधुनिक काल में पुनः उसकी स्थिति में सुधार हुआ है।

अतः भारतीय समाज में विभिन्न कालों में नारी की स्थिति में परिवर्तन होता रहा है। लेकिन इन सबके बावजूद परिवार का केन्द्र बिन्दु नारी ही रही। डॉ. सौ.जे.एम. देसाई ने भी नारी को परिवार का केन्द्र बिन्दु मानते हुए लिखा है कि " प्राचीन भारतीय समाज में नारी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाज का आवश्यक अंग है परिवार, एवं परिवार का केन्द्र बिन्दु नारी ही रही है। " 1

किसी भी युग अथवा देश की सामाजिक व्यवस्था एवं उससे संबंधित दृष्टिकोण का वास्तविक मूल्यांकन वहाँ की स्त्रियाँ की दशा तथा स्त्रियों के विषय में प्रचलित धारणाओं से होता हैं। वस्तुतः स्त्रियों की दशा किसी भी सभ्यता तथा संस्कृति की मानदण्ड मानी जाती है। वैदिक युग में नारी की स्थिति अत्यंत ही सम्मानजनक रही है।

सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे पुत्र एवं पुत्री में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था। ऋग्वेद में स्त्री को घर में रानी के समान रहने का अधिकार प्राप्त था। नारी अपने पति के साथ संयुक्त रूप से यज्ञ करती थी। उनके मान तथा सम्मान में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। उनकी शिक्षाएँ पुरुष के समान होती थी।

ऋग्वेद की रचना में योगदान करने वाली लोपा, अलापा, गार्गी विदुषी नारियों का भी उल्लेख मिलता है। अतः विद्या एवं ज्ञान के क्षेत्र में भी ये नारियाँ पुरुषों की बराबरी करती थी। युवक तथा युवतियों को मिलने–जुलने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। युवतियाँ अपनी रुचि के अनुरूप विवाह कर लेती थी। अतः सामाजिक, धार्मिक तथा युद्धादि क्षेत्र में नारी को प्रमुख स्थान प्राप्त था। नारियों के योगदान का वर्णन करते हुए पी.बी.काणे ने माना है कि " सामान्यतः वैदिक काल में नारी का सम्मानजनक स्थान था। वैदिक काल की स्त्रियों ने वेदों की ऋचाएँ निर्मित की, वेद पढ़ें और पतियों के साथ धार्मिक कार्य किए। " 2 इस प्रकार वैदिककाल में नारी, नर की नूरता में समान रूप से चमकती रही है। उसकी इस चमक को कोई भी बंधन धूमिल नहीं कर पाया।

---

1. डॉ. सौ.जे.एम.देसाई : आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. सं. 10
2. पी.बी.काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. सं. 324

उत्तर वैदिककाल में अनार्यों से नारी का सम्पर्क होने के कारण स्त्री और पुरुषों के संबंधों में कड़वाहट आ गई। जिससे वे पुरुषों से हटकर अलग रहने लगी। इससे ज्ञान और अनुभव कम होने लगा तथा नारी के प्रति आदर भाव में भी कमी होने लगी। इस काल में समाज का ध्यान तपस्या में अधिक लगने लगा। पुरुषों द्वारा तप मार्ग में सबसे बड़ी बाधाँ नारी को माना जाने लगा। अतः कामप्रवृत्ति की निन्दा के साथ नारी निन्दा की जाने लगी। इस काल में बहुपत्नी प्रथा तथा बहु–विवाह इस युग की आम परिपाटी हो गई। जिसके कारण स्त्री का स्थान समाज में निम्नतर होता गया।

इस काल के शास्त्रकारों ने अपने शास्त्रों में भी शुद्रों के साथ नारी को वेदों की अनाधिकारी एवं अछूता ठहराया। इस युग में नारी का विकास कुण्ठित हो गया। इस कुण्ठित नारी पर जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी रूप में पुरुष का अधिकार निर्धारित कर दिया गया। महर्षि मनु ने स्त्री पर पुरुष के अधिकार को इस प्रकार वर्णित किया है–

" पिता रक्षति कौमार्य, भर्ता रक्षिती यौवने।
रक्षति स्थविरे पुत्रः न स्त्री स्वातंत्रमर्हति।" 1

'रामायण' और 'महाभारत' संस्कृत साहित्य की आदिम, प्रमुख एवं महत्वपूर्ण रचना है। इन रचनाओं के आधार पर ही मनीषियों द्वारा तात्कालिक समय का नामकरण रामायण काल और महाभारत काल किया गया है। आदिकवि 'वाल्मीकि' ने अपने काव्य ग्रंथ 'रामायण' में यथार्थता एवं सहजता के साथ रामकथा वर्णित की है। रामकथा में माता सीता में शील एवं सतीत्व की परिसीमा है। महर्षि 'वाल्मीकि' की दृष्टि अत्यन्त उदात्त एवं विस्तृत थी। रामायण काल में नारी का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण था। इस काल में नारी देवी के रूप में अंकित थी। पार्वती, सती, गंगा, लक्ष्मी, सीता आदि ऐसी ही अलौकिक एवं चरित्रवान नारीया सृष्टि सृजन देखने को मिलता है। सीता भगवान श्रीराम की पत्नी के रूप में वर्णित है जिन पर सम्पूर्ण रामकथा आश्रित है। सीता का विवाह स्वयंवर प्रथा से हुआ जो नारी के पति चुनने के अधिकार

---

1. महर्षि मनु : ' मनुस्मृति' 01/491

का प्रत्यक्ष उदाहरण रामायण काल में देखने को मिलता है। साहित्य में रामायण काल वह काल था जिसमें पुरुषों के साथ उनकी पत्नियों का भी चित्रण किया जाता था। राजा दशरथ के चार पुत्रों के साथ मूर्तिमयी उनकी चारो पत्नियों का वर्णन कवि गुप्त ने आधुनिक महाकाव्य 'साकेत' में इस प्रकार चित्रित किया है।

" राम–सीता, धन्य धीराम्बर–इला,
शौर्य्य–सह सम्पति, लक्ष्मण–उर्मिला।
भरत–कर्त्ता माण्डवी उनकी क्रिया,
कीर्ति–सी श्रुतिकीर्ति शत्रुध्नप्रिया।
ब्रह्मा की है चार जैसी पूर्तियाँ,
ठीक वेसी चार माया–मूर्तियाँ।" 1

महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित संसार के सबसे बडें ग्रंथ महाभारत को 'पंचमवेद' माना गया है। यह विशाल ग्रंथ धार्मिक मर्यादा, सामाजिक सिद्धांत, नीति–रीति तथा अनेक कथाओं व उपदेशों का विश्वकोश है। इसमें द्रौपदी, गांधारी, शकुन्तला, सावित्री जैसी नारियों की दशा समाज में संतोषप्रद थी। परिवार में माता के साथ अन्य रूपों में नारी का स्थान प्रमुख एवं महत्वपूर्ण था। महाभारत काल में वह आदरणीया कही गयी।

महाभारत युगीन समाज में बाल–विवाह की प्रथा नहीं थी। युवती होने पर ही कन्या का विवाह किया जाता था। कुन्ती, द्रौपदी, सत्यवती, देवयानी, शर्मिष्ठा सभी विवाह के समय व्यस्क थी। क्षत्रियों में 'गान्धर्व विवाह' मान्य था। दुष्यन्त शकुन्तला का 'गान्धर्व विवाह' हुआ था। शूरवीर, क्षत्रिय लोग कन्या का जबरन अपहरण करके राक्षस विवाह करते थे और उसे अच्छा मानते थे।

एकाधिक पुरुषों से विवाह करने वाली स्त्री को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। वह पाप की भागिनी होती थी। महाभारत में द्रौपदी ही एक मात्र ऐसी नारी थी जिसके पाँच पति थे। माता कुंती के पाँच पुत्र थे। पाँचों पुत्र अपनी माँ के अर्थात् एक जननी के

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 02

दुःखों को देखकर द्रवित है। लेकिन माँ कभी भी अपनी संतान को कष्टमय नहीं देख सकती, वह तो स्वयं गीले–वस्त्रों में शयन कर अपनी संतान को सूखे वस्त्रों में सुलाने वाली है। गुप्त की माता कुन्ती भी राजकुमारी होकर अपने पाँचों पुत्रों के कष्ट में उनके साथ है–

" रानी भी न होती वह, तो भी गृह–नारी थी,
धन–वन–योग्य न थी, चिर सुकुमारी थी।
पर उसको भी आज दुःख न था अपना,
पुत्रों को विपत्ति का ही जी में था कलपना। " 1

कविवर गुप्त ने माता कुंती के आदर्श, परोपकार सेविकाओं के प्रति जो दयाभाव था उसका आदर्श चित्रण किया है। कवि का मानना है कि संतान का दायित्व है कि वह उत्पनना माँ की हरसंभव सहायता व रक्षा करें। तभी एक माँ का प्रसव पीड़ा सहन करना सार्थक होगा। इस प्रकार महाभारत काल में नारी ने अपने सामाजिक रुप से उच्च स्तर को पाने का प्रयास किया जिसमें वह एक हद तक सफल भी रही है।

हिन्दी साहित्य एवं नारी –

समाज में नर–नारी का सहज आकर्षण अनादिकाल से चला आ रहा है। संसार के कर्मक्षेत्र में सफलता प्राप्त करने तथा सामाजिक जीवन व्यतीत करने के लिए दोनों एक दूसरे के अनिवार्य अंग है। स्त्री–पुरुष का संबंध मधुर एवं मनोरम होता है। यथार्थ और कल्पना में भी नारी का साहचर्य पुरुष के लिए सुखद अनुभूतियों का स्रोत रहा है। इसी सुखद अनुभूतियों का कल्पनाशील चित्रण हिन्दी साहित्य में प्रत्येक काल के कवियों ने अपनी लेखनी द्वारा किया है। जो हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल धार्मिक उपदेशों एवं वीरगाथाओं के रूप में लिखा गया था। इस काल में शासकों एवं उनके दरबारी कवियों द्वारा नारी के कामिनी एवं वीरांगना रूप का चित्रण कवियों की सामान्य शैली बन गया था। नारी के स्वतंत्र व्यक्ति की आभा

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जय भारत पृ. सं. 55

इस काल में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है। आदिकाल में समाज पूर्णतः रूढ़ीगत था। राजूपतों में वीरता एवं आत्मोत्सर्ग का प्रचलन था, किंतु कूटनीति एवं दूरदर्शिता का उनमें अभाव था।

इसी कारण राजपूत नारियों को जौहर के द्वारा आत्मबलिदान कर अपनी पवित्रता रखना पड़ती थी। राजा लोग विलास के लिए अनेक रानियाँ रखते थे। स्त्री वीर–भोग्या थी। अतः उसे पता नहीं रहता था कि कौन वीर उसे जीत ले जायेगा। इस समय 'जाकी बिटिया सुन्दर देखी ताहि पै जाइ धरै हथियार' वाली कहावत चरितार्थ थी।

आदिकाल में वर्णित काव्य को प्रमुखतः सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, रासो साहित्य व जैन साहित्य में विभाजित किया गया है। इन चारों साहित्यों में नारी की ओर भिन्न–भिन्न दृष्टियों से देखा गया है। सिद्ध–साहित्य को बौद्ध धर्म की एक शाखा के रूप में जाना जाता है। सिद्धों का विश्वास 'योग' की तुलना में 'भोग' साधना में था।

इस काल में नारी के सौन्दर्य का जो चित्रण किया जाता था वह चित्रण स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचायक नहीं था। इस युग का धार्मिक काव्य भी नारी के प्रति उदार नहीं था। इसक काल में जैन आचर्यों एवं सिद्धों द्वारा लिखे गए धार्मिक काव्य में नारी के प्रति विरक्ति का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। इसमें नारी को पुरुष के समक्ष किसी न किसी दृष्टि से हेय या तुच्छ बताया गया है। इस प्रकार सिद्धों ने अपनी साधना में स्त्री को एक उपकरण की भाँति समाविष्ट किया है।

आदिकाल में स्त्रियों में विषय–वासना के भावों के ठीक विपरीत वीरता का आकर्षण भी दिखाई देता है, जो नारियों को वीरोचित गुणों के उच्च शिखर की ओर ले जाता हैं। आदिकालीन रासों ग्रन्थों में नारी को समाज में विशेष गौरवयुक्त स्थान प्राप्त नहीं हुआ। वीरमाता, वीरपत्नी तथा विरहिणी नारी जीवन के आयाम खुलकर व्यक्त हुए है। इन ग्रंथों में राजनीतिक पतनावस्था और समाज की हीनावस्था के दर्शन के साथ–साथ नारी जीवन की दीन अवस्था के दर्शन होते हैं।

किसी भी युग विशेष का साहित्य तत्कालिक समाज का दर्पण होता है। उस युग की सामाजिक, राजनितिक व धार्मिक स्थिति का प्रतिबिंब उसमें दिखाई देता है। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल भी राजनीतिक दृष्टि से विक्षोभ एवं संक्राति का काल है। यह काल तत्कालीन समाज में प्रवाहित भक्ति के अनेंक प्रवाहों को अपने में समेटे हुए है। प्रत्येक धारा प्रवाह के साहित्य में नारी विषययुक्त भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण पाये जाते हैं।

इस काल के काव्य में वर्णित नारी के विषय में डॉ. रमेश कुमार त्रिपाठी का मत है कि ″इस काल में एक ओर वह उदात्त, आदर्श तथा आराध्य देवताओं की संगिनी के रूप में सम्मानित हुई है, तो दूसरी ओर सामान्य नारी के रूप में वह निन्दा एवं उपेक्षा की पात्र रही है।″ 1 जिस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम भारतीय जगत् के लिए रामकथा के श्रेष्ठ पुरुष है, उसी प्रकार माता सीता भी आदर्श स्त्री है। सीता एक मर्यादित पत्नी के रूप में अपने पति के सुख–दुख में हमेशा छाया की तरह साथ रहने वाली आदर्श नारी है। इन्हीं गुणों का वर्णन करते हुए कवि गुप्त का माता सीता के इन गुणों के विषय में लिखते है कि –

″ जलती धरती पर पैर धरोंगे कैसे ?
अंधड़ में पड़कर सांस भरोंगे कैसे ?
छाया भी छाया नहीं छोड़ती तरु की,
प्रिय, तप की तृष्णा तृप्त करोंगे कैसे ?″ 2

अतः भक्तिकाल के कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण समन्वित ही रहा है। एक ओर नारी को मुक्ति मार्ग की बॉधा मानकर उसकी उपेक्षा की गई तो दूसरी ओर पार्वती, सीता यशोदा आदि के रूप में आदर्श नारी की वन्दना भी की है। अतः नारी के इस प्रकार के चित्रण से कवियों की उदारता एवं अनुदारता का स्वर मुखरित हुआ है।

रीतिकाल के कवियों ने रूप–आकर्षण की आँधी में नारी के मंगलमय मातृत्व के साथ पत्नी के मूक समर्पण और बहन के स्नेहासिक्त दैदीप्यमान रूप को विस्मृत कर

---

1. डॉ. रमेश कुमार त्रिपाठी : समकालीन हिन्दी पत्रकारिता में नारी संदर्भ पृ. सं. 97
2. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 155

दिया। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति का जो रुप उज्ज्वल था। वह रीतिकाल में श्रृंगाररिकता का रूप ग्रहण कर गया।

इस युग में एक ओर बिहारी जैसे सूक्ष्मदर्शी कवि नारी–सौन्दर्य का सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप चित्रण कर रहे थे तो दूसरी ओर देव, घनानंद, पद्माकर की प्रतिभा भी नारी चित्रण को समेटे हुए थी। इन कवियों का नारी के प्रति दृष्टिकोण हमेशा सामन्ती ही रहा, जिससे वह समाज की इकाई न बनकर जीवन का एक उपकरण मात्र ही रही।

हिन्दी साहित्य में नवीन युग की नवीन चेतना के बीज आधुनिक काल में पाये जाते है। जिसका सर्वप्रमुख कारण अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार–प्रसार था। देश में इस काल से पूर्व समाज की दशा अत्यंत शोचनीय एवं दयनीय थी। जातिगत भेदभाव, छूआछूत, बालविवाह, सतीप्रथा, स्त्री–बहिष्कार इत्यादि के कारण समाज की प्रगति अवरुद्ध हो गई थी। अतः तत्कालीन महापुरुषों इस युग में व्यापक दृष्टिकोण से समाज सुधार की आवश्यकता महसूस करने लगे।

डॉ.सौ.जे.एम.देसाई ने इन महापुरुषों का समर्थन करते हुए लिखा है कि "महात्मा गॉधी, श्रीमती ऐनीबिसेण्ट, महर्षि कर्वे, ईश्वरचन्द विद्यासागर, राजाराम मोहनराय आदि समाज सुधारको ने भारतीय नारी की पत्नोन्मुखी दशा को सुधारने का प्रबल समर्थन किया।"1 इस प्रकार इन महापुरुषों के प्रयास से भारतीय में दृष्टिकोण नारी के प्रति व्यापक परिवर्तन आया।

युगों से उपेक्षिता, निंदनीया, और निपट–भोग्या मानी जाने वाली करुणा की प्रतिमूर्ति नारी को भी पहली बार इस सुधारवादी वातावरण में कवियों की संवेदनशीलता का संस्पर्श पाने का अवसर प्राप्त हुआ। इन कवियों ने नारी विषयक दृष्टिकोण में उदारता लाने का भरसक प्रयास किया। कवियों ने नारी की समता का उद्‌घोष इस प्रकार किया की समाज में नारी विषयक नई धारणा प्रकट हुई ।

---

1. डॉ.सौ.जे.एम.देसाई : आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. सं. 55

भारतेन्दु युग के कवियों ने रीति एवं श्रृंगार के संकीर्ण घेरे से नारी को मुक्त कर उसकी उन्नति का अथाह प्रयास किया। युग–पुरुष भारतेन्दु जी ने स्त्री के प्रति, पुरुष के दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास किया। उनके इस समग्र प्रयास में उनके सहयोगी कवियों का योगदान भी अविस्मरणीय है।

द्विवेदी युग साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से नवजागरण था। स्त्री–पुरुष की समानता, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति एवं मानवीय आदर्शो की प्रतिष्ठा इस युग की मूल प्रवृत्तियाँ है। इस युग के साहित्यकारों और कवियों ने अपनी रचनाओं में विलासितापूर्ण जीवन के चित्रण का परित्याग कर जनमानस को चारित्रिक दृढ़ता की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया। इस युग से पूर्व कवियों द्वारा दाम्पत्य प्रेम एवं नारी का जो चित्रण होता था, उस युग में एक नवीनता एवं निर्मलता आयी। द्विवेदी युग में प्रथम बार नारीत्व की उच्च भावना का विकास हुआ।

द्विवेदी–युगीन काव्य में मानवता को धर्म से भी बड़ी उपलब्धि माना है। नारी सहधर्मिणी, सहकर्मिणी और समान अधिकारों की पात्र मानी गयी। इस युग में ईश्वर सेवा का सही रूप मानव सेवा और जनसेवा को माना जाने लगा। आहूत, किसान, मजदूर, अशिक्षित नारी, और विधवा काव्य के वर्ण्य–विषय बने। वैधव्य जीवन की कठोर यातनाओं का भय और पतिव्रत का आदर्श नारी के सती होने के लिए पर्याप्त कारण बने।

हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युग में नारी को उसके अतीत गौरव का स्मरण दिलाने तथा समाज में उसकी महत्ता प्रतिपादित करने में कविवर गुप्त का योगदान भी अविस्मरणीय है। उनका नारी संबंधी दृष्टिकोण यह है कि उन्होंने भारतीय नारी की दशा का चिंतन वर्णन पश्चिमी चिंतन के बजाय भारतीय चिंतन की पृष्ठभूमि में किया है। भारतीय संस्कृति के 'वैतालिक' गुप्त ने नारी के अबला रूप को इस प्रकार गौरवान्वित किया है कि उनकी नारी का रूप मानव के लिए मानवीय तथा दानव के लिए दानवी के समान है–

" मैं अबला हूँ किन्तु न अत्याचार सहूँगी।
तुम दानव के लिए चण्डिका बनी रहूँगी। " 1

कविवर गुप्त स्त्री और पुरुषों को लेकर उनके आपसी संघर्ष की अनिवार्यता का अनुभव नहीं करते है। उनकी नारी न तो पुरुष की दासी बनकर जीवन जीना चाहती है और न ही उसकी प्रतिद्वन्द्वी बनती है। मानवीय धरातल पर कवि दोनों के मध्य प्रगाढ़ संबंधों पर बल देते है। उनकी विष्णुप्रिया, उर्मिला, यशोधरा जैसे नारी पात्र इसका दैदीप्यमान उदाहरण प्रस्तुत करते है विष्णुप्रिया अपने पति को अपने लिए सब कुछ मानती हुई कहती है –

" अब तो मेरे ही राम! तुम्हीं उसके जिसका कोई नहीं
जहाँ तुम, अभय और जय है वहीं मेरे प्रभु, तुम्हें प्रणाम।" 2

कवि गुप्त आधुनिक बदलावों से पूर्णतः भिज्ञ थे। इसलिए उन्होंने नारी जीवन में परम्परागत आदर्शों की पुनः स्थापना का सशक्त प्रयास किया। कवि ने नारी के आदर्श एवं गरिमा के माध्यम से मानवीय मूल्यों की स्थापना कर नारी में आत्मविश्वास लौटाने का भरसक प्रयास किया। उनकी नारी को जब–जब सामाजिक उलाहना का सामना करना पड़ा तब–तब वह अपने उद्‌गारों से उस पर थोपे पापों का प्रक्षालन करती है। माता कैकेयी चित्रकूट की सभा में कहती है–

" हा! लाल ? उसे भी आज गमाया मैंने,
विकराल कुयश ही यहाँ कमाया मैंने।
निज स्वर्ग उसी पर वार दिया था मैंने,
हर तुम तक से अधिकार लिया था मैंने।" 3

इस प्रकार द्विवेदी युग में कवि गुप्त ने अपने काव्य में विभिन्न नारी–पात्रों के माध्यम से मानवीय परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत किया है। कवि की धारणा है कि नारी का अपना पृथक अस्तित्व प्रस्थापित होना चाहिए। उनका यह प्रयास तत्कालिक युग में एक सीमा तक सार्थक भी हुआ है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : सैरेन्धी , पृ. सं. 20
2. मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया पृ. सं. 83
3. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 156

छायावाद में स्त्री–पुरुष के बीच समानता का भाव पैदा हुआ साथ ही स्त्री के प्रति पुरुष का दृष्टिकोण भी बदला हे। जिससे नारी को कविता में प्रेयसी के रूप में ऊँचा स्थान मिला। डॉ.नामवर सिंह ने इस संबंध में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है कि "नारी की दुर्बलताओं को छायावादी कवियों ने साहस के साथ कहा, और जिन बातों को अब तक लोक समाज के भय से छिपाते थे, उन्हें भी छायावादी कवियों ने खोलकर रख दिया। " 1

नारी के प्रति छायावादी कवियों का दृष्टिकोण न तो भक्तिकालीन संत कवियों की भॉति अनादर का है और न आदिकालीन और रीतिकालीन कवियों की भाँति भोग विलास, का अपितु नारी के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण स्वच्छंद है। इसी स्वच्छंद रूप का चित्रण करने में इन कवियों ने प्रकृति के रूप का नारी के चित्रण में सहारा लिया। इन कवियों ने प्रकृति को नारी के रूप में देखा है। छायावादी–काव्य में नारी के प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका प्रेम एक ओर जहाँ वासनाहीन था वहीं विवेक से परिपूर्ण था।यह भावना परम्परागत नारी भावना के विरुद्ध नवीन है। उनकी नारी मांस का पिण्ड न होकर पार्थिव पूज्य है।

आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों ने नारी को अर्द्धांगिनी एवं सहधर्मिणी के रूप में देखा और उसे पति की शक्ति माना है। इन साहित्यकारों का मानना है कि पत्नी के बिना पुरुष कोई भी कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न नहीं कर सकता है। नारी ही की निराशा एवं अवसाद के अवसर पर उत्साह एवं आशा का संचार करती हैं। वह आज के कलुषित वातावरण में आलोक की किरण बनकर पुरुष की रक्षा करती है तथा जीवन की जलनिधि से मुक्ता निकालने का उर्जवित प्रयास करती है। वह पुरुष की पाशविक वृत्तियों का दमन करके उसमें मानवता का समावेश करती है। हिंसा क्रूरता को मानवप्रेम और क्षमा में परिवर्तित करने का भरसक प्रयास कर मंगलगान करती हुई जीवन यात्रा पूर्ण करती है।

छायावादोत्तर काल में नारी विषयक दृष्टिकोण को ऊर्जा प्रदान करने वाले कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' राष्ट्रप्रेम और सहृदयता के अद्‌भुत आगार थे। कवि 'नवीन' की दृष्टि में वंदनीया नारी को वासना–गर्त में डुबोने की इच्छा रखने वाले तथा नारी निन्दा को

---

1. डॉ. नामवर सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ पृ. सं. 17

धर्म मानने वाले व्यक्ति हेय है। वे ऐसें लोगों को धिक्कारते हुए कहते है कि ऐसे मानव अधम एवं राक्षस के समान है–

" जो नारी में कामुकता ही देखें, वे भी क्या मानव है ?
वे तो है बस चांडल अधम, वे तो बस पूरे दानव है।" 1

हिन्दी साहित्य में कवि माखनलाल 'चतुर्वेदी' को राष्ट्रसंग्राम के सैनिक और राष्ट्रमंदिर के पुजारी होने के कारण 'एक भारतीय आत्मा' की उपाधि से विभूषित किया गया है। कवि का नारी विषयक दृष्टिकोण बड़ा उदात्त हैं। कवि 'चतुर्वेदी' का गोपी प्रेम उनका आदर्श रहा है, जिसमें त्याग और समर्पण की प्रधानता है। वे नारी को विलासिनी नहीं मानते है। राष्ट्रकवि ने देश की अखण्डता व एकता की रक्षा हेतु नर के साथ नारी को भी अपना योगदान देने के लिए प्रेरित करते हुए कहा है कि आज की नारी भी देश रक्षा हेतु नागिन के समान दुश्मनों पर फुँकार भरती है–

" अब नरों में नारियों हो बलशाली।
नाग सी फुंकारती हो कोटि भुजा मतवाली।। " 2

छायावादोत्तर काल में रामधारी सिंह 'दिनकर' ऐसे कवि है जिन्होंने एक ओर राष्ट्रीय भावधारा में डूबकर क्रांति के स्वरों को अभिव्यक्ति दी तो दूसरी ओर छायावादी मर्यादित सौन्दर्य और प्रेम के गीत गाए। उनकी अनेक कविताओं में नारी का आदर्श एवं दैदीप्यमान रूप प्रकट हुआ है। नारी जब अपना सर्वस्व किसी एक व्यक्ति पर समर्पित कर आजीवन बंधन में बँध जाती है, तो वह उसका पत्नी रूप होता है। इस पत्नी रूप में वह माँ, अबला, सबला, कुमारी सब रूपों को मर्यादित होकर ग्रहण करती है। कवि ने 'रश्मिरथी' में अपनी पीड़ा को इन शब्दों में पिरोया है–

" बेटा, धरती पर बड़ी दीन है नारी,
अबला होती, सचमुच योषिता कुमारी।" 3

---

1. बालकृष्ण शर्मा नवीन : हम विषपायी जनम के, पृ. सं. 26
2. हरिकृष्ण प्रेमी : आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, पृ. सं. 84
3. रामधारी सिंह दिनकर : रश्मिरथी पृ. सं. 69

प्रगतिशील विचारकों की जो विचारधारा राजनीति क्षेत्र में 'साम्यवाद' सामाजिक क्षेत्र में 'समाजवाद', और दर्शन के क्षेत्र में 'द्वन्द्वात्मक–भौतिकवाद' है, वही साहित्यिक क्षेत्र में 'प्रगतिवाद' के नाम से जानी जाती है। प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि में नारी भी मजदूर और किसान के समान शोषित–वर्ग में अंतर्भूत है। उनकी नारी युग–युग से सामन्तवाद की कारा में पुरुषों की बेड़ियों में बंदिनी है। पशु के समान गृहबंधनों में जीती नारी की मुक्ति की इच्छा को प्रगतिवादी कवि पंत इस प्रकार व्यक्त करते हुए लिखते है कि–

" मुक्त करो नारी को मानव, चिर बंदिनी नारी को।
" युग–युग की बर्बर काश से, जननि सखी प्यारी को। " 1

छायावादोत्तर काल में अन्य कवियों की भाँति कवि 'निराला' ने भी मानवतावादी दृष्टिकोंण को अपनाया है। नारी की स्वाधीनता को कवि निराला ने आवश्यक माना है। उनके अनुसार स्त्री एवं पुरुष मानव शरीर के दोनों हाथों के समान है। लेकिन हमारे देश के लोग आधे हाथों से काम करते है। उनका मानना है कि "आज हमारे आधे हाथ निष्क्रिय है। जब स्त्रियों के भी हाथ काम में लग जाएँगें कार्य की सफलता तभी हमें प्राप्त होगी।" 2

हिन्दी साहित्य में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' से 'प्रयोगवाद' का आरंभ माना जाता है। हिन्दी प्रयोगवाद पर फ्रॉयड, एडलर, युंग, इत्यादि पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों का प्रभाव रहा। जिसके कारण यौन–कुंठाओं, विभीषिकाओं का खुला चित्रण इन कविताओं में किया गया। प्रयोगवाद के प्रमुख कवि 'अज्ञेय' ने नर–नारी के आकर्षण–विकर्षण को अपनी रचनाओं मे वाणी दी है। असाधारणता से युक्त पुरुष की अधीरता को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

" कहो कौन है जिसको है मेरी परवाह
जिसके उर में मेरी कृतियाँ जगा सके उत्साह। " 3

---

1. सुमित्रानंदन पंत : ग्राम्या, पृ. सं. 86
2. रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना पृ. सं. 43
3. अज्ञेय : चिंता पृ. सं. 16

इस प्रकार समग्र रूप से देखा जाय तो हम पाते है कि आज समस्त नारी समाज न तो केवल देवी के पद पर ही अधिष्ठित किया जा सकता है और न केवल दृष्टा कहा जा सकता है, अपितु, वर्तमान समाज में हमें नारी भिन्न–भिन्न रूपों में दिखाई पड़ती है।

वर्तमान नारी परिवेश के अनुरूप आज प्रत्येक दायित्व को पूर्ण करने में सक्षम दिख पड़ती है। कुछ अपवादों को छोड़कर आज नारी की स्थिति में काफी परिवर्तन आ गया है। वह हर क्षेत्र में पुरुषों के कदम से कदम मिलाकर चलती दिखाई देती है। अब वह घर के कार्यो में ही व्यस्त न होकर नित्य कुछ न कुछ रचनात्मक कार्यो में भाग लेती हुई दृष्टिगोचर होती हैं जो उसी वर्तमान चेतना का उर्जवित रूप है।

नारी चेतना के विविध आयाम

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, क्योंकि समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा समाज उसे जैविक प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करता है। इस सामाजिक प्रक्रिया का आधार–स्तम्भ नर–नारी का सामंजस्य होता है। समाज में अक्षय शक्ति की स्रोत नारी के जीवन विकास पर ही पुरुष के जीवन का उत्कर्ष निर्भर है। लेकिन पुरुष द्वारा नारी के इस विविध विकास पर बॉधा डालकर, उसके जीवन मार्ग को अवरुद्ध किया जाता है।

अतः स्वयं नारी को अपनी शक्ति एवं चेतना के आधार पर उसके अवरोध पर विजय प्राप्त करनी होगी। क्योंकि सदियों से नारी पुरुष के जीवन की गतिविधियों में साथ देती रही है। फिर भी उसे केवल अनुगामिनी, अबला,आध्यात्मिक जीवन की बॉधा मानकर उसके मन और शरीर दोनों को सामाजिक एवं धार्मिक नियमों की जंजीरों में जकड़ कर रखा गया है। नारी को अपने विचारों एवं सामर्थ्य के आधार पर इन जंजीरों को तोड़ना ही नारी चेतना है। यह चेतना नारी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न हुई, जिसके प्रमुख रूप इस प्रकार है–

सामाजिक चेतना –

समाज में नित्य प्रति घटित होने वाली घटनाओं को देखकर वैसे तो प्रत्येक नागरिक प्रभावित होता है। लेकिन कवि का हृदय कल्पनाशील व भावुक होने के कारण वह नारी की स्थिति को देखकर द्रवित हो उठता है और उसे संबल प्रदान करता है। कवियों के अनुसार सामाजिक चेतना प्रत्येक व्यक्ति में चैतन्य और मूर्त रूप में होती है। लेकिन अज्ञान एवं अभाववश मन के विचार कुण्ठित हो जाते है। इन कुण्ठित विचारों से व्यक्ति को मुक्त रखना ही सामाजिक चेतना है। समाज में व्याप्त कलुषिता के विरुद्ध जब यह चेतना नारी में विकसित हो जाती है, तब यह नारी की सामाजिक चेतना कहलाती है।

कवि गुप्त के काव्य में वर्णित नारी पात्रों में यह सामाजिक चेतना स्थिर न होकर बहते हुए जल की भाँति लगातार प्रवाहित होती चली जाती है। उनके नारी–पात्रों की चेतना सामाजिक चेतना से अपना सम्पर्क स्थापित कर अपने पथ पर बढ़ती जाती है। उनकी नारी ने समाज में अभूतपूर्व परिवर्तन लाने का प्रयास किया है। पहले नारी प्रताड़ना व उपेक्षा की शिकार थी। समाज में उसे सम्मान नहीं दिया जाता था। परन्तु कवि गुप्त के प्रयासों के फलस्वरुप आज नारी में बराबर के अधिकारों की प्राप्ति हेतु चेतना का विकास हुआ है।

आज नारी पुरुष के साथ हर कार्य में कंधें से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है। उनकी नारी पुरुष से सहयोग की अपेक्षा करती हुई कहती है कि मेरे सहयोग में ही एक–दूसरे का भला है क्योंकि एक नारी का अहित कर आज तक कुछ भी हासिल नहीं हो सका। उनका मानना है कि –

" वाम होकर हर सकेगा सुख न मेरा दैव! तू,
हो भले ही विश्व में बॉधक विशेष सदैव तू।
भूमि–सुख न सही, मिलेगा स्वर्ग–सुख मुझको अभी,
आर्य–कन्या का अहित कोई न कर सकता कभी। " 1

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग, पृ. सं. 13

भारतीय संस्कृति में विवाह को प्रमुख सामाजिक बंधन माना है। विवाह से परिवार, परिवार से कबीले तथा कबीले से समाज का निर्माण हुआ है। इस प्रकार समाज का क्रमिक विकास वैवाहिक बंधन से प्रारंभ होता है। रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने माना है कि "विवाह में ही सबका परमहित समाहित है। " 1

माता–पिता अपनी पुत्री हेतु योग्य वर का चयन करके अपनी पुत्री का विवाह कर देते थे। कवि गुप्त ने ऐसे ही विवाह का समर्थन करते हुए माना है कि नारी में वह सहनशक्ति है जो माता–पिता के द्वारा चयन वर के साथ अपना जीवन–यापन करने का भार वहन करती है। रत्नावली अपने माता–पिता द्वारा तुलसी के वरण पर कवि गुप्त लिखते है–

" माता और पिता ने मन भर, जब निज निश्चय कर लिया।
तब उनकी इस कन्या ने भी, अनदेखा वर वर लिया । " 2

भारतीय समाज में नारी से पृथक होकर किसी भी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। नारी, व्यक्ति एवं समाज के बीच की एक मर्यादित इकाई है। कवि गुप्त की नारी परिवार की संरचना में विश्वास कर, इस इकाई को मजबूती प्रदान करती है। उनकी नारी एकल परिवार की नहीं, संयुक्त परिवार की अधिष्ठात्री हैं। 'पंचवटी' खण्डकाव्य में सीता लक्ष्मण के वन में साथ चलने पर कहती है कि परिवार का संचालन तपस्वी बनने से बढ़कर हैं। स्वयं सीता के शब्दों में कवि ने परिवार की श्रेष्ठता इस प्रकार वर्णित है –

" सीता बोलीं कि ये पिता की, आज्ञा से सब छोड़ चले,
पर देवर, तुम त्यागी बनकर, क्यों घर से मुँह मोड़ चले ? " 3

समाज में विवाह प्राचीन सामाजिक व्यवस्था है, जिसे समाज की संरचना को स्थापित करने के लिए रखा गया है। भारतीय समाज में बेटियों को विदा करते समय परिवार के सदस्यों एवं उनके सगे–संबंधियों द्वारा उसके सुखी जीवनयापन के लिए यथायोग्य सामग्री देकर विदा किया जाता था।

---

1. बोली अपर कहेहु सखि नीका।
   एहिं बिआह अति हित सबही का।
   तुलसीदास : रामचरितमानस पृ. सं. 178
2. मैथिलीशरण गुप्त : रत्नावली पृ. सं. 12
3. मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी, पृ. सं. 02

आज विवाह की व्यवस्था सोने–चाँदी के सुनहले रुपहले तराजू में तुलने लगी है, जिसमें मानवता, स्नेह, सोहाद्रर्य संबंधों का माधुर्य सब के सब कमजोर पड़ गये हैं। लेकिन कवि गुप्त की नारी समाज की इस कुरीति 'दहेज प्रथा' के विरुद्ध हुंकार भरती है, और कहती है कि वर एवं कन्या को दहेज के रूप में बेचकर यदि हम समर्थ और सम्पन्न बनें तो हमें धिक्कार है। वे 'भारत भारती' में लिखते हैं–

" बिकता कहीं वर है यहाँ, बिकती तथा कन्या कहीं,
क्या अर्थ के आगे हमें अब इष्ट आत्मा भी नहीं ?
हाँ! अर्थ, तेरे अर्थ हम करते अनेक अनर्थ है, –
धिक्कार, फिर भी तो नहीं सम्पन्न और समर्थ है।" 1

हमारे प्राचीन सामाज में दहेज प्रथा थी, लेकिन तब माता–पिता इस हेतु बाध्य नहीं थे। लेकिन आज धन के लालच में पुत्र की पशु–मेलों के समान बोली लगती है और अयोग्य जीवन साथी को उसके साथ जीवन भर के लिए बांध देते है। फलाफल अनमेल विवाह का जन्म होता है। इस अनमेल विवाह के लिए दोनों पक्ष उत्तरदायी है, कारण दहेज हैं ? आज भी शिक्षित–समाज में गाँवों में,शहरों में, महानगरों में बहुत से ऐसे उदाहरण मिल जाते है,जहाँ माँ–बाप स्वयं पर्याप्त दहेज न होने व समाज के दबाब की बजह से अपनी बेटी का अनमेल विवाह कर देते है।

कवि गुप्त का मानना है कि अधिकांश अनमेल विवाह में बेटी की उम्र कम ही होती है। जिससे वे कम उम्र में ही विधवा हो जाती है तथा उन्हें जीवनभर वैधव्य जीवन जीना पड़ता है कवि ने इस प्रकार के अनमेल विवाह को समाज के लिये दग्धकारी माना है। वे इस पीड़ा को धरती के फटने और आकाश की गर्जना से भारी मानते है। वे लिखते है –

" प्रतिवर्ष विधवा–वृन्द की संख्या निरन्तर बढ़ रही,
रोता कभी आकाश है, फटती कभी हिलकर मही।
हा ! देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को ?
फिर भी नही हम छोड़ते हैं बाल्य–वृद्ध विवाह को। " 2

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती, पृ. सं. 127
2. वहीं , पृ. सं. 127

आज नारी जहाँ अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के अस्तित्व हेतु संघर्ष कर रही है। वहाँ उसे एक तरफ समाज की रूढ़–परम्पराओं का सामना करना पड़ रहा है, तो दूसरी तरफ उसके सामने कई नवीन समस्याएँ उभर कर आ रही है। इन सब समस्याओं का कारण समाज की रूढ़ियों के बंधन है। रूढ़िगत–बंधनों के कारण पारिवारिक सीमाओं में रहते हुए नारी को परम्परागत वर्जनाओं से मुक्ति हेतु प्रयास करना पड़ रहा है। कवि गुप्त के 'यशोधरा' चम्पूकाव्य में अपने दुःख को यशोधरा परम्परानुसार स्वयं ही वहन करती है। वे किसी को भी नहीं बताना चाहती है। क्योंकि नारी के मरण में भी परम्परा और रूढ़ी अपना स्थान रखती है।

" आकर पूछेंगे जरा–मरण यदि हमसे,
शैशव–यौवन की बात व्यंग्य–विभ्रम से
हे नाथ, बात भी मैं न करूँगी यम से ,
देखूँगी अपनी परम्परा को क्रम से । " 1

लेकिन आज नारी में परम्परागत बंधनों एवं रूढ़ियों को नकारने का साहस पनपा है। आज नारी समाज परिवार एवं धर्म के बंधनों में नहीं बँधी है, बल्कि समाज की विशिष्ट इकाई के रूप में अपनी भूमिका निभा रही है। कवि गुप्त की नारी राधा के रूप में आभूषणों के बंधन को तोड़कर स्वतंत्र जीवन–यापन करना चाहती है। राधा आभूषणों के बंधन को समाज के बंधन समझती है और कहती है–

" फेंक दिये हैं मैंने सौ सौ रत्नाभूषण रम्य नितान्त,
बिखराई फूलों की माला करने को मन का दुख शांत
इन सबकी अब और साध क्या रखती है राधा मन में ?
करती हूँ बस ,भस्म–लेप अब चन्दनचर्चित इस तन में। " 2

नारी का समाज में शोषण सदियों से हो रहा है। उसके शोषण की समस्या सदियों पुरानी है। नारी सदैव ही पुरुषों की वासना और आततायीपन का शिकार रही है। आज समाज में नारी शोषण के कई आयाम दिखाई देते हैं। इसमें स्त्री–पुरुष के भेद, शारीरिक शोषण, यौन–शोषण

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा, पृ. सं. 80
2. मैथिलीशरण गुप्त : विरहिणी व्रजांगना, पृ. सं. 10

आदि प्रमुख है। कविवर गुप्त ने अपने काव्य में नारी पर होने वाले अत्याचार एवं अनाचार, मारपीट, प्रताड़ना एवं शोषण का तीव्र विरोध करते हुए समतामूलक समाज की स्थापना का संदेश देते है–

" बने कूप मण्डूक निरे, रहो घरों में ही न घिरे।
आओ, अब बाहर आओ, ममता में समता लाओ।।" 1

भारतीय संस्कृति के रक्षक और सामंती व्यवस्था के भक्षक कविवर गुप्त ने अपने काव्य में नारी की उस स्थिति का भी चित्रण किया है। जो मध्यकालीन पुरुष की सामन्ती मानसिकता का विरोध करती है। सामन्ती व्यवस्था में नारी का कोई अस्तित्व नहीं था। वह विलासिता का माध्यम मात्र थी। इस प्रकार की सामन्ती विलासिता पर चोट करती हुई सैरन्ध्री कहती है कि–

" पर नारी पर दृष्टि डालना योग्य नहीं है,
किसी का भाग्य किसी को भोग्य नहीं है।
तुमको ऐसा उचित नहीं, यह निश्चय जानो,
निन्द्य कर्म से डरो, धर्म का भी भय मानो। " 2

नारी चेतना के कारण परिवार एवं समाज का नारी के प्रति दृष्टिकोण बदला है। आज नारी ने घर, परिवार की लक्ष्मण–रेखा को पार कर, पुरुष–कार्यों क्षेत्रों में समानता के साथ पदार्पण किया है। कवि गुप्त ने भी अपने काव्य में ऐसी ही समानता का समर्थन प्रत्येक स्तर पर किया है और नारी की आत्मनिर्भरता पर बल दिया है। द्रौपदी अपनी सखी से कहती है कि –

" उनका–सा उद्योग करो, किन्तु भोग में योग भरो,
आदान–प्रदान यह हो, त्याग पूर्ण शुभ संग्रह हो।" 3

आजादी के बाद भारतीय समाज में नारी के लिए एक ऐसा अवसर आया, जहाँ वह अपनी पारम्परिक छवि को अस्वीकार करती हुई अपनी सहज आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए व पुरुष–वर्चस्व से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष करती रही है। कवि गुप्त की नारी उसके प्रति दयनीय

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : वैतालिक, पृ. सं. 08
2. मैथिलीशरण गुप्त : सैरन्ध्री, पृ. सं. 07
3. मैथिलीशरण गुप्त : वैतालिक, पृ. सं. 23

और असहायता कै आधार पर सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष समाज की मानसिकता का विरोध करती है। आज वह पुरुष वर्चस्व वाले समाज में एक स्वाभिमानी नारी के रूप में अपने कर्तव्य और अधिकारों के प्रति जागरुक–चेतनाशील नारी के रूप में संघर्षरत हैं।

इस संबंध में अनीता नायर का मानना है कि "नारी के जीवन के हर पहलू पर पुरुष (पिता, भाई, बेटा या कोई भी रूप में) के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हावी होने का तीव्र विरोध करती है।" 1 कविवर गुप्त ने द्रौपदी के माध्यम से बताया है कि नारी युवावस्था में पत्नी के रूप में पति की सेवा पति–गृह तथा परिवार की सुरक्षा एवं सुविधा में जिन्दगी का त्याग कर, धर्माचरण करती हुई स्व–निर्भर दुनिया का निर्माण करती है –

" सदा पति–सेवा करती है, अतिथियों का श्रम करती है।
भव्य भावों को भरती है, धर्म्म अपना आचरती हैं। " 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने तात्कालीन द्विवेदी युग के वायवी वातावरण में जीते हुए भी नारी पात्रों को सामाजिक आधार पर एक ऐसी ठोस धरती पर ला खड़ा किया जो उनके समकालीनों में कोई भी न कर सका। उनके नारी पात्रों में जागृति एवं अधिकारों के प्रति सजगता का भाव ही उनकी सामाजिक चेतना का जीवन्त दस्तावेज है।

आर्थिक चेतना –

भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। कृषि का संबंध धरती से होने के कारण धरती को 'माँ' की संज्ञा दी गई है। प्राचीन भारतीय विचारकों ने धरती को मनुष्य की आजीविका का साधन माना है। समयान्तर में आजीविका के स्वयप में आमूलचूक परिवर्तन आया तथा भूमि, पशु और विद्या तीनों को 'अर्थ' माना जाने लगा। इस प्रकार समग्र रूप से मूल्यवान वस्तु 'अर्थ' कहलाती है। संसार में सभी व्यवहारों मे 'अर्थ' को मुख्य माना गया है। क्योंकि सभी कार्य व्यापारों की प्राप्ति हेतु धन की आवश्यकता पड़ती है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने भी चारों पुरुषार्थों में 'अर्थ' को द्वितीय स्थान पर इसलिए रखा ताकि इसका अनुचित संग्रह और दुरुपयोग न हो सके।

---

1. अनीता नायर : प्रसाद के कथा साहित्य में नारी चेतना, पृ. सं. 54
2. मैथिलीशरण गुप्त : वन वैभव, पृ. सं. 06

प्राचीन काल में धन के सदुपयोग के सम्बंध में जगदीश सहाय श्रीवास्तव का मानना है कि "अतिरिक्त धन को समाज कल्याण के कार्यों में लगा देना चाहिए।"1 तत्कालीन समय में धर्मविहीन व्यक्ति को हेय दृष्टि से देखा जाता था। उसका समाज में कोई स्थान नही था। परन्तु वर्तमान मे भौतिक वस्तुओं की चकाचौंध ने 'अर्थ' को आज धर्म, काम, मोक्ष सभी तत्वों मे प्रमुख बना दिया है। संसार को सम्पूर्ण क्रिया–कलाप केवल अर्थ पर ही आधारित है। अर्थहीन व्यक्ति का समाज में कोई स्थान नहीं है।

भारतीय संस्कृति में मोक्ष की प्राप्ति हेतु दान को आवश्यक माना गया है लेकिन दान जरुरतमंद व्यक्तियों को ही दिया जाय तभी उसकी सार्थकता है। दान प्रदान कर स्वयं की प्रशंसा सुनना कभी भी रंग में भंग डाल सकता है। कवि गुप्त के खण्डकाव्य 'रंग में भंग' में कवि बारू द्वारा चित्तौड़ नरेश खेतल को स्वर्ग में पाताल में श्रेष्ठ दानी बताने पर हुआ विवाद अंत में वर एवं वधु पक्ष के विनाश का कारण बनता है। बूँदी नरेश लाल सिंह कवि 'बारू' से कहते है–

" स्वर्ग में, पाताल में, नृप! आप–सा दानी नहीं
क्या कलंकित इस कथन से की गई वाणी नहीं ?
कौन राना के गुणों की है नहीं कहता कथा ?
किन्तु ऐसा कथन फिर भी ग्राह्य ही है सर्वथा। " 2

प्राचीन युग से ही कृषि का महत्व चला आ रहा है। कृषि को सभी कार्यों में उत्तम माना गया है। रामायण और महाभारत जैसे प्राचीन ग्रंथों में भी कृषि को प्रमुख स्थान दिया गया है।उस समय लोग कृषि, शिल्प, व्यापार आदि अनेक साधनों द्वारा अपनी आजीविका कमाते थे। रामायण काल में राजा कृषि की तरफ पूरा ध्यान देता था। भगवान श्रीराम भी भरत से अरण्य मिलाप के समय राज्य और कृषि संबंधी जानकारी प्राप्त करते समय किसानों को खुश रखने का उपदेश प्रदान करते हुए कहते है कि–"कृषि एवं व्यापार से जुड़ा रहने पर ही मनुष्य सुखी एवं उन्नतशील होता है, भरत तुम खेती करने वालों को अपने राज्य में खुश रखते हो या नहीं। " 3

---

1. जगदीश श्रीवास्तव : समाज दर्शन की भूमिका, पृ. सं. 407
2. मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग, पृ. सं. 09
3. कच्चित ते दायितों सर्वे कृषिगोरक्ष जीविन :
   वातर्या संश्रिस्तात लोकायं सुखं भेदते।।
   महर्षि वाल्मीकि : रामायण पृ. सं. 50/8

लेकिन वर्तमान में खेती में उत्पन्न होने वाले अन्न को कृषक अपने उपयोग के लिए रखते है, और अतिरिक्त अन्य धान्य को वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बाजार में विक्रय करते है। लेकिन किसान को अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल रहा है। जिससे किसानों के मन में असंतोष एवं निराशा की भावना पैदा हो गई। जिसके कारण आज किसान आत्महत्या करने को मजबूर है। कवि गुप्त ने अपने 'किसान' नामक खण्डकाव्य में किसान की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए बतलाया है कि आज किसान के पास जहर खाने तक को पैसे नहीं है ? कारण कृषि घाट का सौंदा साबित होना –

" पाया हमने प्रभो! कौनसा त्रास नहीं है ?
क्या अब भी परिपूर्ण हमारा ह्रास नहीं है ?
मिला हमें क्या यहीं नरक का वास नही है ?
विष खाने के लिए टका भी पास नहीं है। " 1

पिछले कुछ समय से देश के विभिन्न राज्यों में किसान अपनी मांगों को लेकर आंदोलन कर रहे है। आजादी के 70 साल बाद भी देश का अन्नदाता शोषित और गरीब ही है। सरकारी घोषणाओं और चुनावी वादों से हर बार ठगा गया किसान अपने सम्मान को बचाने के लिए संघर्षरत है। इन आन्दोलनों का मुख्य मुद्दा किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोतरी है।

'स्वराज इण्डिया' के राष्ट्रीय अध्यक्ष व 'जय किसान आंदोलन' के संयोजक योगेन्द्र यादव ने किसानों के दायरे के संबंध में लिखा है कि " जमीन जोतने वाले के साथ पशुपालन, मुर्गीपालन, और मछलीपालन करने वाले को भी किसान के दायरे में शामिल किया गया है। यह पहली बार है कि सरकार आदिवासी और दलितों को किसान के रूप में स्वीकार करने को तैयार है। लेकिन खेती में दो तिहाई मेहनत करने वाली औरतों को किसान की परिभाषा से बाहर रखा गया है। " 2

कृषि भारतीयों का प्रमुख व्यवसाय रहा है। भारतीय किसान कृषि से प्राप्त आय एवं उत्पन्न अन्न का सुखद उपभोग करते है। इसके ठीक विपरीत अनैतिक एवं मानवीय

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : किसान, पृ. सं. 10
2. राजस्थान पत्रिका : कोटा संस्करण दिनांक 17/7/2017 आलेख पृ. सं. 02

शोषण से प्राप्त आय का भारतीय नारी उपभोग तो दूर एक कण मात्र भी उपभोग करना नहीं चाहती है। 'सिद्धराज' काव्य में सिद्धराज जयसिंह की पत्नी रानीदे अपने राज्यमंत्री के यहाँ भोजन करने इनकार करती हुई कहती है–

" मन्त्री एक साथ था जो, पूछा जब उसने ,
उनके अभोजन का हेतु वह बोली यों –
कैसे वह पाप–अन्न खाऊँ अब और मैं,
ऐसे पाप–कर से कमाते तुम हो जिसे ? " 1

हमारे समाज में आर्थिक आधार पर गरीब और अमीर दो वर्ग सामान्य रूप से प्रचलित है। अमीरों द्वारा प्रत्येक स्तर पर गरीबों का शोषण किया जाता है। वे किसानों, गरीबों से सस्ते दामों में वस्तु क्रय करके ऊँचे दामों में उन्हीं कों बेचकर मुनाफा कमाते है। कवि गुप्त ने 'झंकार' खण्डकाव्य में ऐसे क्रय–विक्रय का वर्णन करते हुये बतलाया है कि–

" जिसको निज जीवनधन देकर, मोल यहाँ हम लेंगे,
क्या उसके ऊपर अपने को, उलटा बेच न देंगे ?
किन्तु है इसका कौन उपाय कहो तो क्रय–विक्रय हो जाय "। 2

वर्तमान परिदृश्य में आज समाज का किसान वर्ग आर्थिक रूप से कमजोर है। आज खेती घाटे का सौदा साबित हो रही है। किसान अपनी सम्पूर्ण उपज को बेचकर खेती का खर्चा वहन करता है। 'साकेत' महाकाव्य में उर्मिला ग्राम वधू से जब खेती के बारे में पूछती है तो वह उपज का तो बखान करती है लेकिन सम्पूर्ण पैदावार कर्ज में जाने के कारण दुःखी हो कर रोने लगती है। इस संबंध में उर्मिला का ग्राम वधू से वार्तालाप बहुत ही मार्मिक और हृदय विदारक है, वह यों कहती है–

" पूछा यही मैंने एक ग्राम में तो कृषकों ने,
अन्न, गुड़ गोरस की वृद्धि ही बखान की।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज, पृ. सं. 18
2. मैथिलीशरण गुप्त : झंकार, पृ. सं. 42

किन्तु स्वाद कैसा है न जाने, इस वर्ष हाय!
यह कह रोई एक अबला किसान की ।" 1

संसार में जब अर्थ सभी पहलुओं को निर्धारित करने वाला केन्द्र बिन्दु बन गया है तो उसका उपार्जन भी बड़ा प्रश्न हो गया है। अनुचित तरीकों एवं सरलता से प्राप्त धन मनुष्य की मनुष्यता को ही नष्ट करने वाला है। 'नहुष' खण्डकाव्य में 'उर्वशी' का मानना है कि धन का प्रभाव पृथ्वी लोक पर अनैतिकता एवं दुराचरण को बढ़ाने वाला है। वह मानव समाज को संबोधित करते हुए कहती है कि –

" समझी मै, पृथ्वी पर धान्य–धन–वृद्धि हो,
और सुरलोक की–सी उसकी समृद्धि हो ?
किन्तु अमरत्व क्या इसी से नर पा लेंगे ?
उलटी मनुष्यता भी अपनी गवाँ देंगे। " 2

वर्तमान आर्थिक परिदृश्य ने मानव जीवन को बदल दिया है। समकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था आदर्श अर्थव्यवस्था नहीं कहला सकती है। क्योंकि समाज में संसाधनों का वितरण असमान है। सरकारी भंडारण ग्रहों की स्थिति में पहले और अब में कोई सुधार नहीं हुआ है। कारण एक ओर तो अन्न से भण्डार भरे पड़ें है जिनमें अनाज सड़ रहा है तो दूसरी ओर मनुष्य को दो जून की रोटी नसीब नहीं हो रही है। कवि गुप्त ने 'अजित' खण्डकाव्य में ऐसी प्रणाली पर प्रहार करते हुए वणिक वर्ग पर तंज कसते हैं –

" सड़े क्यों न वह अन्न, हठीले हड़प रहे हैं,
लाख–लाख जन इधर भूख से तड़प रहे हैं।
चन्दा देकर छूट मिली हे वणिग्जनों को,
करें एक से बीस, भरे दुर्भर भवनों को। " 3

कवि गुप्त का मानना है कि वर्तमान में जिस प्रकार किसान की आजीविका का साधन कृषि है उसी प्रकार शासन (राजा)" का दायित्व है कि वह अपनी प्रजा को क्षमता एवं योग्यता के

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 195
2. मैथिलीशरण गुप्त : नहुष पृ. सं. 31
3. मैथिलीशरण गुप्त : अजित, पृ. सं. 60

आधार पर कार्य प्रदान करें। कवि ने 'राजा–प्रजा' मुक्तकाव्य में राजा को सावचेत किया है कि यदि उनके राज्य में प्रजा अन्न, वस्त्र जैसी मूलभूत वस्तुओं से वंचित है तो उस राजा का शासक होना निरर्थक है। कवि गुप्त शासक को कर्त्तव्यों का बोध कराते हुए लिखते हैं–

आँधी–पानी में तुम्हें पोत खेना है,
सबको सबके अनुरुप काम देना है।
यदि अन्न–वस्त्र के बिना रह गया कोई
तो तुमने आपनी मूल सिद्धि ही खोई। " 1

हमारे देश की दो–तिहाई जनता गाँवों में निवास करती है। जहाँ व्यक्ति को मेहनत करके अपनी आजीविका चलानी पड़ती है तो दूसरी ओर व्यापारी वर्ग सूदखोरी एवं मजदूरों का शोषण करके धन जमा करता जाता है। जिससे निम्न वर्ग की कई पीढ़ियाँ कर्ज में डूब जाती है। कवि गुप्त ने अपने 'पृथ्वीपुत्र' खण्डकाव्य में 'मार्क्स' की पत्नी 'जेनी' द्वारा' परधन' विषय पर जो सवाल किया उसका जबाव 'मार्क्स' ने इस प्रकार दिया–

" जेनी, सुनो आदि में ही भूल है,
धन–रूपी फल का परिश्रम ही मूल है।
किन्तु श्रमिकों को फल मिलता है कितना,
पूँजी–पतियों का नहीं जूठन भी जितना। " 2

भारतीय संस्कृति में हमेशा दूसरे लोगों को गले लगाने का भाव रहा है। लेकिन विदेशियों ने हमेशा भारतीयों के साथ दगा ही किया है। प्रारंभ में वे व्यापारी बनकर आये तथा हमारा कच्चा माल ले जाकर वहाँ कि मशीनों द्वारा निर्मित महँगा माल वे बेचने लगे। जिससे हमारे देश का धन–धान्य विदेशों मे जाने लगा। जिससे हमारी आर्थिक स्थिति कमजोर होने के साथ हम बेरोजगार हो गये और भूखों मरने की नौबत आ गई। वर्तमान समय में चीन द्वारा ऐसा ही चाईनीज सामान बेचकर हमारे देश की अर्थव्यवस्था को क्षीण किया जा रहा है। कवि गुप्त ने 'भारत भारती' काव्य में ऐसे विदेशी व्यापार पर प्रहार कर देशवासियों को सावचेत् करते हुए बतलाया है कि –

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : राजा–प्रजा पृ. सं. 10
2. मैथिलीशरण गुप्त : पृथ्वीपुत्र पृ. सं. 27

" आतीं विदेशों से यहाँ सब वस्तुएँ व्यवहार की,
धन–धान्य जाता है यहाँ से, यह दशा व्यापार की।
कैसे न फैले दीनता, कैसे न हम भूखों मरें,
ऐसी दशा में देश की भगवान ही रक्षा करें। " 1

वर्तमान समय में अर्थ को अधिक महत्व दिया जाता है, व्यक्ति को नहीं। आज व्यक्ति की पहचान गुणों से नहीं आर्थिक सम्पन्नता से आंकी जाती है। अतः कवि गुप्त ने भारतीयों को भारतमाता के सच्चे सपूत मानते हुए परिश्रम करने का संदेश दिया है।

एक विशाल भू–भाग एवं जनसंख्या वाला देश है। देश में सम्पूर्ण कानून व्यवस्था संविधान द्वारा संचालित की जाती है। संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को कानूनी अधिकार प्रदान किये गए है। देश के संविधान में महिलाओं को भी आर्थिक अधिकार प्रदान किये गये है। आज महिलाओं को अपने आर्थिक अधिकारों के बारे में जागरुक होना अति आवश्यक है। इन्हीं अधिकारों में से कुछ अधिकार संपत्ति को लेकर भी है। अपने इन अधिकारों का इस्तेमाल करके महिलाएँ जरूरत के समय खुद को आर्थिक रुप से सुरक्षित कर सकती है। उनके प्रमुख आर्थिक अधिकार निम्नांकित है–

महिलाओं को अपने पिता, और पिता की पुश्तैनी सम्पत्ति में पूरा अधिकार दिया गया है। "हिन्दू उत्तराधिकार कानून 1956 में बेटी के लिए पिता की सम्पत्ति में किसी तरह के कानूनी अधिकार की बात नहीं कही गई थी। लेकिन 9 सितम्बर 2005 को इसमें संशोधन कर पिता की सम्पत्ति में बेटी को भी बेटे के बराबर का अधिकार दिया गया। "2 इस नियम के तहत माता–पिता की सम्पत्ति की रजिस्ट्री, ले–बेचान करना, पट्टे पर देना या ट्रांसफर करना बेटी के हस्ताक्षर के बिना संभव नहीं है। इस कानून में या तो बेटी सम्पत्ति में से अपना हिस्सा ले सकती है या फिर यह घोषित कर सकती है कि वह अपना हिस्सा अपने रूप से अपने पिता की जमीन–जायदाद का हिस्सा लेने का हक इस कानून के तहत प्रदान किया गया है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती — पृ. सं. 97
2. डॉ. डी.डी. वसु : भारतीय संविधान — पृ. सं. 342

" मुस्लिम लॉ के तहत् पिता की सम्पत्ति में बेटे को बेटी के हिस्से से दुगुना हिस्सा मिलता है। हालांकि बेटी का अपने हिस्से पर पूरा अधिकार होता है। ईसाई, पारसी और यहूदी महिलाओं को 'इंडियन सेक्शन एक्ट, 1925 के तहत पिता की सम्पत्ति में समान अधिकार दिया गया है। " 1

स्त्री–धन वह धन है, जो महिला को शादी के वक्त उपहार के तौर पर मिलता है। इन सब पर लड़की का पूरा हक माना जाता है। इसके अलावा वर–वधू को जो सामान्य उपयोग की तमाम चीजें प्रदान की जाती है। वह भी स्त्री धन के दायरे में आती है। स्त्रीधन पर लड़की का पूरा अधिकार होता है। अगर ससुराल पक्ष ने महिला का स्त्रीधन अपने पास रख लिया है और महिला को उपयोग करने से रोकते हैं तो महिला ऐसे लोगों के खिलाफ आईपीसी की धारा 406 (अमानत में खयानत) की भी शिकायत कर सकती है। ऐसे लोगों के इसके तहत स्त्री को कोर्ट के आदेश से महिला को अपना स्त्री धन वापस मिल सकता है।

शादी के बाद पति की सम्पत्ति में महिला का मालिकाना हक नहीं होता। लेकिन वैवाहिक विवादों से संबंधित मामलों में कई कानूनी प्रावधान है। जिनके लिए पत्नी पति से गुजारा भत्ता मांग सकती है। " अगर पति–पत्नि के बीच किसी बात को लेकर अनबन हो जाय और पत्नी, पति से अपने और बच्चों के लिए गुजारा भत्ता चाहे तो वह सीआरपीसी– 1973 की धारा–125 के तहत् गुजारा भत्ता के लिए अर्जी दाखिल कर सकती है। हिन्दू अडॉप्शन ऐंड मेटेनेंस एक्ट की धारा–18 के तहत् भी अर्जी दाखिल की जा सकती है। अगर पति और पत्नी के बीच तलाक का केस चल रहा हो तो पत्नी 'हिंदू मैरिज एक्ट की धारा–24' के तहत गुजारा भत्ता मांग सकती है।

लिव–इन–रिलेशन में रहने वाली महिलाओं को भी गुजारा भत्ता पाने का अधिकार है, हालांकि पार्टनर की मृत्यु के बाद महिला को उसकी सम्पत्ति में अधिकार नहीं मिल सकता। अगर पार्टनर की बहुत ज्यादा सम्पत्ति है और पहले से गुजारा भत्ता तय हो रखा है तो वह भत्ता जारी रह सकता है। लेकिन उसे सम्पति में कानूनी अधिकार नहीं है। " 2

---

1. डॉ. डी. डी. बसु : भारतीय संविधान पृ. सं. 343
2. राजस्थान पत्रिका : कोटा संस्करण दिनांक 17 / 7 / 2017 आलेख

इस प्रकार महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए वैसे तो सरकार और कानूनन कई अधिकार दिए गए है लेकिन सम्पत्ति को लेकर जो अधिकार दिये गये है उन अधिकारों का उपयोग कर महिलाएँ अपने को आर्थिक रूप से मजबूत कर उनकी आर्थिक चेतना को दृढ़ करने में मील का पत्थर साबित होंगे।

राजनीतिक चेतना —

नर एवं नारी प्रकृति की दो अनमोल धरोहर है। दोनों का समाज से गहरा नाता है। समाज और राजनीति में अटूट् संबंध है। 'राजनीति' शब्द 'राज' तथा 'नीति' दो शब्दों से मिलकर बना है। प्रायः 'राज' से राज्य तथा 'नीति' से नियम का अर्थ लगाया जाता है। अर्थात् किसी भी राज्य को चलाने के लिए जो नीतियां बनाई जाती है। वे सब राजनीति के अन्दर समाहित है। अंग्रेजी में 'राजनीति को 'पॉलिटिक्स' कहा जाता है जो 'ग्रीक' शब्द 'पोलिस' से बना है। जिसका अर्थ नगर या राज्य है।

संस्कृत–हिन्दी कोश में 'राज' शब्द का पहला अर्थ 'चमकना',जगमगाना, शानदार या सुन्दर प्रतीत होने से लिया गया है। दूसरा शब्द 'हुकूमत करना 'शासन करना' है। तीसरा अर्थ 'राजा', 'सरदार' या 'युवराज' आदि से लिया गया है।" 1 'नीति' शब्द संस्कृत की 'नी' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है–'निर्देशन, दिग्दर्शन, प्रबंध आदि है।" 2 आदर्श हिन्दी शब्दकोश मे राजनीति को शासक द्वारा प्रजा की रक्षा हेतु बनाई गई नीतियों से संबंधित करते हुए कहा गया है कि "वह नीति जिसके अनुसार राजा या शासक अपने राज्य के शासन संचालन करता है या वे पद्धतियाँ जिसके अनुसार किसी राज्य पर शासन किया जाता है, या होता है राजनीति कहलाती है। " 3

वस्तुत : नीतिपूर्वक ढंग से राज्य संचालित किये जाने के ढंग़ को राजनीति कहा जाता है। जिसमें मुख्य कार्य प्रजा का हित है न कि स्वहित। इस प्रजा हित में नारी का योगदान भी शामिल किया जाता है। तब नारी में राजनीति चेतना का समावेश हो जाता है। नारी में राजनीति चेतना को उसकी राजनीतिक विचार धारा की मजबूती के द्वारा जाना जा सकता है।

---

1. शिवराम आप्टे : संस्कृत –हिन्दी –शब्दकोश — पृ. सं. 851
2. वहीं, — पृ. सं. 550
3. पं.रामचन्द्र पाठक : आदर्श हिन्दी शब्दकोश — पृ. सं. 538

जब नारी अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति सजग होती है तो उसमें राजनीतिक विचारों का प्रभाव लक्षित होता है। उसके द्वारा ही समाज एवं शासन के प्रत्येक स्तर पर अपना योगदान निर्धारित किया जाता है। यह राजनीतिक चेतना आगे चलकर शासन की वास्तविक नीति निर्धारण करने में नारी का स्थान निर्धारित कर उसके योगदान को प्रकट करती है। नारी का राजनीति में स्थान ही नारी में राजनीतिक चेतना कहलाती है।

राजनीति और साहित्य दोनों एक–दूसरे को प्रभावित करते है। ये दोनों ही समाज के कल्याण के लिए कार्य करते है। अतः इन दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। 'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि' वाली कहावत भी कवि का समाज में हर पहलुओं के अंकन को चरितार्थ करती है। इस प्रकार काव्य और राजनीति एक दूसरे के पूरक है। कवि गुप्त ने भी अपने काव्य में राजनीति के प्रत्येक पहलू का वर्णन कर नारी के माध्यम से शासन में प्रजा को अधिकाधिक विश्वसनीयता प्रदान की है।

किसी भी राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए शासक अपनी सलाहकार समिति द्वारा जो नीतियाँ बनाकर उसको कार्यरूप देता है वही राजनीतिक व्यवस्था का अंग बनती है। लेकिन वह स्वरुप आज नहीं है। आज राजनेता जनता को आपस में लड़ाकर द्वेष एवं ईर्ष्या की भावना को बढ़ावा दे रहे है। राजनीति द्वेषता का खुला व्यापार हो गई है।

आज हमारे समाज में आपसी वैर–भाव का कारण साम्प्रदायिकता की भावना ही है। हमारे संविधान में धर्म–निरपेक्षता का चित्रण है लेकिन आज धर्म ही हमारे सामने धर्मसंकट बनकर खड़ा है। धर्म के आधार पर समाज को बांटा जा रहा है। साम्प्रदायिकता का विष वातावरण में घुल रहा है। सामाजिक एकजुटता की जड़ों को धार्मिक विद्वेष व साम्प्रदायिकता खोंखला कर रही है। ऐसी स्थिति में हमारी धर्मनिरपेक्षता की भावना हास्यास्पद लगती है। कवि गुप्त ने सर्वधर्म समभाव की भावना पर बल देते हुए हिन्दू–मुस्लिमों को विग्रह की नीति त्यागकर, भारतीय शहीदों का सम्मान करने की बात कही है। वे गुरुकुल में लिखते हैं –

" हिन्दू–मुसलमान दोनों अब,
छोड़ें वह विग्रह की नीति।
प्रकट की गई है यह केवल
अपने वीरों के प्रति प्रीति।" 1

हमारे देश में राजनीतिक दलों की बहुलता है जो लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली के लिए बॉधक है। शासन के सफल संचालन हेतु कुशल नेतृत्व होना आवश्यक है साथ ही में जनता का सहयोग, अपने निर्णय लेने की क्षमता आदि गुणों का होना परमावश्यक है। कवि गुप्त ने भी अपने 'भारत भारती' काव्य में एक अच्छे नेता के जो गुण बताये वे आज के समय में भी प्रासंगिक है–

" हे देश नेताओं! तुम्हीं पर सब हमारा भार है–
जीते तुम्हारे जीत है, हारे तुम्हारे हार है।
निःस्वार्थ निर्भय भाव से निज नीति पर निश्चल रहो
'राष्ट्रे वयं जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा' कहो। " 2

आज देश की राजनीति में नेताओं की भरमार हो गई है। लेकिन योग्य एवं दक्ष शासक का आज भी अभाव है। देश में महिलाओं व गरीबों पर अत्याचार हो रहे है और शासक वर्ग मौन है। नेता लोग शासन की आड़ में अत्याचार कर रहे है। कवि गुप्त ने अपने 'सैरेन्ध्री' खण्डकाव्य में सैरेन्ध्री के माध्यम से वर्णित किया है कि यदि शासक अपने राज्य में महिलाओं की रक्षा नहीं कर सकता तो उसे सत्ता में रहने का कोई अधिकार नहीं है। वे 'सैरेन्ध्री' खण्डकाव्य में शासक वर्ग को चेतावनी देते हुए लिखते है–

" तुममें यदि सामर्थ्य नहीं है अब शासन का,
तो क्यों करते नहीं त्याग तुम राजासन का ?
करने में यदि दमन दुर्जनों का डरते हो,
तो छूकर क्यों राज–दण्ड़ दूषित करते हो! " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : गुरुकुल, पृ. सं. 20
2. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती, पृ. सं. 156
3. मैथिलीशरण गुप्त : सैरेन्ध्री, पृ. सं. 22

वर्तमान समय में भारत देश ही नहीं सम्पूर्ण विश्व के समक्ष आतंकवाद एक चुनौती बनकर उभर रहा है। कवि गुप्त ने सम्पूर्ण विश्व से आह्वान कर सावचेत किया है कि संघ–शक्ति द्वारा ही इस चुनौती का मुकाबला किया जा सकता है। वे 'शक्ति' काव्य में लिखते हैं–

" संघ–शक्ति ही कलि–दैत्यों का मेटेगी आतंक,
इतना कहते कहते हरि की हुई भृकुटि कुछ बंक।
कृपा है कि यह कोप ? काल यों जब तक हुआ सशंक
निकला तब तक उनके तनु से तेज एक अकलंक। " 1

जिस देश के निवासियों में राष्ट्रीय चेतना शून्य होती है अथवा राष्ट्रीय–चेतना के प्रति जहाँ कोई उत्साह एवं जागृति दिखाई नहीं देती है, वह देश अपनी स्वाधीनता एवं अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने में कभी समर्थ नहीं हो सकता। राष्ट्रीय चेतना के मूल में स्वाधीनता निवास करती है। कवि गुप्त ने भी भारतवासियों में गाँधीजी के योगदान से अर्जित स्वाधीनता एवं राष्ट्रीयता को बचाने का संदेश दिया है। वे लिखते है–

" हम स्वाधीन हो गये, सहसा भूल कहीं फिर भटक न जायॅ।
न जा, हमारे त्राण–कवच, तू, हम काँटों में भटक न जायॅ। " 2

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके जीवन में स्वतंत्रता का अपना महत्व होता है। प्रजा को भय रहित वातावरण प्रदान करना शासक का दायित्व है। क्योंकि मानव तो क्या पशु–पक्षी भी पराधीन नहीं रहना चाहते है। 'पंचवटी' खण्डकाव्य में सीता अपने पति 'राम' के शासन का वर्णन करते हुए बतलाती है कि एक श्रेष्ठ राजा जहाँ भी जाकर पद धारण करता है उसके निवासी हमेशा सुखपूर्वक रहते है। सीता के शब्दों में कवि गुप्त लिखते है –

" जो हो, जहाँ आर्य रहते है, वहीं राज्य वे करते है।
उनके शासन में वनचारी, सब स्वच्छन्द विहरते है। " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : शक्ति, पृ. सं. 08
2. मैथिलीशरण गुप्त : अंजलि और अर्घ्य पृ. सं. 12
3. मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी पृ. सं. 10

'अर्जन और विसर्जन' खण्डकाव्य में भी कवि गुप्त ने रानी 'काहिना' के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व में राम–राज्य की स्थापना की बात कही है। क्योंकि विश्व में आज भोग–लिप्सा की प्रवृत्ति बढ़ गई है। जिसके कारण आज व्यक्ति देश को आजाद कराने वाले महापुरुषों के योगदान को भूल रहे है। रानी 'काहिना' के शब्दों में–

" राम–राज्य में पदप्राप्ति, का पाते हैं सब लोग सुयोग।
किन्तु भुलाकर जयी जनों को, विजित बना जाते हैं भोग।" 1

कवि गुप्त ने 'वैतालिक' खण्डकाव्य में पश्चिमी विलासता से बचने का संदेश देते हुए बतलाया है कि शासन में ऐसी विलासिता को कभी भी घर न करने दे तभी हमारे देश में आदर्श, राजनीति तथा शासन व्यवस्था सफल एवं सुन्दर रह सकती है –

" रम्य रहे इसकी रचना, पर विलासिता से बचना।
पश्चिम जिसमें डूब रहा, और यहाँ तक ऊब रहा। " 2

भारतीय शासन प्रणाली प्रजातान्त्रिक है। हमारे देश में जनता को स्वेच्छा से अपना मत देने का अधिकार है। लेकिन अब यह प्रथा धीरे–धीरे समाप्त होती जा रही है। प्रजातंत्र के नाम पर, चुनावों में जनता का शोषण किया जाता है। विभिन्न प्राकर के प्रलोभन देकर, मतदाता पर दबाव बनाकर, तथा हिंसक तरीकों से जनता से मत प्राप्त किया जाता है। कवि गुप्त 'राजा–प्रजा' काव्य में ऐसे फर्जी मतदान के बारे में लिखते हैं–

" मत देने वाले हुये यहाँ जो इतने,
उनमें इसके उपयुक्त पात्र है कितने।
अज्ञों को आयुध दिया जाए तो भय है,
वे कटें न उससे आप, तभी विस्मय है। " 3

हमारा देश जब स्वतंत्र हुआ, तब हमारे सामने गरीबी, भुखमरी एवं आर्थिक विकास की विकट समस्या थी। प्रत्येक राजनेता गरीब जनता को यही आश्वासन देता आया कि शीघ्रातिशीघ्र

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : अर्जन और विसर्जन — पृ. सं. 15
2. मैथिलीशरण गुप्त : वैतालिक — पृ. सं. 20
3. मैथिलीशरण गुप्त : राजा–प्रजा — पृ. सं. 13

गरीबी दूर की जावेगी। लेकिन ठीक इसके विपरीत अमीर और अधिक अमीर तथा गरीब और अधिक गरीब होते गए। कवि गुप्त शासक वर्ग का ध्यान इन समस्याओं की ओर इंगित करते हुए लिखते है कि–

" आँधी–पानी में तुम्हें पोत खेना है,
सबको सबके अनुरूप काम देना है।
यदि अन्न–वस्त्र के विना रह गया कोई
तो तुमने अपनी मूल सिद्धि ही खोई। " 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने अपने काव्य में एक हद तक तत्कालीन समय में प्रचलित राजनीतिक विचारों का समावेश किया है। उनका काव्य उस परिवेश में घटित होने वाली राजनीतिक घटनाओं से पूर्ण रूप से जुड़ा हुआ है। वे इसका चित्रण खुले मन से करते है। वे एक ओर शासक वर्ग को अपने कर्त्तव्य याद दिलाते है तो दूसरी ओर प्रजा को भी अपने कार्यो के बारे में बतलाने से चूकते नहीं है।

धार्मिक चेतना –

'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से निर्मित है जिसका अर्थ है धारण शक्ति। अतः किसी भी वस्तु की धारण शक्ति को धर्म कहा जाता है। धर्म प्रजा को धारण करता है जो धारण शक्ति से युक्त है, वही धर्म है इसे निश्चय समझो। " 2 धर्म शब्द का पर्यायवाची शब्द 'नियम' भी है। धर्म वे नियम है जो आत्मा को ऊपर उठाकर परमात्मा के साथ सारुप्य स्थापित करने का, मार्ग बतलाते है, और मानव–गुणों को अक्षुण्ण रखते हुए उसे मोक्षत्व की ओर ले जाते है। महर्षि कणाद ने कहा है "जिसके द्वारा लौकिक सुख और अंतिम लक्ष्य की सिद्धि हो सके वही धर्म है। " 3

अनेक शब्दकोशों में धर्म को विभिन्न प्रकार से व्याख्यायित किया गया है। हिन्दी शब्दकोश में 'धर्म' को ईश्वरीय श्रद्धा, पूजा–पाठ तथा लौकिक व सामाजिक कर्त्तव्यों से जोड़ा गया है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : राजा–प्रजा — पृ. सं. 10
2. धारणाद्धर्थ मित्याहुधर्मो धारयते प्रजाः।
   यत्स्याद् धारणां संयुक्त सधर्म इति निश्चय।।
   महाभारत : कर्ण — पृ. सं. 69 / 58
3. यातोभ्युदयनिः श्रेयस्सिदिः स धर्मः।
   कणाद – वैशेषिक दर्शन — पृ. सं. 10 / 1.2

इस प्रकार विभिन्न शब्दकोशों द्वारा धर्म के जो अर्थ बताए गए है, वे मनुष्य को उनके कर्त्तव्य एवं नियमों से जोड़ते हुए समाज कल्याण की भावना पर बल देते है। अतः धर्म एक ऐसी अदृश्य शक्ति है। जिसका प्रभाव भारतीय संस्कृति पर ही नहीं अपितु विश्व–संस्कृति पर भी रहा है। धर्म का मूल आधार विश्वास, श्रद्धा एवं पवित्रता है। अतः धर्म मानव जाति के कल्याण हेतु निर्मित हुआ है।

धर्म, प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक मनुष्य के साथ रहा है और रहेगा। जिसके कारण उसके स्वरूप में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। प्राचीन समय में धर्मविहीन व्यक्ति को पशु के समान माना जाता था। वेदों, पुराणों, व अन्य धार्मिक ग्रंथों में भी धर्मविहीन व्यक्ति की अवहेलना की गई है। अतः धर्म ही वह साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति पतित होने से बचता है। इसलिए जब धर्म को साहित्य के भीतर प्रतिष्ठित किया जाता है। तो वह साहित्य को भी ऊँचा उठाता है।

सम्पूर्ण विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है या आर्य संस्कृति ही ऐसी है जहाँ विविध अवसरों और देवमंदिरों में अनेक नारी–रत्नों की पूजा की जाती है। इन रत्नों का संबंध हमारे अतीतकाल की कथाओं के साथ जुड़ा हुआ है। उनमें नारियों का स्थान केवल ऊँचा ही नहीं था, अपितु आदरणीय और पूजनीय भी था। इस संबंध में डॉ. रमेश कुमार त्रिपाठी का मानना है कि "सर्वांग उन्नत राष्ट्रों ने स्त्रियों को योग्य सम्मान देकर महानता प्राप्त की थी। जो देश राष्ट्र, स्त्रियों को मान नहीं देता, वह कदापि महान् नहीं हो सकता और न भविष्य में कभी महान बनेगा।" 1

भारतीय नारी ने अपनी संस्कृति के अनुरूप ही आचरण किया है। वे पुरुषों के कदम से कदम मिलाकर एक साथ चली है। कहीं–कहीं पर पुरुषों से बढ़कर कार्य भी किया है। तभी तो माता–सीता की सेवा रमा, उमा, सरस्वती आदि देवियो के समान तुलसीदास द्वारा की जाती है। रामचरित मानस में वे लिखते है –

---

1. डॉ.रमेश कुमार त्रिपाठी :
समकालीन हिन्दी पत्रकारिता ने नारी संदर्भ, पृ. सं. 146

" बार–बार सनमानहिं रानी।
उमा, रमा, सारद सम जानी। " 1

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य में लक्ष्मी, सीता, जैसी गुणवान माताओं के पद्चिह्नों का अनुशरण करके समाज को उन्नति की प्रेरणा दी है। क्योंकि इन देवियों का चरित्र अनुपम एवं प्रेरक है। वे सच्ची भारतीय नारी की जीवंत प्रतिमाएँ है। इन आचरणों के विपरीत जाने पर नारी का पतन निश्चित है और समाज की व्यवस्था को भी आघात पहुँचता है। रामायण में माता कौशल्या धर्म के नियंत्रण में है जबकि कैकेयी लोभ एवं स्वार्थ के तभी तो भरत अपनी माता के स्वार्थ को कोसता है स्वयं को पिता, भाई व परिवार से विछुड़ा हुआ मानता है। कवि गुप्त लिखते हैं –

" स्वार्थ ही ध्रुव–धर्म हो सब ठौर !
क्यों न माँ ? भाई, न बाप, न और!
आज में हूँ कोसलाधिप धन्य,
गा, विरुद गा, कौन मुझ–सा अन्य ?" 2

मानव समाज धर्म के बिना पंगु माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक धर्म होता है। इसलिए उसकी अपने धर्म में पूर्ण आस्था होती है। मानव गलती को सबके समक्ष स्वीकार कर ले तो व्यक्ति उसे क्षमा कर देते है। माता कैकेयी का भी यही धर्म 'साकेत' महाकाव्य में प्रकट हुआ है। वे सबके समक्ष कहती है –

" यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन हूँ तात, तुम्हारी मैया।
दुर्बलता का ही चिह्न विशेष शपथ है,
पर अबलाजन के लिए कौन–सा पथ है। " 3

हमारे समाज में वैसे तो नर एवं नारी के बीच भेद किया जाता है। धार्मिक आधार पर भी व्यक्ति विभिन्न मतमतान्तरों में बटा हुआ है। लेकिन अंत में सभी धर्मो का सार "वसुधैव कटुम्बकम्" का

---

1. तुलसीदास : रामचरित मानस (बालकाण्ड) पृ. सं. 252
2. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 121
3. वहीं, पृ. सं. 122

भाव ही है। कवि गुप्त की नारी यशोधरा अपने पुत्र राहुल को अपने पति की भक्ति का मूल सार विश्व–परिवार बतलाती है और कहती है–

" बेटा घर छोड़ वे गये है अन्य दृष्टि से,
जोड़ लिया नाता है उन्होनें सब सृष्टि से।
हृदय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहते जो परिवार है। " 1

भारतीय आर्य संस्कृति में प्रत्येक नारी का धर्म है कि वह पतिव्रत–धर्म का पालन करें, तभी वे समाज में अपना स्थान बना पाती है। कवि गुप्त की नारी भी पतिव्रता है। वे अपार धन राशि के लोभ को भी तुच्छ समझती है और कहती है–

" देख विपुल धन–रत्न–राशि वह, पतिव्रता ने कहा यही
" आज अर्थ क्या इसका जब यह उनके रहते व्यर्थ रही। " 2

लेकिन आज पुरुष तो स्त्री से उसके पतिव्रता धर्म के पालन पर बल देता है लेकिन स्वयं के आचरण एवं व्यवहार में परिवर्तन की बात नहीं करता। अहल्या ऐसे कपटपूर्ण व्यवहार वाले लोगों पर प्रहार करती हुई कहती है कि –

" पुरुष का छल और बल से पूर्ण यह अतिचार,
नारियों के हेतु बनता पाप अपरम्पार।
हुआ पशुओं के अधिक पापी पुरुष का काम,
छोड़ मर्यादा प्रकृति की बन रहा उद्दाम।" 3

कवि गुप्त की नारी भी लज्जा, शील, संयम व पतिव्रता धर्म को तोड़ने वालों के विपरीत खड़ी है, चाहे वह स्वयं का भाई व पति ही क्यों न हो तभी तो 'सैरन्ध्री' के पतिधर्म को तोड़ने वाले कीचक को उसकी बहन सुकीर्ति चेतावनी देती हुई कहती है कि ऐसे अधर्मी योद्धा की जीवनधर्म हार निश्चय है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा पृ. सं. 79
2. मैथिलीशरण गुप्त : काबा और कर्बला पृ. सं. 40
3. डॉ.रामानंद तिवारी : अहल्या, पृ. सं. 74

" राम राम! यह वही बली मेरा भ्राता है,
कहलाता जो एक राज्य भर का त्राता है।
जो अबला से आज अचानक हार रहा है
अपना गौरव, धर्म सब वार रहा है। " 1

सृष्टि में नारी ही वह शक्ति है कि जब–जब नर ने धर्म के विपरीत आचरण किया है तब उसने चण्डिका बनकर उसका नाश किया है। इसके विपरीत देवों के समान मर्यादा में रहने वालों की रक्षा की है। कवि गुप्त 'शक्ति' खण्डकाव्य में लिखते है–

" तू हम सबकी शक्ति तुझे है बारंबार प्रणाम,
तुझको पाकर सिद्ध हुए है हम सबके सब काम।" 2

इस प्रकार निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि धर्म हमारी आत्मा है, व्यक्तित्व है, संस्कार है। जो हमारी परम्परा को उजागर करता है। धर्म के लिए सिर्फ एक श्रेष्ठ संकल्प चाहिए लेकिन आज उसी श्रेष्ठ संकल्प का अभाव है। आज समाज में पुरुष श्रेष्ठता का परिचय प्रदान कर स्वयं अपने धर्म का पालन न करके नारी द्वारा धर्म का पालन करने पर बल देता है। अतः नर व नारी दोनों को समान रूप से धार्मिक मान्यताओं को अपनाना होगा तभी समाज का मर्यादित विकास संभव है।

सांस्कृतिक चेतना –

संस्कृति का सामान्य अर्थ है–मनुष्य के रहन–सहन, खान–पान, आचार–व्यवहार से है जिसमें मनुष्य का शारीरिक और आध्यात्मिक विकास होता है, या हम कह सकते है कि व्यक्ति के जीवन की समस्त गतिविधियों का विकासात्मक संचालन जिस आन्तरिक संयम, अनुशासन बाह्य–व्यवस्था, श्रद्धा, आस्तिकता, आस्था आदि सभी भावनाओं का समावेश होता है, संस्कृति के अंतर्गत समाहित है।

'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति 'संस्कार' शब्द से हुई है। संस्कार शब्द 'सम' उपसर्ग 'कृ' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगने से बनता है। जिसका मूल अर्थ सुधारना या बहिष्कार

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : सैरेन्ध्री, पृ. सं. 12
2. मैथिलीशरण गुप्त : शक्ति पृ. सं. 17

करना है। हिन्दी शब्दकोश में 'संस्कृति' शब्द का अर्थ " संस्कृत रूप देने की क्रिया परिष्कृति और संस्कार आदि रूपों में लिया गया है। " 1 इसी प्रकार शाब्दिक अर्थ के आधार पर संस्कृति शब्द का सामान्य अर्थ हुआ, रहन–सहन का तरीका, मन रुचि, आचार–विचार, कला–कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास सूचक बातों से लिया गया है।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल संस्कृति का संबंध, राष्ट्र सृजन से मानते हुए लिखते है " विचार विमर्श और धर्म के क्षेत्र में राष्ट्र का जो सृजन है वही संस्कृति है। " 2 अतः 'संस्कृति' को किसी निश्चित परिभाषा में बांधना कठिन है। इसे हम मानव को सुदृढ़ एवं परिष्कृत करने वाली सैद्धान्तिक प्रक्रिया मान सकते है। जिसके अन्तर्गत मनुष्य के काम करने का ढंग, सोच–विचार और रहन–सहन के तौर–तरीके आते है। जिनको मानव अपनी आने वाली पीढ़ी को सौंपता है और जो समाज द्वारा स्वीकृत होती है वहीं संस्कृति कहलाती है।

भारतीय काव्य–साहित्य यदि स्वभाव से आनन्दवादी है तो इसलिए कि भारतीय संस्कृति में मानव–मूल्यों को स्वीकार किया गया है। पुनर्जन्मवाद, आध्यात्मवाद, परिवारवाद ऐसे जीवन मूल्य है, जो भारतीय संस्कृति के आधार रहे हैं। भारतीय संस्कृति में परमार्थ को स्वीकार करते हुए यह स्थापित किया गया है कि बिना फल की आशा किए बिना दूसरों की सहायता करना परमार्थ का भाव है। भारतीय संस्कृति को पोषक, मानव मूल्यों के वाहक कविवर गुप्त भी इस संदर्भ में 'भारत भारती' मुक्तक काव्य में लिखते है कि हमारी आत्मा तो अजर–अमर है, देह मात्र ही नष्ट होने वाला है।

" यद्यपि सदा परमार्थ ही में, स्वार्थ था हम मानते,
पर कर्म से फल–कामना करना न थे हम जानते।
विख्यात जीवन–व्रत हमारा लोक हित एकान्त था,
आत्मा अमर है, देह नश्वर 'यह अटल सिद्धांत था। " 3

हमारी संस्कृति में 'वसुधैव कटुम्बकम' का भाव प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण भारत के पड़ौसी देशों ने इस भाव को खण्डित करने का प्रयास किया। लेकिन

---

1. डॉ.हरदेव बाहरी : हिन्दी शब्दकोष पृ. सं. 794
2. डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल : कला और संस्कृति पृ. सं. 03
3. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती, पृ. सं. 22

भारतीयों ने सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार माना है और अपने ह्रदय की विशालता का परिचय दिया है। इस विषय में कवि गुप्त की नारी 'यशोधरा' अपने पुत्र राहुल को समझाती है कि तुम्हारे पिता ने सृष्टि से नाता जोड़कर सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मान लिया। कवि गुप्त 'यशोधरा' चम्पूकाव्य में लिखते है कि –

" बेटा घर छोड़ वे गये हैं अन्य दृष्टि से,
जोड़ लिया नाता है उन्होनें सब सृष्टि से।
ह्रदय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहता जो परिवार है।" 1

सम्पूर्ण विश्व में एक जैसी विशेषता नहीं पाई जाती है। प्रत्येक देश की अपनी अलग विशेषता होती है। लेकिन मातृभूमि का आकर्षण व्यक्ति को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करता है। जन्मभूमि के प्रति आकर्षण का भाव हमारी संस्कृति की एक विशिष्ट पहचान रही है। यशोधरा का मातृभूमि के प्रति लगाव और समर्पण देखते ही बनता है –

" बेटा, इस विश्व में नहीं एक देशता,
होती कहीं एक, कहीं दूसरी विशेषता।
मधुर बनाता सब वस्तुओं का नाता है,
भाता वहीं उसको, जहाँ जो जन्म पाता है। " 2

भारतीय संस्कृति स्वभावतः आध्यात्मवादी है। जिसमें जीवन और जगत् के मूल्यों को ही श्रेष्ठ माना गया है। इसके ठीक विपरीत पाश्चात्य संस्कृति का स्वरूप मूलतः आधुनिक और वैज्ञानिक है। इसलिए पाश्चात्य संस्कृति निराशावादी है। हमारी संस्कृति में शारीरिक आकर्षक को पूर्णतः नकारा गया है। शारीरिक आकर्षण की तुलना में ईश्वरीय आकर्षण पर बल दिया गया है। भारतीय नारियॉ इस विषय में हमेशा पुरुषों से आगे रहीं है। 'रत्नावली' खण्डकाव्य में रत्नावली अपने पति तुलसी को सावचेत करती हुई कहती है–

करते हो जो प्यार हाय! इस चार दिनों के चाम को,
जन्म सफल कर कोई उससे क्या पा सकता है राम को। " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा, पृ. सं. 79
2. वही – पृ. सं. 79
3. मैथिलीशरण गुप्त : रत्नावली पृ. सं. 09

समाज में परिवार ही एक ऐसी संस्था है जो संसार के प्रत्येक भाग में पाई जाती है। परिवार एक समिति एवं संस्था के रूप में सामाजिक संगठन हैं। परिवार का निर्माण विवाहित पुरुष–स्त्री तथा उनके बच्चों से मिलकर होता है। हमारी संस्कृति में सफल परिवार संचालन हेतु एकल–विवाह प्रथा का प्रावधान है। एक से अधिक पत्नी रखना या विवाह करना परिवार विघटन का कारण बनता है। कवि गुप्त ने 'पंचवटी' खण्डकाव्य में ऐसे बहु–विवाह को संकट या उत्पात का कारण माना है, तभी तो पंचवटी में सीता भगवान राम द्वारा लक्ष्मण को शूर्पणखा से विवाह करने की सलाह पर कहती है–

" बहुविवाह–विभ्राह, क्या कहूँ, भद्रे मुझको क्षमा करो।
तुम कुशला हो, किसी कृती को करो कहीं कृतकृत्य वरो। " 1

वर्तमान समय में मानव मन में विसंगति और अनिश्चितता बनी रहती है। मृत्यु का भय सदैव छाया रहता है। इसलिए आज सम्पूर्ण विश्व की पुकार अहिंसा की भावना है। आधुनिकता की चकाचौंध में मनुष्य हिसा पर उतारू हो गया है। आज विश्व में मारकाट का स्वर हर जगह सुनाई दे रहा है। जो विश्व की प्रगति में बॉधक बना है। कवि गुप्त ने अपने 'अजलि और अर्ध्य' मुक्तक काव्य में सम्पूर्ण विश्व से निर्भय होने के लिए सत्य–अहिंसा अपनाने की अपील करते है।

आज भारतीय संस्कृति में नारी जहाँ अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की खोज में संघर्ष कर रही है वहाँ उसे एक तरफ समाज की रूढ़ परम्पराओं का सामना करना पड़ रहा है। दूसरी तरफ उसके सामने कई नवीन समस्याएँ उभर कर आ रही हैं। आज नारी के सामने जो समस्याएँ है वे धीरे–धीरे उसके लिए भविष्य की रूढ़ि बन रही है। जो नारी और समाज दोनों की प्रगति में बॉधक है। आज नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व की मांग को लेकर संघर्षरत है। कवि गुप्त एक नारी की स्वतंत्रता की पुकार को अपने 'अर्जन और विर्सजन' खण्डकाव्य में इस प्रकार व्यक्त करते हुए लिखते है कि–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी पृ. सं. 31

" नहीं चाहते हम धन–वैभव नहीं चाहते हम अधिक अधिकर।
बस स्वतंत्र रहने दो हमको, और स्वतंत्र रहे संसार।। 1

भारतीय संस्कृति में नारी की आजादी एक मर्यादा की सीमा तक ही निर्धारित है। पाश्चात्य संस्कृति के समान आजादी नारी को गर्त में ले जाने वाली है। कवि गुप्त अपने 'शकुन्तला' अनुदित काव्य में मुनि 'कण्व' के 'शकुन्तला' को विदा करते समय जो उपदेश देते है वे भारतीय नारी के वैवाहिक जीवन के आधार स्तम्भ है। वे कहते है–

" परिजनों को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूलकर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।"
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी–पद पाती है।
उलटी चलकर वंश–व्याधियाँ कहलाती हैं। " 2

प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय संस्कृति में मातृभूमि के प्रति समर्पण का भाव रहा है। मातृभूमि की रक्षा हेतु मृत्यु का वरण कर लेना भारतीयों के समर्पण भाव का प्रमाण है। भारतीय नागरिकों ने अपनी मातृभूमि को स्वर्ग से भी बढ़कर माना है। कवि गुप्त ने महाराणा कुम्भा के मातृभूमि के प्रति समर्पण भाव को इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है–

" स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्म–भूमि कही गई,
सेवनीया है सभी की वह महा महिमामयी।
फिर अनादर क्या उसी का मैं खड़ा देखा करूँ।
भीरु हूँ मैं अहो! जो मृत्यु से मन में डरूँ ? " 3

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में दया, परोपकार सर्वधर्म सम्भाव का भाव भी एक विशेषता लिए हुए है। भारतीय पुरुषों ने विदेशी आक्रमणों से हमारे मंदिर, मस्जिद, संस्कृति, साहित्य तथा सभ्यता की रक्षा पर बल दिया है। जिनको नष्ट करने का प्रयास विदेशियों ने किया।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : अर्जन और विसर्जन पृ. सं. 23
2. मैथिलीशरण गुप्त : शकुन्तला पृ. सं. 26
3. मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग पृ. सं. 22

निष्कर्ष –

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीय एकता, आध्यात्मिक सहयोग, समर्पण आदि का विशेष महत्व है। आज पाश्चात्य प्रभाव के कारण इनका महत्व कम होता जा रहा है। लेकिन फिर भी पुरुषों के साथ–साथ भारतीय नारी ने भी हमारी संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा हेतु अपना सर्वस्व समर्पण करके पुरातन भारत के मानवीय मूल्यों को आज भी अपने साथ दृढ़ता से धारण किया है। कवि गुप्त ने अपने काव्य में नारी चेतना को पुरजोर रूप से वाणी दी है। नारी ने अपनी चेतना को चैत्यन्य करके जीवन को देखने समझने व जीने की एक दूसरी दृष्टि खोज निकाली हैं।

इस चेतना के विविध रूपों ने नारी के जीवन को देखा तथा उसे एक सामाजिक आधार प्रदान किया है। नारी चेतना के कारण आज पुरुष समाज के मन में भी नारी के प्रति सम्मान की भावना को समर्थन मिला है। जिससे वह और मजबूत तथा सशक्त हुई है। पुरुष की नारी के प्रति प्रेम और समर्पण की जो भावना थी उसको उदात्त रूप मिला है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि जो नारी काम–भाव को त्यागकर पूर्ववर्ती नारी से अधिक व्यावहारिक है। इस प्रकार नारी चेतना से नारी की विषयगत परिधि को विस्तार मिला हैं जिसमें राष्ट्रीय कवि गुप्त का योगदान अमूल्य एवं प्रमुख है।

तृतीय – अध्याय
महाकाव्यों में नारी चेतना

तृतीय अध्याय

महाकाव्यों में नारी चेतना

आधुनिक हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग के प्रतिनिधि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने रचना–भान से सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को आलोकित किया है। कवि गुप्त की प्रतिभा सीमित एवं एकांगी नहीं है। उनके काव्यत्व का सामर्थ्य इसी बात से प्रकट होता है कि उन्होंने जीवन और जगत् के प्रत्यक्ष और परोक्ष विषयों तथा सत्य को सूक्ष्मता और निकटता से देखा, सुना और समझा हैं। कवि गुप्त के रचना संसार में 'साकेत' और 'जयभारत' दो महाकाव्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने दोनों महाकाव्यों में भारतीय धर्म, संस्कृति और इतिहास के साथ ऐतिहासिक धार्मिक सांस्कृतिक और सामाजिक सभी प्रकार के आयामों तथा क्षेत्रों का संस्पर्श किया है।

हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों में कवि गुप्त के 'साकेत' महाकाव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। परम्परागत रामकथा को लेकर आदिकवि वाल्मीकि एवं तुलसीदास ने रामायण एवं रामचरितमानस की रचना की थी। आधुनिककाल में कवि गुप्त ने प्राचीन रामकथा को आधार बनाकर नारी चेतना से परिपूर्ण नारी को प्रमुख स्थान प्रदान करने वाले 'साकेत' महाकाव्य के रूप में नूतन महाकाव्य की रचना की जो रामचरितमानस के समान नवीनयुग चेतना एवं नारी में नवचेतना का संचार करने में अनुप्रमाणित एवं उत्कृष्ट रचना है।

कवि गुप्त की नारी राष्ट्रीय और सामाजिक धरातल पर समाज के प्रत्येक स्तर को प्रेरित एवं सम्पोषित करती है। उनकी नारी सम्पूर्ण समाज को त्याग और बलिदान की भावना के लिए प्रेरित करने वाली है। कवि गुप्त की नारी स्वयं तथा परम्परागत पूर्व प्रतिष्ठित मानव–मूल्यों की रक्षा करने वाली है। 'साकेत' महाकाव्य के नारी पात्रों में उन्होंने विशेष उदारता और सद्भावना व्यक्त की है। इसलिए कवि की नारी से अपेक्षाएं भी अधिक है। 'साकेत' महाकाव्य की नारियों में मानव–मूल्यों एवं चेतना के साथ आर्य नीतियों में भी पुरुषों के साथ

प्रत्येक कार्य में समान रूप से भाग लेने की प्रत्यक्ष–वृत्ति के संबंध में कवि का मानना है कि –

" निज स्वामियों के कार्य में समभाग जो लेतीं न वे,
अनुरागपूर्वक योग जो उसमें सदा देतीं न वे।
तो फिर कहातीं किस तरह, अर्द्धागिनी सुकुमारियाँ ?
तात्पर्य यह–अनुरूप ही थीं नरवरों के नारियाँ। " 1

इस प्रकार माता, पत्नी, प्रेयसी आदि के रूप में वही नारी आज समाज को महत्वपूर्ण भावनात्मक अवदान देती है। इसलिए कवि ने अपनी नारी को प्रेम तथा त्याग की प्रतिमूर्ति के रूप में अंकित करते हुए राष्ट्र–हित को ही लक्ष्य किया है। 'साकेत' महाकाव्य के नारी पात्रों की चेतना में कवि गुप्त ने नारी के उस रूप का चित्रण किया है। "जो राष्ट्र–हित तथा पर–हित के लिए अपने पिता, पति तक को समर्पित कर देती है। " 2 उनके 'साकेत' महाकाव्य के प्रमुख नारी पात्रों में यह चेतना इस प्रकार है–

'साकेत' के प्रमुख स्त्री–पात्रों में नारी चेतना–

किसी भी कवि की काव्य–यात्रा कवि के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को बिम्बित करती है। जिससे कवि की असाधारण प्रतिभा, उसके विकास और प्रौढ़ता का सहज अनुमान होता है। कवि की बहुमुखी काव्य–प्रतिभा को किन्हीं निर्धारित वर्णित क्षेत्रों की परिधि में प्रतिबद्ध करना कवि–प्रतिभा का अवमूल्यन करना है। कवि गुप्त ने भी अपने 'साकेत' महाकाव्य में इस परिधि से निकलकर कवियों की नारी विषयक उपेक्षा' की दीवार को तोड़ा और अपने विविध नारी–पात्रों के माध्यम से साहित्यिक दृष्टि से उपेक्षित नारी–पात्रों में नई ऊर्जा का संचार किया।

इस प्रकार उनके 'साकेत' महाकाव्य का प्रत्येक नारी पात्र स्वयं में एक पूर्ण व्यक्तित्व हैं। प्रमुख पात्रों का वर्णन व विभाजन कवि गुप्त ने अपने महाकाव्य में इस प्रकार किया है –

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : भारत – भारती पृ.सं. 17
2. देव होकर तुम सदा मेरे रहो,
   और देवी ही मुझे रखो अहो।
   मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ.सं. 10

" राम–सीता,धन्य धीराम्बर –इला
शौर्य्य–सह सम्पत्ति, लक्षणा–उर्मिला।
भरतकर्त्ता माण्डवी उनकी क्रिया।
कीर्ति–सी श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्नप्रिया।
ब्रह्मा की हैं चार जैसी पूर्तियाँ
ठीक वैसी चार माया–मूर्तियाँ।" 1

अतः उनके नारी पात्रों की चेतना को निम्नांकित प्रमुख पात्रों के माध्यम से प्रकट किया जा सकता है।

उर्मिला –

भारतीय आर्य संस्कृति के वाहक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के रामकाव्य 'साकेत' महाकाव्य में उर्मिला का संस्थापन हिन्दी–रामकाव्य जगत् में अभूतपूर्व घटना है। कवि ने सीता के समानान्तर उर्मिला के मानवीय संबंधों और चरित्रगत वैशिष्ट्य के व्यंजना–वैदग्ध को कहीं भी शिथिल नहीं होने दिया। आदिकवि वाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास की लेखनी उर्मिला के सदंर्भ में मुखरित नहीं हुई। तब कवि गुप्त ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त करके सर्वप्रथम इस अभाव की पूर्ति का गौरव 'साकेत' महाकाव्य की रचना कर प्राप्त किया। कवि गुप्त ने महावीर प्रसाद द्विवेदी के इस प्रोत्साहन को 'साकेत' महाकाव्य की भूमिका में इस प्रकार स्वीकार किया है –

" करते तुलसीदास भी कैसे मानस–नाद ?
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद। " 2

" इस प्रकार कवि गुप्त की सर्वोत्तम कल्पना उर्मिला की सृष्टि है। जिसे काव्य की भाव–भूमि पर पहली बार अंकित करने का गौरव उन्हीं को प्राप्त हुआ है। " 3 'साकेत' महाकाव्य का महत्व उर्मिला के चरित्र–गौरव के साथ ही है। 'साकेत' के प्रथम सर्ग में कवि गुप्त

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 02
2. वहीं, — पृ. सं. 01
3. धन्य है प्यारी, तुम्हारी योग्यता,
मोहनी–सी मूर्ति मंजु–मनोज्ञता।
वहीं, — पृ.सं. 09

ने उर्मिला को धरती पर स्वर्ग के सुमन के समान माना है जो उनके चरित्र को उज्ज्वल बनाने के साथ सम्पूर्ण काव्य में मजबूती प्रदान करता है। कवि गुप्त के अनुसार अलौकिक शक्ति, पृथ्वी पर शील और आदर्श उपस्थित करने के लिए उर्मिला के रूप में अवतरित हुई है। उर्मिला का अवतरण कवि गुप्त ने इस प्रकार माना है –

" स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,
नाम है इसका उचित ही " उर्मिला"।
शील–सौरभ की तरंगें आ रही ,
दिव्य–भाव भवाब्धि में है ला रही। " 1

वर्तमान समय में शारीरिक आकर्षण ही नर–नारी के संबंधों का पर्याय बन गया है। लेकिन उर्मिला अपने पति लक्ष्मण के प्रति अपने दाम्पत्य–प्रेम में शारीरिक उत्तेजना के स्थान पर मानसिक उल्लास तथा समर्पण का भाव प्रकट करती है। उनका यह समर्पण वर्तमान नर–नारी के शारीरिक आकर्षण के ठीक विपरीत है। उर्मिला का यह श्रृंगारी रूप अनुभावों, संचारियों में प्रतिबद्ध न होकर मानव–मूल्यों तथा आदर्श दाम्पत्य जीवन की अभिरुचि से परिपूर्ण है। नारी के उदार मनोभावों और पुरुष के प्रति समर्पण–वृत्ति को व्यक्त करते हुए उर्मिला कहती है–

" खोजती है किन्तु आश्रय मात्र हम,
चाहती है एक तुम–सा पात्र हम।
आन्तरिक सुख–दुःख हम जिसमें धरें,
और निज भव–भार यों हलका करें। " 2

नारी–जागरण और नारी–उत्थान की अनिवार्यता प्रायः सभी समाज सुधारकों, शिक्षाविदों , राजनीतिज्ञों और साहित्कारों ने अनुभव की थी। कवि गुप्त के काव्य में नारी जागरण का संदेश उनका प्रधान अंग रहा है। वे उर्मिला के माध्यम से नारी में त्याग, तपस्या, तितिक्षा, स्वार्थ–निरपेक्षता, उदारता, सहिष्णुता तथा पुरुष के प्रति समर्पण –भाव आदि मूल्यों की स्थापना करते है। उर्मिला अपने पति लक्ष्मण को परोपकारी जीवन की प्रेरणा प्रदान करती हुई कहती है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 08
2. वहीं, पृ. सं. 11

" करना न सोच मेरा इससे,
व्रत में कुछ विघ्न पड़े जिससे।
आने का दिन है दूर सही,
पर है, मुझको अवलम्ब यही। " 1

'साकेत' महाकाव्य की विरहिणी उर्मिला अपने पति लक्ष्मण के प्रति त्याग की भावना से प्रेरित और सम्पोषित है। वह पुरुषों के साथ समानाधिकारों के भाव से दीप्त होने के साथ ही, पुरुषों में आत्मचेतना और नव–आलोक की सृष्टि करने वाली हैं। उर्मिला अपने पति लक्ष्मण के साथ महलों में रहने को तिरस्कृत करके, अपने पति को भ्राता राम का संकट में साथ देने की प्रेरणा प्रदान करती है। राम के वनगमन पर उर्मिला अपनी भावनाओं को प्रकट करते हुए क्षोभ युक्त वाणी में लक्ष्मण से कहती है–

" दे सकी न साथ नाथ का भी !
ले सकी न हाय ! हाथ का भी !
यदि स्वामि–संगिनि रह न सकी,
तो क्यों इतना भी कह न सकी –
हे नाथ, साथ दो भ्राता का,
बल रहे मुझे उस त्राता का। " 1

भारतीय संस्कृति में त्याग एवं परोपकार को श्रेष्ठ मानवीय गुण माना गया है। किन्तु कवि गुप्त नारी–जागृति में इन गुणों में अनपेक्षित स्वच्छंदता, स्वेच्छाचरिता और अमर्यादित आचरण को न तो प्रश्रय देते हैं, और न पोषित करते हैं। उर्मिला के त्याग एवं परोपकार में कवि ने जो विराट मर्यादा रखी है, वह भारतीय संस्कृति से पोषित है। इस संबंध में उर्मिला की अवधारण इस प्रकार है –

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 98
2. वहीं, पृ. सं. 97

" मेरी चिन्ता छोड़ों,
मग्न रहो नाथ, आत्मचिन्तन में,
बैठी हूँ मैं फिर भी,
अपने इस नृप–निकेतन में " 1

उर्मिला की चेतना में कवि गुप्त ने पत्नी–भाव की जो विशद् मर्यादा रखी है, उसमें मध्यकालीन नारी की श्रृंगारिकता, जड़ता तथा संस्कारहीन निरक्षर जीवन के तमसावृत्त पक्षों से उसे मुक्ति दिलाकर नए लक्ष्य एवं नए प्रकाश बिन्दु प्रदान किए हैं। इस प्रकार लक्ष्मण के साथ प्रेम संबंधों और पारस्परिक आवश्यक पक्षों में उर्मिला तेजस्वी, आत्माभिमान पूर्ण, बुद्धिमती वह भारतीय नारी–मर्यादा के आदर्शों से एक पल के लिए भी विच्छिन्न नहीं होती है। उर्मिला–लक्ष्मण के संबंधों की अंतरंगता का आभास इसी तथ्य से हो जाता है कि लक्ष्मण को राम की सेवा में समर्पित होने पर भी अपने भाग्य को बड़ा मानती है ।

समाज में परिवार को सर्वश्रेष्ठ इकाई माना गया है। परिवार में पति–पत्नी का त्याग और अनुराग उन्हें दैवीय धरातल प्रदान करता है। कवि गुप्त ने त्याग और अनुराग का अपूर्व समन्वय उर्मिला की अनुभूतियों में स्थापित किया है। इस संबंध में डॉ.नगीनचन्द्र सहगल का मानना है कि "उर्मिला कर्तव्यनिष्ठ होकर अपने गृहस्थ–जीवन की महिमा को बढ़ाती है। उसकी इस मंगलकामना में उदात्त भाव है जो उसे साधारण वधू से देवी–रूप प्रदान करता है " 2 इस प्रकार वियोगजन्य मानसिक चिन्ताओं तथा व्यथा पीड़ित होती हुई उर्मिला अपने स्वार्थ के लिए एक क्षण भी यह इच्छा नहीं करती कि लक्ष्मण अपना व्रत–भंग करके वापस घर लौट आए। क्योंकि वह प्रेम से कर्त्तव्य को कई गुना ऊँचा मानती है साथ ही लक्ष्मण के घर आने पर संसार में अपने आप को लज्जित महसूस करती हुई कहती है–

वर्तमान समय में सास–बहू के संबंधों में कड़वाहट बढ़ रही है। जिसका प्रमुख कारण दहेज प्रथा व एक दूसरे को ऊँचा समझने का भाव है। 'साकेत' महाकाव्य में उर्मिला विरहजनित होने के साथ निराश्रय की अवस्था में भी वंश–मर्यादा तथा सास–ससुर के

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 183
2. डॉ.नगीन चन्द्र सहगल – साकेतः एक अध्ययन पृ. सं. 46

प्रति अपने दायित्व का पूर्ण बोध रखती है। राम के वनगमन का कारण बनी कैकेयी के प्रति भी उसके मन में द्वेष का लेश–मात्र स्थान नहीं है। राजा दशरथ की मृत्यु का परिवार में सर्वाधिक दुःख उर्मिला को ही होता है। वह शोक विह्वल होकर माता कैकेयी से ही पूछ बैठती है –

" माँ, कहाँ गये वे पूज्य पिता ? "
करके पुकार यों शोक–सिता,
उर्मिला सभी सुध–बुध त्यागे,
जा गिरी कैकेयी के आगे।
कैकेयी का मुँह भी न खुला,
पाषाण–शरीर हिला न डुला। " 1

भारतीय नारी हमेशा से ही संसार के प्रत्येक प्राणी के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार की पालना करती रही है। 'साकेत' महाकाव्य में प्रकृति के छोटे से छोटे प्राणी मकड़ी और मक्खी भी उर्मिला की सहानुभूति से वंचित नहीं है। "उर्मिला विरहावस्था में अपने आप को तपाती है, लेकिन उसके मन में प्राणी–मात्र के प्रति दया एवं करुणा का भाव है। " 2

वह राज्य के श्रमजीवियों और कृषकों के विषय में सोचती है कि ग्रीष्म ऋतु की तपन से प्रत्येक प्राणी बेहाल है। इस तपन का कारण उर्मिला अपने पति लक्ष्मण की तपस्या को मानती है। वह उन्हें संबोधित करती हुई कहती है कि आप इतना तप न करें , जिससे संसार के दूसरे प्राणी तपित होवें। उर्मिला अपनी परकातरता को यों शब्दों का जामा पहनाती है –

" इतना तप न तपो तुम प्यारे,
जले आग–सी जिसके मारे।
देखो, ग्रीष्म भीष्म तनु धारे,
जन को भी मन चीतो,
मन को यों मत जीतों। " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 108
2. तरसू मुझ–सी मैं हीं, सरसे–हरसे–हँसे प्रकृति प्यारी ,
   सबको सुख होगा तो मेरी भी आयेगी वारी।
   वहीं, — पृ. सं. 186
3. वहीं, — पृ. सं. 183

संसार में पद–लोलुपता का भाव प्रत्येक व्यक्ति में होता है। राज–पद के प्रति मोह अधिक पाया जाता है। भगवान राम के वनगमन का कारण भी कैकेयी को राजमाता बनने का भाव था। उर्मिला ऐसे राजपदों को पत्नी–पति के बीच विभेद, अलगाव तथा तलाक तक का कारण मानती है। वह सामान्य जनता, कृषक तथा मजदूरों के जीवन को अपने आप से श्रेष्ठ मानती है। उर्मिला सामान्य लोगों के जीवन के विषय में अपनी सखी को बताते हुए राजसी जीवन को नकारते हुए कृषकों के जीवन को भाग्यशाली बताने का प्रयास कहती है–

" यदि वे करें उचित है गर्व,
बात बात में उत्सव–पर्व
हम–से प्रहरी रक्षक जिनके,
वे किससे डरते हैं ?
हम राज्य लिये मरते हैं।" 1

उर्मिला राज्य (शासन) को ही अपने परिवार के विघटन का मूल कारण मानती है। ऐसे राज्य को वह स्वीकार नहीं करती है कि जिस शासन से दुख एवं क्षोभ मिलें उसे बार–बार धिक्कार है –

" प्रभु को निष्कासन मिला,
मुझको, मिला कारागार।
मृत्यु–दण्ड उन तात को,
राज्य, तुझे धिक्कार। " 2

'दाम्पत्य' वह शब्द है, जिसमें स्त्री–पुरुष का आपसी समर्पण प्रथम शर्त है। उर्मिला में यह समर्पण भाव कूट–कूट कर भरा है। उसका यह समर्पण परिवार के प्रत्येक सदस्य के प्रति है। वह अपनी सखी से कहती है कि प्रियतम के साथ सुखपूर्वक रहते हुए जो सुख भोग किया उसके बदले दुःखद समय में उनके साथ वन न जा सकी। उर्मिला वनगमन के प्रसंग में अपने पति लक्ष्मण के साथ न जाने पर वह पश्चाताप कहती है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 196
2. वहीं, — पृ. सं. 196

मेहनत एवं परिश्रम संसार के समस्त क्रिया–कलापों से श्रेष्ठ है। 'साकेत' महाकाव्य में कर्त्तव्यबोध तथा मेहनत द्वारा उर्मिला मातृभूमि के प्रति लोगों में स्वाभिमानी बनने की प्रेरणा प्रदान करती है। वह चाहती हैं कि देश में सुख–शांति का वातावरण रहे, हमारे देश की छवि कभी भी धुमिल न हो पावे तथा देश की शत्रुओं से रक्षा हो। उर्मिला की यह कामना 'सर्वे भवन्तु सुखिन' ही रही है–

भारतीय आर्य–नारी भावनात्मक रूप से मजबूत होने के साथ–साथ बुद्धि और विवेक से भी सशक्त होती है। वह किसी भी परिस्थिति से लोहा लेने को तैयार रहने वाली नारी है। इस संदर्भ में " उर्मिला एक सामान्य नारी नहीं, बल्कि वह एक क्षत्राणी है। युद्ध संदर्भों में उत्साह तथा शौर्यपरक संवेगों से यदि वह प्रेरित होती है तो भी अपने मर्यादापरक उद्देश्यों से भिन्न नहीं होती। " 1

अयोध्या की सेना द्वारा शत्रु रावण का वध करने पर वह स्वर्ण लंका के लूटने के विषय में देशाभिमान और आत्मगौरव से परिपूर्ण है। पापी रावण की लंका को लूटने का विरोध करते हुए उसके सोने को हाथ तक नहीं लगाने का भाव उर्मिला की निस्पृश्य तथा आचरण की सोद्देश्यता व्यक्त करती है। वह अयोध्यावासियों में विश्वास भाव व्यक्त करते हुए कह उठती है–

" गरज उठी वह–नहीं, नही पापी का सोना,
यहाँ न लाना,भले सिन्धु में वही डुबोना।
धीरो, धन को आज ध्यान में भी मत लाओ,
जाते हो तो मान–हेतु ही तुम सब जाओं। " 2

उर्मिला का मानना है कि हमारा भारतवर्ष किसी भी प्रकार से दूसरे देशों की तुलना में कमजोर नहीं हैं। हमारा देश तो समृद्धि से परिपूर्ण 'सोने की चिड़ियाँ' है। वह देश की समृद्धि का वर्णन करते हए कहती है –

---

1. पथ देख रही तरंगिनी,
त्रिपथा–सी वह संग–रंगिनी।
मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 249

2. वहीं, — पृ. सं. 316

" किस धन से हैं रिक्त कहो, सुनिकेत हमारे ?
उपवन फल–सम्पन्न अन्नमय खेत हमारे।
जय पयस्य–परिपूर्ण सुघोषित घोष हमारे,
अगणित आकर सदा स्वर्ण–मणि–कोष हमारे। " 1

इस प्रकार विरहिणी उर्मिला और लक्ष्मण के चौदह वर्षों के विशाल और संकटपूर्ण विरह का एक दिन अंत हो जाता है। लक्ष्मण, भगवान राम एवं सीता के साथ अयोध्या को लौट आए है। उर्मिला का यौवन पूर्णतः समाप्ति की ओर है, लेकिन उर्मिला को इसका मलाल नहीं । क्योंकि उसे पति के कर्तव्यबोध पर गर्व है। उसे दासी बनकर परिवार के साथ रहने में भी आत्मगौरव है। वह अपनी सखी से विनय से युक्त गर्वित वाणी में कहती है–

" जब थी तब थी आलि उर्मिला उनकी रानी ,
वह बरसों की बात आज हो गई पुरानी !
अब तो केवल रहूँ सदा स्वामी की दासी ,
मैं शासन की नहीं, आज सेवा की प्यासी। " 2

यह उर्मिला की सदाशय भावना का प्रतीक है कि वह दास्य–भाव में भी पत्नी–धर्म का निर्वाह करना जानती थी,किन्तु धीरे–धीरे बदलते परिपेश में स्त्री ने अपना अस्तित्व बोध खोज निकाला अब वह सहधर्मिणी और सहचरी बनकर कन्धे से कन्धा मिलाकर जीवन यज्ञ में आहुती को प्रस्तुत है।

अतः यह कहना ही संगत प्रतीत होता है कि उर्मिला ने अपनी चेतना से नारी चेतना का सविस्तार, चरित्रांकन करके एक सतुल्य कार्य किया है। उर्मिला के चरित्र में सतीत्व, मर्यादा, कर्त्तव्यपरायणता, समर्पण, निष्ठा,संयम, धर्म, सहिष्णुता, त्याग, तप, संतोष साहस आदि उदात्त मानवीय आदर्श विद्यमान है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 316
2. वहीं, — पृ. सं. 331

कैकेयी –

समस्त रामकाव्य में कैकेयी ही एक ऐसा नारी पात्र है जिसको काव्य में भर्त्सना और तिरस्कार का पात्र बनाकर मानवीय गरिमा के लिए एक कलंक के रूप में प्रस्तुत किया है। कैकेयी सम्पूर्ण भारत की सबसे उपेक्षिता दुर्बल नारी है। इस एक अबला को सहस्र–वर्षों से कवियों द्वारा ही नहीं, जनसाधारण द्वारा भी जितनी घृणा, लांछना, अवहेलना और प्रताड़ना मिलती चली आ रही है उतनी संसार के इतिहास में शायद किसी भी नारी को मिली होगी। कैकेयी के उपेक्षित जीवन के कारणों के संबंध में माना जाता है कि दूरदर्शिनी स्वाभिमाननी, सौन्दर्यवती कैकेयी सांसारिक लिप्सा के प्रति आकर्षित होकर घोर स्वार्थी होते हुए राम–वनवास का मूल कारण बनती है।

सर्वप्रथम 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने उसे अवधारित किया, परन्तु फिर भी वह कटु शब्दों का लक्ष्य बनती हुई पापिनी और कलंकित ही बनी रही। आधुनिक युग में सर्वप्रथम कवि गुप्त ने इस पतिता को उबार कर अपनी सच्ची वैष्णवता का परिचय दिया। कवि ने राम के वनगमन को प्रेरणा तथा मंथरा की कुटिलता को भी प्रासंगिक कारण ही माना। इस संबंध में डॉ. रश्मि शर्मा का मानना है कि " चरित्रों में सबसे अधिक सफलता गुप्तजी को कैकेयी की मूर्ति खड़ी करने में मिली है। " 1

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कैकेयी को लोक–व्यवहार परिवेश में मातृत्व और विमातृत्व के सम–विषम पक्षों से सम्पृक्त करते हुए " उन्हें छल–छद्म से मुक्त किया और उनमें नारी सहज–सुलभ वृत्तियों को समाविष्ट किया।" 2 उन्होंने कैकेयी को राजमहिषी, मानिनी, प्रिया, स्वामिनी–माता, विमाता आदि पक्षों को अभिनव दिशाएं और व्यापक–संभावनाएँ प्रदान की है। कवि गुप्त ने अपने काव्य में कैकेयी को माता के रूप में उदार–वात्सल्य की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। मंथरा के आविर्भाव से पूर्व उनका वात्सल्य भरत से अधिक राम को प्राप्त है। वे स्वयं भरत – राम को अभेद मानकर मंथरा से तार्किक शब्दों में कह उठती है–

---

1. डॉ. रशिम शर्मा : साकेत का विशिष्ट अध्ययन पृ. सं. 54
2. त्रिवेणी–तुल्य रानियाँ तीन, / बहाती सुख–प्रवाह नवीन,
   मोद का आज ओर न छोर / आम्र वन सा फूला सब ओर।
   मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 18

" कहा उसने–यह क्या उत्पात ?
वचन क्यों कहती है तू वाम ?
नहीं क्या मेरा, बेटा राम ? "
कहा रानी ने पाकर खेद –
भला दोनों में है क्या भेद ? " 1

'साकेत' महाकाव्य की कैकेयी एक सरल स्वभाव वाली नारी है। इसलिए वह मंथरा की स्वार्थपूर्ण बातों को स्वीकार कर लेती है। परिवार विघटन एवं भरत द्वारा अपनी माता को ज्ञानबोध कराने पर वह मंथरा के विष भरे कुटिल व्यवहार से प्रताड़ित होती है। इस प्रकार वह एक दासी द्वारा सिखाई गयी निर्बुद्धि कैकेयी नहीं हैं, बल्कि अपने मानसिक स्वगत–चिंतन से अपना मार्ग स्वयं निश्चित करती है। वह मंथरा को कोसते हुए कहती है–

" तब वह अपने से आप डरी,
किस कुसमय में मंथरा मरी।
भूपति–पद का विच्छेद हुआ,
यह सुनकर किसे न खेद हुआ ? " 2

संसार में माता का पुत्र के प्रति हमेशा स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण रहता है। लेकिन कैकेयी के मूल में राजनीतिक स्वार्थ का आग्रह उतना प्रबल नहीं है, जितना भरत के हित, मंगल और सुखद भविष्य का। माता के रूप में वह भरत से अधिक राम के प्रति समर्पित है तो, दूसरे राजमाता के रूप में भरत मूल्यवान एवं शासक के तौर पर राम उसके लिए नगण्य हो जाते है। परिवार के विघटन एवं राम वनगमन व दशरथ की मृत्यु का कारण भरत द्वारा पूछने पर वह निर्भीक होकर कह उठती है–

" तो, सुनो यह क्यों हुआ परिणाम–
प्रभु गये सुर–धाम, वन को राम।
माँग मैने ही लिया कुल–केतु,
राजसिंहासन तुम्हारे हेतु।" 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 19
2. वहीं, — पृ. सं. 108
3. वहीं, — पृ. सं. 120

कवि गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य में स्वार्थ–प्रेरित कैकेयी के स्वभाव की सहज संकीर्णता को अवश्य उभारा हैं। वह मानिनी, स्वभावगत हठ एवं दुराग्रह से युक्त नारी है। परन्तु दशरथ–मरण के उपरांत वह पश्चाताप और आत्मविश्लेषण की ओर अभिमुख हो उठती हैं। भरत द्वारा भला–बुरा कहने पर वह भरत से ग्लानि में डूब कह उठती है–

" राज्य कर, उठ वत्स, मेरे बाल,
मैं नरक भोगूँ भले चिरकाल।
दण्ड दे मैंने किया यदि पाप,
दे रही हूँ शक्ति वह मैं आप। " 1

नारी की स्वभावगत विशेषता यह है कि वह चाहे कितना भी मर्यादाविमुख कार्य करें, अंत में आत्मग्लानि एवं क्षोभ के साथ पश्चाताप करती है। माता कैकेयी भी इस भाव से पृथक नहीं है। वह राम को वन से लौटा लाने की योजना में सक्रिय रूप से भाग लेती है। स्वभाव की सरलता उसमें चरम सीमा पर है, इसलिए भरत द्वारा अवज्ञा तथा उपेक्षा मिलते ही, वह तुरंत पश्चाताप करती है। इस संबंध में डॉ. नगेन्द्र का मानना है कि " कैकेयी का प्रायश्चित भरत के कठोर वाणी से तीव्रतर होता हुआ चित्रकूट में जाकर पूर्ण हो जाता है। " 2 इस प्रकार कैकेयी 'साकेत' के अष्टम सर्ग में चित्रकूट–सभा में राम से आग्रह करती हुई कहती है–

" यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया।
दुर्बलता का यह चिह्न विशेष शपथ है,
पर, अबलाजन के लिए कौन–सा पथ है ?" 3

कवि गुप्त ने अपने काव्य में साहित्यिक एवं सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित नारी–पात्रों को सामाजिक स्वीकृति प्रदान की है। कैकेयी भी अपने हृदय तथा स्वभाव की परत–दर–परत कालिमा और कुलुषिता को प्रक्षालन हेतु सबके सम्मुख रखने में संकोच नहीं करती है। उसकी सरलता, स्पष्टता, आदर्शमयता, पुत्र–वात्सल्य की प्रेरणा उसके चरित्र में कुछ

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 120
2. डॉ. नगेन्द्र : साकेत का अध्ययन पृ. सं. 64
3. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 154

भी छद्म अथवा गोपनीय नहीं रहने देती। वह अपने कुकृत्य का पूर्ण दायित्व स्वयं लेते हुए कहती है–

" यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ!
क्या कर सकती थी, मरी मंथरा दासी,
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी। " 1

माता कैकेयी अपने वात्सल्य की दुहाई देते हुए अपने कलंक का प्रक्षालन भी कर लेती है। कवि गुप्त की कैकेयी विशुद्ध रूप से आत्मव्यक्तित्व के बल पर अपने आचरण की स्वाभाविक सहजता और सार्थकता व्यक्त करते हुए, सबकी सद्भावना तथा सहानुभूति प्राप्त करती है। इस विषय में डॉ.रश्मि शर्मा का मानना है कि "साकेत में कैकेयी अपने युगों–युगों के कठोर स्वरूप को छोड़कर द्रावक बन जाती है। जिसका प्रमुख कारण उसका संवेदनशील सरल–तरल मातृ–हृदय है।" 2 माता कैकेयी चित्रकूट की सभा में इसी वात्सल्य को धिक्कारते हुए कहती है –

" कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य–मात्र, क्या तेरा ?
पर आज अन्य–सा हुआ वत्स भी मेरा।
थूके मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे क्यों चूकें ? " 3

संसार में पुत्र चाहें कुपुत्र हो जाए, लेकिन माता कभी भी स्नेह और वात्सल्य के आवेश से अभिभूत होकर वह स्वार्थ–प्रेरित होकर भी कुमाता नहीं होती है। इस व्यापक भाव–व्यंजना के साथ कवि ने कैकेयी की मातृत्व–चेतना में विमातृत्व को नूतन परिवेश प्रदान किया है। कैकेयी राम के प्रति भी वात्सल्य–भाव से समर्पित है। विमाता होकर भी वह कौशल्या से अधिक वात्सल्यवती है। वह स्वयं को धिक्कारते हुए राम पर वात्सल्य प्रकट करते हुए कहती है –

" छल किया भाग्य ने मुझे अयश देने का,
बल दिया उसीने भूल मान लेने का।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 155
2. डॉ. रश्मि शर्मा : साकेत का विशिष्ट अध्ययन पृ. सं. 118
3. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 155

अब कटे सभी वे पाश नाश के प्रेरे ,
मैं वही कैकेयी, वही राम तुम मेरे। " 1

कवि गुप्त ने माता कैकेयी को मातृ–सुलभ, आत्म गौरव और वात्सल्यपरक कोमल वृत्तियों के साथ क्षत्राणी–सुलभ वीरांगना रूप में वर्णित किया है। 'साकेत' के द्वादश सर्ग में राम–रावण युद्ध का समाचार सुनकर कैकेयी अधीर हो उठती है। वह राम की सहायता हेतु अपने पुत्र भरत के साथ स्वयं जाना चाहती है। अयोध्यावासियों को संबोधित करते हुए वह कहती है–

" भरत जायेगा प्रथम और यह मैं जाऊँगी,
ऐसा अवसर भला दूसरा कब पाऊँगी ?
मूर्तिमती आपत्ति यहाँ से मुँह मोड़ेगी,
शत्रु–देश–सा ठौर मिला, वह क्यों छोड़ेगी ? " 2

कैकेयी अपने पूर्व–चरित्र एवं क्षत्राणी रूप का स्मरण करती है। वह उस प्रसंग की ओर भी संकेत करती है। जब वह असुर संग्राम में राजा दशरथ के साथ युद्ध करने गयी थी। वे अयोध्यावासियों में नव ऊर्जा का संचार करती हुई कहती है कि शत्रु पर विजय पाने हेतु वह देश सेवा के लिए आज भी तैयार है–

" मैं निज पति के संग गई थी असुर–समर में,
जाऊँगी अब पुत्र–संग भी अरि–संगर में।" 3

इस प्रकार कवि मैथिलीशरण गुप्त ने कैकेयी के प्रति स्वाभाविक जीवन–व्यवहार की जैसी संवेदना–मूलक अभिव्यक्ति और हृदयगत उद्गारों का विशद् रूप में वर्णन कर, उसके प्रति चली आ रही भारी धृणा और उपेक्षा को दूर करने का प्रयास किया है। वह माता कैकेयी के संदर्भ में आज अनुपम है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 157
2. वहीं, पृ. सं. 305
3. वहीं, पृ. सं. 306

सीता –

नर–नारी का चित्रण काव्य में अनादिकाल से चला आ रहा है। संसार के कार्यक्षेत्र में सफलता प्राप्त करने तथा सामाजिक जीवन व्यतीत करने के लिए स्त्री–पुरुष एक दूसरे के अनिवार्य अंग है। रामभक्ति काव्य में ऐसे ही अनिवार्य अंग भगवान श्रीराम एवं माता सीता है। रामकथा में सीता ब्रह्मा और विष्णु की शक्ति तथा लक्ष्मी के अवतार के रूप में अवतरित की गई है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार सीता भूमिजा है। "यज्ञ भूमि तैयार करने के लिए हल चलाते हुए एक छोटी सी कन्या राजा जनक को मिली।" 1

राम भक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में सीता को जगत्–मातृत्व और राम–शक्ति की दिव्यता से युक्त किया गया है। लेकिन भारतीय आर्य संस्कृति के पुरोधा, नारी मुक्ति के सारथी, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने सीता के चरित्र एवं व्यक्तित्व की परिकल्पना एक सहज, सुकुमारी राजकन्या के रूप में की है। जो राजप्रासादों के पारम्परिक औपचारिक और प्रतिबद्ध सुख–भोगों को पीछे छोड़कर प्राकृतिक सुषमा और नैसर्गिकता के प्रति मुग्ध रहती है। इस संबंध में डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा का मानना है कि " सीता के मानवीय–मूल्यों मे ंनारी के स्वतंत्र और स्वावलम्बी जीवन की झलक मिलती है। " 2

कवि गुप्त के 'साकेत' महाकाव्य की सीता अपने गृहस्थ एवं पारिवारिक कर्तव्यों के प्रति अधिक सजग है। उनके व्यक्तित्व का चरम उत्कर्ष राम–वनगमन पर ही होता है। सीता अपने पति राम के साथ रहने में ही अपना धर्म समझती है। अनेक सेवक–सेवकाओं से घिरे रहने पर भी वह अपने प्रियतम की सेवा स्वयं करके सुख का अनुभव चाहती है। इस प्रकार सीता पति सेवा को ही अपना आत्मबल समझती है। वह अपने पति राम द्वारा जंगल में रहने का भय दिखाऐ जाने पर निर्भीक होकर कहती है –

" वन में क्या भय ही भय है ?
मुझको तो जय ही जय है ?
यदि अपना आत्मिक बल है ,
तो जंगल में भी मंगल है। " 3

---

1. योगमायाऽपि सीतेति जात : जनक नन्दिनी भूमोः।
   महर्षि वाल्मीकि : रामायण — पृ. सं. 2/249
2. डॉ.महेन्द कुमार मिश्रा : मध्यकालीन भारतीय साहित्य कवि — पृ. सं. 158
3. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 67

आधुनिक युग में नवजागरण एवं नारी चेतना के कारण नारी स्वातंत्र्य और नारी महत्ता की विचारधारा का प्रसार हुआ है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधें से कंधा मिलाकर कार्य करने के लिए नारी को प्रोत्साहन मिला है। नारी का स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा स्वयं भारतीय नारियों के आदर्शों ने उनको प्रदान की है। 'साकेत' महाकाव्य की नारी सीता में स्वतंत्र और स्वावलम्बी जीवन की झलक मिलती है। राजकुमारी की कोमलता उनके स्वावलम्बी जीवन में कहीं बॉधक नही बनती है। वह सौन्दर्य–शालिनी होने पर भी वनवास के समय स्वावलम्बी जीवन के संबंध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट करती है–

" औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रमवारि बिन्दु फल स्वास्थ्य शुचि फलती हूँ ,
अपने अंचल से व्यंजन आप झलती हूँ। " 1

राजपुत्री और राजवधू सीता जब वन–पर्वत के खुले सौन्दर्य और वहाँ के भील–किरात आदिवासियों के जीवन एवं स्वभाव को देखती है तो विचित्र जिज्ञासा उनमें भर आती है। वह उन भील–बालाओं को अपने निकट आने तथा उनमें नव्यता और भव्यता का संदेश देती है। सीता कर्मशीलता का परिचय देते हुए उनके साथ अपनापन इस प्रकार प्रकट करती है–

" ओ भोली कोल–किरात–भिल्ल–बालाओं,
मैं आप तुम्हारे यहाँ आ गई, आओ।
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ,
दो अहो! नव्यता और भव्यता पाओ। " 2

कविवर गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य में सीता का ग्राम्य जीवन तथा प्रकृति के नैसर्गिक अवदान के प्रति सदैव कृतज्ञता का भाव रहा है। वह प्रकृति में मानव–जीवन के लिए अनेक प्रेरणाओं का

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 138
2. वहीं, पृ. सं. 140

साक्षात् करती हुई , जन–सामान्य की उपकारक–शक्ति बनी है। वनावास में वे भील–कन्याओं को अर्द्धनग्न हालात में देखकर द्रवित हो उठती है। सीता स्वयं सूत कातने एवं वस्त्र बुनने में उनकी उत्साह–प्रेरक बनती है। सीता उन भील–बालाओं की दयनीय स्थिति पर चिंता प्रकट करते हुए कहती है–

" सब ओर लाभ ही लाभ बोध–विनिमय में,
उत्साह मुझे है विविध वृत्त–संचय में।
तुम अर्द्ध नग्न क्यों अशेष समय में,
आओ, हम कातें–बुनें गान की लय में। " 1

वर्तमान विश्व में पर्यावरण संरक्षण मानव–जाति की रक्षार्थ अति आवश्यक है। कवि गुप्त ने सीता में प्रकृति–प्रेम, पशु–पक्षियों एवं पेड़–पौधों के प्रति पोषण–भावना को अवधारित किया है। सीता पेड़–पौधों के संरक्षण में ही मानव का हित समझती है। वनवासियों को अपने साथ लेकर न केवल पौधों को सींचने अपितु रौंपने उन्हें संभारने का संदेश देते हुए कहती है–

" अच्छा, ये पौधे कहो फलेंगे कब तौं,
हम और कहीं तो नहीं चलेंगे तब लौं ?
पौधे ? सींचो ही नहीं, उन्हें गोड़ों भी ,
डालों को चाहो जिधर, उधर मोड़ो भी। " 2

अयोध्या के राजमहल में रहने वाली सीता एक आदर्श कुलवधू होने पर भी, भगवान श्रीराम के साथ वन की पर्णकुटी में वे एक आदर्श एवं क्षत्राणी पत्नी बन जाती है।वन–जीवन की कठिनाइयों को वे सहर्ष झेलती हुई, मन को साहसी एवं दिल को कठोर कर लेती है। राम के द्वारा मृग–मारिच का पीछा करने तथा राम की कातर ध्वनि सुनने पर वह अपने पति की रक्षार्थ सिंहनी बन जाती है और लक्ष्मण के समक्ष दहाड़तें हुए कहती है–

" क्या क्षत्रिया नही मैं बोलो,
पर तुम कैसे क्षत्रिय हो ?

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 141
2. वहीं, — पृ. सं. 143

इतने निष्क्रिय होकर भी जो
बनते यों स्वजन प्रिय हो।" 1

भारतीय आर्य संस्कृति में नारी का पतिव्रता भाव उसे पवित्रता की ऊँचाइयों पर ले जाता है। रावण द्वारा सीता अपहृत करने पर भी, वह रावण के प्रलोभनों को तुच्छ समझती है। सीता राम के असह्य वियोग में व्याकुल होकर भी रावण को अपने सतीत्व, अद्भुत साहस एवं बल से प्रभावित करती है। जब लंका में रावण सीता को लंका की रानी बनाने की इच्छा अपने शारीरिक बल के द्वारा प्रकट करता है, तब सीता उन्हें फटकारते हुए कहती है–

" मैं वह सीता हूँ , सुन रावण,
जिसका खुला स्वयंवर था।
वर लाया क्यों मुझे न पामर
यदि यथार्थ ही तू नर था ? " 2

सीता दंभी रावण के लिए स्वंय को ज्वाला बताती है। वह रावण को दुत्कारती हुई कहती है, कि नर द्वारा जब–जब नारी का अपहरण किया गया, तब–तब वह नारी के रूप में अपने विनाश की ज्वाला ही घर लाया है–

" वर न सका कापुरुष, जिसे तू ,
उसे व्यर्थ ही हर लाया।
अरे अभागे इस ज्वाला को,
क्यों तू अपने घर लाया ! " 3

इस प्रकार कवि गुप्त ने सीता में आधुनिक–बोध को विशेष रूप से स्थान दिया है। इस संबंध में डॉ. माधुरी खोंसला का विचार इस प्रकार है " कवि ने सीता के सतीत्व और आर्य–नारी की मर्यादा को व्यापक चेतना प्रदान की है। " 4 अतः स्पष्टतः कहा जा सकता है कि कवि गुप्त की सीता गांधीयुगीन समता, अहिंसा, स्वावलम्बन, नवागत का स्वागत युगीन चेतना एवं आदर्श नारी की प्रतीक है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 156
2. वहीं, पृ. सं. 286
3. वहीं, पृ. सं. 286
4. डॉ. माधुरी खोंसला : मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में पात्रों की परिकल्पना पृ. सं. 132

'साकेत' के गौण स्त्री–पात्रों में नारी चेतना–

कौशल्या–

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने अपने रामकाव्य 'साकेत' महाकाव्य में कुशल–मातृत्व, कुशल वात्सल्य एवं कुशल उदारता की प्रतिमूर्ति कौशल्या को कुशल–चितेरे कवि ने अपने काव्य में अंकित किया हैं। 'साकेत' महाकाव्य के प्रारंभ में वह सीता की सास के रूप में प्रकट होती है। जो स्नेह एवं आत्मीयता के साथ सीता वधू का नहीं पुत्रीवत् व्यवहार रखती है। जो संभवतः एक पुत्री को अपनी माता से भी सहज, सुलभ नहीं होता है। 'रामचरितमानस, में तुलसीदास ने भी सीता–कौशल्या के स्नेह का वर्णन करते हुए माना है कि " कौशल्या अपनी बहुओं को साथ लेकर इस प्रकार सोती थी मानो सर्पों ने अपने सिर की मणियों को हृदय में छिपा लिया हो। " 1

'वात्सल्य' हृदय का वह मनोभाव, है जिस हेतु गाय भी सिंहनी का रूप धारण कर लेती है। कवि गुप्त ने माता कौशल्या में जिस विराट मातृत्व एवं वात्सल्य का साक्षात् किया हैं। वह निश्चय ही मात्–स्नेह की चरम सीमाओं को स्पर्श करता है। 'राम–वनगमन का प्रसंग सुनकर उनका मातृत्व भाव विह्वल हो उठता हैं। कौशल्या उपस्थित परिजनों से दीन–कातर स्वर में कह उठती है–

" मुझे राज्य की चाह नहीं,
उस पर कुछ भी डाह नहीं।
मेरा राम न वन जावे,
यहीं कहीं रहने पावे। " 2

कवि गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य में कौशल्या की अधीरता को व्यक्त अवश्य किया है। लेकिन उनका पुत्र राम के प्रति वात्सल्य का भाव जीवन–यथार्थ से प्रेरित होकर श्रेष्ठ आदर्श लिए हुए हैं। अपने एकमात्र पुत्र के वनगमन पर भी उनकी कर्तव्य–भावना नष्ट नहीं होती

---

1. संदुर बधुन्ह सासु लै सोई।
   फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोई ।।
   तुलसीदास : रामचरितमानस — पृ. सं. 282
2. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 55

है। धर्म की रक्षा के विचार से वह राम को वन में जाने की आज्ञा देती है, और ममतापूर्ण हृदय से वन में पुत्र की मंगलकामना करती हुई अपने पति के प्रण एवं स्वयं के लक्ष्य को सुरक्षित रखती हुई राम से कहती है–

" जो गौरव लेकर जाओ,
लेकर वही लौट आओ।
पूज्य–पिता–प्रण रक्षित हो,
माँ का लक्ष्य सुरक्षित हो। " 1

माता कौशल्या का हृदय विशाल एवं विराट हैं। वह प्रत्येक स्तर पर पुरुष को प्रेरणा देने वाली हैं। रामवनगमन प्रसंग से सन्तृप्त और विपन्न दशरथ को वे सत्य एवं धर्म का उचित मार्ग–निर्देश करने के साथ ही गौरवपूर्वक शोक सहने की प्रेरणा देती है। कौशल्या के मन में कैकेयी एवं भरत के प्रति किसी भी प्रकार का द्वेष, प्रतिक्रिया एवं दुर्भावना लेशमात्र भी नहीं है। 'साकेत' के द्वादश सर्ग में राम–रावण युद्ध का प्रसंग सुनकर राम की सहायतार्थ युद्ध में जाने को तत्पर भरत एवं शत्रुघ्न को रोकते हुए माता कौशल्या भाव विह्वल स्वर में कह उठती है–

" हाय ! गये सो गये, रह गये सो रह जावें,
जाने दूँगी तुम्हें न, वे आवें जब आवें।
तुष्ट तुम्हीं में उन्हें देखकर रही, रहूँगी,
तुम्हें छोड़कर निराधार मैं कहाँ बहूँगी ? " 2

इस प्रकार कवि मैथिलीशरण गुप्त ने माता कौशल्या के उदार मातृत्व में विशाल हृदय की पवित्र अनुभूतियों को अवधारित किया है। उनका वात्सल्य, मातृत्व व पुत्र–स्नेह निस्पृह्य और स्निग्ध है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 60
2. वहीं, पृ. सं. 305

सुमित्रा –

आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी चेतना के पुरोधा, नारी–सशक्तीकरण को दृढ़ करने वाले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'साकेत' महाकाव्य में लक्ष्मण–माता सुमित्रा की एक अत्यन्त तेजस्वी नारी के रूप में सृष्टि की है। वीर–प्रसू होने के साथ–साथ सुमित्रा स्वयं ऐसी वीर क्षत्राणी है जो किसी प्रकार के अन्याय एवं अपराध को सहने में विश्वास नहीं रखती और त्याग के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

उनके चरित्र में त्याग भावना स्वाभिमान से युक्त आत्मगौरव प्रधान हैं। राक्षसों के वध के लिए विश्वामित्र के साथ राम–लक्ष्ण को भेजते समय उनके मन में भय या कायरता का कोई स्थान नहीं है। "सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मण को आगामी जीवन की शिक्षा प्रदान कर मुनि विश्वामित्र के साथ सहर्ष विदा कर देती है। " 1

कवि गुप्त ने सुमित्रा को एक साहसी नारी के रूप में स्थापित किया है। वह स्वयं अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध खड़ी होने के साथ–साथ भावी पीढ़ी के प्रतीक अपने पुत्र लक्ष्मण को भी इस हेतु तैयार करती है। सुमित्रा राज–धर्म और क्षात्र–धर्म को भली भाँति समझती है। धर्म और कर्त्तव्य की रक्षा हेतु वह कठोरता का वरण करने में कोई हिंचक नहीं करती हैं। वह लक्ष्मण को अन्याय के विरुद्ध खड़े होने को प्रेरित करती हुई कहती है कि –

" वीरों की जननी हम हैं,
भिक्षा–मृत्यु हमें सम हैं।
राघव! शान्त रहोगे तुम,
क्या अन्याय सहोगे तुम ?
मैं न सहूँगी, लक्ष्मण, तू ?
नीरव क्यों है इस क्षण तू ? " 2

सुमित्रा एक धर्मशालिनी नारी के रूप में 'साकेत' महाकाव्य में अवतरित हुई हैं। उनका धर्म एवं विश्वास कौशल्या को भी हतप्रभ कर देता है और आशा का आवरण ओढ़कर प्रकट होता है।

---

1. अति आदर दोउ तनय बोलाए ।
   हृदयँ लाइ बहु भॉति सिखाए ।।
   तुलसीदास : रामचरितमानस — पृ. सं. 169
2. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 56

वह राम, वनगमन पर माता कौशल्या से चौदह वर्ष बाद मिलन अवधि आने की निश्चितता व्यक्त करते हुए कहती है–

" कहा सुमित्रा ने तब यों –
जीजी ! विकल न हो अब यों!
आशा हमें जिलावेगी,
अवधि अवश्य मिलावेगी। " 1

भारतीय आर्य संस्कृति में त्याग एवं समर्पण वे मानव–मूल्य है जो व्यक्तित्व को चरमोत्कर्ष प्रदान करते हैं। माता सुमित्रा राम के वनगमन पर वन में परिस्थितियों की प्रतिकूलता को समझते हुए, धर्म और वचन–पालन को धारण करते हुए, अपने पुत्र लक्ष्मण को राम के प्रति समर्पित करके उन्हें 'बड़गामी' घोषित करती हैं। सुमित्रा राम–लक्ष्मण से एक साथ कहती है–

" मैं भी कहती हूँ – जाओ
लक्ष्मण को भी अपनाओ।
धैर्य सहित सब कुछ सहना,
दोनों सिंह–सदृश रहना।
लक्ष्मण! तू बड़भागी है,
जो अग्रज–अनुरागी है। " 2

'साकेत' महाकाव्य में सुमित्रा एक ऐसी बलिदानी नारी है जो अपने पुत्र लक्ष्मण को भगवान श्रीराम के साथ वन में तथा दूसरे पुत्र शत्रुघ्न को भरत के आदर्शों के लिए समर्पित करके, अपने वात्सल्य का बलिदान कर देती है। राम–रावण युद्ध के समय शत्रुघ्न को अपने अग्रज राम के मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करती है। उनका पुत्र लक्ष्मण मरणासन्न अवस्था में हैं, परन्तु उनके हृदय में रंचमात्र भी दुर्बलता नहीं आती हैं। वह शत्रुघ्न को अपने अग्रज की गति और आदर्श अपनाने का मूलमंत्र प्रदान करती हुई कहती है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 61
2. वहीं, पृ. सं. 61

" जा भैया, आदर्श गये तेरे जिस पथ से,
कर अपना कर्त्तव्य पूर्ण तू इति तक अथ से।
जिस विधि ने सविशेष दिया था मुझको जैसा,
लौटती हूँ आज उसे वैसा का वैसा। " 1

इस प्रकार सुमित्रा वह माता है जो अपने स्निग्ध तथा ममता–सिक्त आंचल की शीतल छाया में अपने पुत्रों की रक्षा करने के साथ ही कर्त्तव्य–धर्म और प्रण–पालन में वात्सल्य को बॉधक नहीं बनने देती है। उनकी नारी चेतना एवं भावना स्वार्थरहित, उदार, तटस्थ दूरदर्शी और आदर्शोंन्मुख है।

माण्डवी –

बीसवीं सदी के आरम्भिक चरण में नारी चेतना की जो लहर हिन्दी साहित्य के सरगम को झंकृत कर गई, उसका सर्वाधिक सशक्त और चैत्यन्य स्वर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में कविवर गुप्त के काव्य में उद्‌घाटित हुआ है। कवि दिनकर के शब्दों में " गुप्तजी आधुनिक पुनरुत्थान के सर्वप्रथम हिन्दी कवि है। " 2 कवि गुप्त की इस नारी विषयक सक्रिय चेतना में भरत–पत्नी माण्डवी का योगदान भी असाधारण है। माण्डवी एक ऐसी नारी है जिस पर कवि गुप्त की संवेदना–दृष्टि के मरहम का लेप होने के साथ ही भरत के कर्तव्य बोध की धारणा है। नन्दिग्राम में बैठे भरत के विषय में माण्डवी का मानना है कि "प्रियतम भरत को अपने अग्रज राम से मिलने एवं साथ रहने से कोई रोक नहीं सकता। " 3

'साकेत' महाकाव्य की माण्डवी एक ऐसी तपःपूता नारी है। जिसने अपने समक्ष प्रियतम के विराजमान रहते हुए भी सम्मुख विरह के साथ अभूतपूर्व त्याग और उत्सर्गमय जीवनयापन किया है। माण्डवी एक गृहस्थ पत्नी होने के साथ ही पति के ही समान तपस्तेज और वियोग से दीप्त है। वह भरत के प्रति पूर्ण समर्पित होकर उनकी किसी भी जीवन–योजना में बॉधक नहीं बनती है। माण्डवी का मानना है कि नर के साथ रहने में ही नारी

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 305
2. रामधारी सिंह दिनकर : उर्वशी — पृ. सं. 106
3 रोक सकेगा कौन भरत को ,
अपने प्रभू को पाने से।
मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 255

का सुख है। लेकिन भ्रातृ–भावना का पायदान इस भावना में कई गुना ऊँचा है। इस विषय में माण्डवी की धारणा इस प्रकार है–

" मेरे नाथ, जहाँ तुम होते
दासी वहीं सुखी होती,
किन्तु विश्व की भ्रातृ–भावना
यहाँ निराश्रित ही होती। " 1

हमारी संस्कृति में पति–पत्नि का आपसी सहयोग समर्पण एवं त्याग ही 'दाम्पत्य' जीवन का प्रथम सोपान है। माण्डवी अपने पति भरत के प्रति पूर्ण समर्पित होकर उनकी इच्छा या क्रिया में बांधक नहीं होती है। माण्डवी का मानना है कि एक नारी को पतिगृह से बढ़कर सुख की प्राप्ति संसार में कहीं नहीं हो सकती। वह भरत से सुखद् दाम्पत्य एवं सद्–गृहस्थ जीवन के सफल संचालन का मूलमंत्र इसी में मानती है–

" नाथ,देखती हूँ इस घर में,
मैं तो इसमें ही संतोष,
गुण अर्पण करके औरों को
लेना अपने सिर सब दोष। " 2

संसार में नारी को ही नर की 'खान' माना गया है। 'साकेत' महाकाव्य में माण्डवी इस मत के समर्थन में अपने विचार स्पष्ट रखती है। भरत परिवार विभाजन एवं राम–वनगमन का कारण अपनी माता को मानता है। भरत द्वारा संसार में माता के अस्तित्व को अस्वीकार करने पर, माण्डवी अपनी बेवाक् वाणी में भरत से कहती है –

" आर्ये, तब क्या कहते हो तुम, यहाँ न होतीं माताएँ ?
होता कुछ वहाँ कहाँ से, जहाँ न होतीं माताएँ ? " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 258
2. वहीं, — पृ. सं. 266
3 वहीं, — पृ. सं. 265

मानव जीवन में नारी हमेशा पुरुष की प्रेरक–शक्ति रही है। कवि गुप्त ने भरत के जीवन में उनकी पत्नी माण्डवी की कर्तव्य–प्रेरणा की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की है। अयोध्या में वह सहचरी के रूप में पति के हृदय की विषम–वेदना से परिचित है। उस वेदना में भी वह स्वयं को कमजोर नही अपना भाग्य मानती है। राम–रावण युद्ध का समाचार सुनकर वह क्षत्राणी का रूप धारण कर लेती है, और अपने पति भरत से युद्ध में साथ चलने की क्षत्राणी–हुंकार भरती हुई कहती है–

"पुरुष–वेष में साथ चलूँगी मैं भी प्यारे,
राम–जानकी संग गये, हम क्यों हों न्यारे ?
प्यारी, घर ही रहो उर्मिला, रानी–सी तुम,
क्रान्ति–अनन्तर मिलो शान्ति मनमानी–सी तुम।" 1

समाज में नारी का स्थान इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह स्वयं कष्टों को सहनकर, दूसरों को सुख पहुँचाने वाली हैं। लेकिन यदि किसी ने नारी की अस्मिता पर प्रहार करने का प्रयास किया तो वह नीच निश्चय ही अधोगति को प्राप्त होता है। "माण्डवी की दृष्टि में कोई कितना भी बलशाली हो, यदि उस व्यक्ति के अन्तर्मन में पाप है तो ऐसा व्यक्ति कभी भी अपने जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है।" 2

इस प्रकार 'साकेत' महाकाव्य में माण्डवी नारी–चरित्र के आदर्श की सीमा है। जो विवेक, धर्म, साहस एवं सद्बुद्धि से युक्त है। माण्डवी का उपयुक्त रूप राम–काव्य में सर्वथा मौलिक और अभूतपूर्व है।

श्रुतिकीर्ति –

'साकेत' महाकाव्य में श्रुतिकीति एक ऐसी नारी पात्र है। जो अन्य नारी पात्रों की तुलना में क्षत्राणी और मर्दानी नारी–भावों से युक्त हैं। उनका यह भाव 'साकेत' महाकाव्य में अपने पति शत्रुघ्न को युद्ध हेतु लंका जाने के लिए विदा करते समय प्रकट होता है। वह अपने पति को राम–रावण युद्ध का समाचार सुनकर शीघ्र ही विदा करने का प्रयत्न करती हैं

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 309
2. नाथ, बली हो कोई कितना , यदि उसके भीतर है पाप।
   तो गजभुक्तकपित्थ –तुल्य वह, निष्फल होगा अपने आप ।।
   मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 272

और अपनी बहिन उर्मिला से कह उठती है –

" बोली, श्रुतिकीर्ति ! तनिक रोली तो लाना,
टीका कर दूँ, बहन इन्हें है झटपट जाना।
जाओ स्वामी, यहीं माँगती मेरी मति है–
जो जीजी की, उचित वहीं मेरी भी गति है। " 1

भारतीय नारी हमेशा 'सबका हित, सबका साथ' के विचार को धारण करती है। 'साकेत' महाकाव्य की श्रुतिकीर्ति भी इसी भाव से परिपूर्ण भारतीय नारी है। उसे सीता की चिंता से बढ़कर उन राक्षस–नारियों की चिंता है, जो युद्ध में विधवा एवं अनाथ होने वाली हैं। वह उर्मिला से इस संबंध में अपनी धारणा इस प्रकार प्रकट करती है –

" जीजी की सोच नहीं है मुझको वैसी,
राक्षस–कुल की उन अनाथ बधुओं का जैसी। " 2

भारतीय नारी की राष्ट्रीय –भावना आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी प्राचीनकाल में थी। वे देश के रक्षार्थ अपने आपको समर्पित करके अपने पति एवं पुत्र को भी देश–रक्षार्थ सहर्ष विदा करने वाली है। श्रुतिकीर्ति भी अपने पति से देश की रक्षार्थ जाने तथा भारत देश की आन–वान–शान को बढ़ाने का संदेश देते हुए वीरतापूर्वक कहती है –

" जाओं, अपने राम–राज्य की आन बढ़ाओं,
वीर–वंश की बान, देश का मान बढ़ाओं।
अम्ब, तुम्हारा पुत्र पैर पीछे न धरेगा,
प्रिय तुम्हारा पति न मृत्यु से कहीं डरेगा। " 3

इस प्रकार श्रुतिकीर्ति ' साकेत ' महाकाव्य की वह नारी है जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में एक सद्–गृहिणी होने के साथ ही वीर–नारी का भाव लिए है। वह क्षत्राणी नारी के आदर्श से युक्त होने पर भी सहधर्मचारिणी के आदर्श से अनुप्राणित है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 306
2. वहीं, — पृ. सं. 306
3. वहीं, — पृ. सं. 310

'साकेत' के अन्य स्त्री–पात्रों में नारी चेतना–

मंथरा –

सम्पूर्ण राम–कथा साहित्य में मंथरा के कुटिल एवं दुष्टतापूर्ण रूप का ही चित्रण किया गया है। कवि गुप्त ने अपने 'साकेत' महाकाव्य में मंथरा के चरित्र के जिस कुटिल और रूढ़पक्ष का चित्रण किया है, वह अन्य राम–काव्यों में वर्णित मंथरा की तुलना में सहज और मार्मिक है। वह स्वभाव से कुटिल और विग्रहात्मक–वृत्ति वाली नारी हैं। लेकिन राजसेविका के रूप में वह भविष्य के विषय में सोचने वाली है। मंथरा का मानना है कि राम के राज्याभिषेक के समय भरत का उपस्थित न होना राजा दशरथ का पुत्रों के बीच विभेद को स्वाभाविक रूप से बतलाता है। वह अपनी बात को तर्क के साथ कैकेयी से प्रस्तुत करती हुई कहती है–

" सोच है मुझको निस्संदेह,
भरत जो है मामा के गेह।
सफल करके निज निर्मल–दृष्टि,
देख वह सका न यह सुख–सृष्टि। " 1

मंथरा की बुद्धि को समस्त रामकाव्य में स्वार्थी के रूप में बतलाया गया है। लेकिन कवि गुप्त ने अपने 'साकेत' महाकाव्य में इसका प्रक्षालन उसके तर्क एवं चतुर्दिक व्याप्त दृष्टिकोण से किया है। मंथरा कैकेयी के सम्मुख संदिग्ध भविष्य का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती हुई कहती है कि " राम व भरत के भेद का अंतर सुबह के सूर्य उदय होने पर ही होगा, जब एक रानी राजमाता की पद्वी पावेगी तथा दूसरी ये सब देखेंगी। " 2

मंथरा की तर्क–बुद्धि इतनी मजबूत है कि वह अपनी स्वामिनी कैकेयी के दुर्बल–पक्ष पर आघात करने की पूर्ण क्षमता रखती है। वह उसकी सहज बुद्धि में शंका और ह्रदय में स्वार्थ का बीजवपन करने में पूर्णत सफल होती है, मंथरा एक पर्यवेक्षक की भॉति पुत्र वात्सल्य को चुनौती देती हुई कैकेयी से कहती है –

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 19
2. सबेरे दिखला देगा अर्क / राजमात होगी जब एक ,
   दूसरी देखेगी अभिषेक / कहा कैकेयी से रोष।
   वहीं, पृ. सं. 19

" भरत को करके घर से त्याज्य,
राम को देते है नृप राज्य !
भरत–से सुत पर भी संदेह
बुलाया तक न उन्हें जो गेह ! " 1

इस प्रकार कवि गुप्त की यह कुटिल मंथरा अत्यंत बुद्धिमति होने के साथ भविष्य द्रष्टा भी हैं। वह तुलसी की मंथरा की भाँति उपेक्षा–भाव धारण करती है, किंतु साथ ही फूट का ऐसा सफल बीज बो देती है जिसका निवारण कैकेयी का रामविषयक स्नेह भी नहीं कर सका।

ताड़का –

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने राम–काव्य 'साकेत' महाकाव्य में ताड़का को परम्परागत रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस राक्षसी के माध्यम से अनार्य–संस्कृति की आततायी–प्रवृत्तियों को उद्घाटित किया है। अन्य रामकाव्यों में ताड़का का वर्णन राम व लक्ष्मण के द्वारा गुरु वशिष्ठ के आग्रह पर वध करने का वर्णन हैं। लेकिन 'साकेत' महाकाव्य में मनुष्य के रक्त की भीषण तृष्णा से व्याकुल यह राक्षसी नारी उर्मिला की पूर्ण स्मृतियों में उद्धृत है। उर्मिला राम–लक्ष्मण व सीता के वन में ताड़का की उपस्थिति से मन में अनर्थ की आशंका व्यक्त करती है। लेकिन अगले ही पल लक्ष्मण उनकी स्मृतियों में इस भय का निवारण करते है –

" भाभी भय का उपचार चाप यह मेरा,
दुगुना गुणमय आकृष्ट आप यह मेरा। " 2

कवि गुप्त ने ताड़का का राम द्वारा किए गए वध को अपनी आत्मरक्षा की तुलना में भारतीय आर्य–संस्कृति की रक्षा तथा स्वदेश–रक्षा–कर्त्तव्य के अनुसार महत्वपूर्ण माना है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 20
2. वहीं, पृ. सं. 20

शूर्पणखा –

भारतीय आर्य संस्कृति मानव–मूल्यों के साथ सद्‌गुण एवं सद्‌वृत्तियों पर आधारित है। हिन्दी साहित्य के रामकथा–काव्य में समस्त नारी पात्र आर्य संस्कृति के अनुकूल है। लेकिन शूर्पणखा अनार्य–संस्कृति एवं राक्षस–प्रवृत्ति की द्योतक नारी पात्र है। कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य के 'पंचवटी' प्रसंग में शूर्पणखा की व्यापक परिकल्पना की है। रात्रि के अंधकार में वीर–संयमी लक्ष्मण के समक्ष प्रस्तुत होना अपने आप में निशाचरी होने का प्रमाण है। लक्ष्मण से उनका वार्तालाप सामान्य नारी से परे संदेह ही प्रदान करता है। वह लक्ष्मण से वार्तालाप कर संदेह को भी विश्वास में इस प्रकार बदल देती है–

" देने ही आई है तुमको,
निज सर्वस्व बिना संकोच।
देने में कार्पण्य तुम्हें हो
तो लेने में है क्या सोच ? " 1

वर्तमान समय में नारी स्वतंत्रता एवं समानता का नारा चारों ओर बुलंद हो रहा है। लेकिन इस स्वच्छंदता की एक मर्यादा और सीमा है। अगर यह स्वच्छंदता मर्यादानुसार है तो वह सद्‌नारी की पहचान बन जाती है। इसके विपरीत वह आचारण राक्षसी–संस्कृति की, पहचान बन जाती है जिसका संबंध साकेत में शूर्पणखा की कामातुर स्वच्छंदता से जुड़ता है। शूर्पणखा अपनी इस स्वच्छंदता को इस प्रकार प्रकट करती है –

" मैं अपने ऊपर अपना ही,
रखती हूँ अधिकार सदा।
जहाँ चाहती हूँ करती हूँ
मैं स्वच्छंद विहार सदा। " 2

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 154
2. मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी पृ. सं. 47

इस प्रकार शूर्पणखा का लक्ष्मण और राम के प्रति आकर्षण वासना–प्रेरित है। उसके प्रेम में मर्यादा की रंचमात्र भी गंध नहीं है। राम, लक्ष्मण और सीता के साथ संवादों में शूर्पणखा का वासनात्मक अतिरेक ही व्यक्त हुआ है। लक्ष्मण के साथ अपने दीर्घ संताप में वह प्रतिष्ठित मर्यादाओं के विरुद्ध कोरी बौद्धिक सैदान्तिकता ही प्रस्तुत करती है।

सुलक्षणा –

'साकेत' महाकाव्य में उर्मिला की सखी के रूप में कवि गुप्त ने एक ऐसे नारी की स्थापना की है, जो उर्मिला के वियोगकाल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सुलक्षणा एक ऐसी संवेदनशील नारी है जिसका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। जो अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ अपनी सखी उर्मिला के प्रति समर्पित है। वह उर्मिला के दुःख से दुःखी तथा उसके सुखी होने पर सुख महसूस करती है। वियोग–विह्वल उर्मिला को धैर्य तथा सांत्वना देना ही उसके अस्तित्व का वर्चस्व है। उर्मिला अपने हृदयगत गूढ़–भावों को अपनी सखी के समक्ष इस प्रकार प्रकट करती है –

" तुझपर–मुझपर हाथ फेरते साथ यहाँ,
शशक, विदित है तुझे आज वे नाथ कहाँ ?
तेरी ही प्रिय जन्मभूमि में दूर नहीं!
जा तू भी कहना कि उर्मिला क्रूर नहीं ! " 1

इस प्रकार 'साकेत' महाकाव्य रामकथागत नारियों में नारी–चेतना का सर्वोत्कृष्ट रूप बिम्बित हुआ है। 'साकेत' महाकाव्य की नारियों में कवि की अन्तश्चेतना में नव सृजना–चेतना विशेष सक्रिय रही है। इस काव्य में कवि गुप्त की सभी परम्पराबद्ध नारियाँ नवमूल्यों और आदर्शों की स्थापना करने में पूर्ण सक्षम हुई है। कवि गुप्त ने इन नारी–पात्रों के माध्यम से रामकाव्य और संस्कृति को रक्षित रखते हुए आधुनिकयुगीन प्रेरणा शक्ति के रूप मे

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 176

चित्रित किया है। कवि ने अतीतकालीन नारी पात्रों के माध्यम से जिस नारी चेतना को नव–आलोक प्रदान किया है। वह लोक–मानस के लिए आकर्षक ही नहीं, अपितु अनुकरणीय व प्रेरणादायक भी है।

'जयभारत' के प्रमुख स्त्री–पात्रों में नारी चेतना –

भारतीय काव्य संसार में 'रामायण' और 'महाभारत' दो भारतीय संस्कृति के आधार–स्तम्भ ग्रंथ हैं। इन दोनों ग्रंथों के अनुकरण के आधार पर हिन्दी साहित्य में भारतीय सभ्यता, संस्कृति और राष्ट्रीय एकता के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' एवं 'जयभारत' महाकाव्यों की रचना की है। कवि गुप्त का 'जयभारत' द्वितीय महाकाव्य है। जिसमें उन्होंने महाभारतकालीन आख्यान के सभी प्रमुख घटना–बिन्दुओं को 47 स्वतंत्र प्रसंगों द्वारा सुसम्बद्ध और धारा–प्रवाह प्रबंध–शैली में सुनियोजित किया है। इस काव्य–रचना का विचार कवि गुप्त के मन में अपने जेल–जीवन के दौरान आया। "लेकिन पर्याप्त परिश्रम के उपरान्त नये सिरे से लिखे इस काव्य का प्रकाशन सन् 1952 के बाद ही हो सका।" 1

कवि गुप्त ने 'जयभारत' महाकाव्य में नहुष के स्वर्ग–पतन से लेकर पांडवों के स्वर्गारोहण तक की सभी प्रमुख महाभारतकालीन घटनाओं का समावेश किया है। कवि ने इन घटनाओं के माध्यम से मानवीय गुणों का औदात्य व्यक्त किया है। 'जयभारत' महाकाव्य के प्रमुख नारी–पात्रों में भारतीय संस्कृति के जीवनव्यापी रूप का आलेखन हुआ है। 'जयभारत' महाकाव्य की प्रमुख नारियों की नारी–चेतना को निम्नांकित नारी–पात्रों द्वारा उद्घाटित कर सकते हैं।

कुन्ती –

संसार में नारी मानव–मूल्यों की दिव्य प्रतिमूर्ति है। नारी का 'मातृत्व' भाव उसे नारी से 'माँ' के पूजनीय आसन पर आरूढ़ करता है। कवि गुप्त के 'जयभारत' महाकाव्य में माता कुंती का मातृत्व अत्यंत संश्लिष्ट और उच्च है। एक माता अपने

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 05

समान अन्य दूसरी माता के पुत्रों का विनाश एवं मरण नहीं देख सकती है। 'जयभारत' महाकाव्य की माता कुंती भी जब अपने पाँच पाण्डव पुत्रों व कौरवों के मध्य संधि न हो सकी तो वह भाव–विह्वल हो उठी। कवि गुप्त ने माता कुंती की अधीरता को इस प्रकार प्रकट किया है–

" अभिमानी दुर्योधन ने जब मानी नहीं बड़ों की बात,
सन्धि न हुई, वंश–विग्रह का दीख पड़ा दारूण उत्पात।
तब कुंती के मन को मानो मथने लगे घात–प्रतिघात
उस दिन न तो खा सकी कण भर,
न वह सो सकी क्षण भर रात।" 1

संसार में माता–पिता ही अपनी संतान को ऊँचाइयों पर देखकर खुश होते है। माता का मानव धर्म होता है कि वह अपनी संतान को कर्तव्य मार्ग हेतु पथ–प्रदर्शित करें। माता कुंती की यही भावना अपने पाँचों पुत्रों के साथ जुड़ी है। अपने ही कुटुम्बियों से होने वाले युद्ध से द्रवित कुंती का हृदय सत्य की विजय एवं जयकार समझकर कठोर हो जाता है। कुंती अपने पुत्र भीम से कहती है की "पुत्र तुम युद्ध करो और सत्य की जीत करो, क्योंकि असत्य के जल से सत्य की ज्वाला कई गुना अधिक श्रेष्ठ है।" 2

'जयभारत' महाकाव्य में माता कुंती के मातृत्व का एक अभूतपूर्व पक्ष उभरा है। पाँच पुत्रों की यशशाली माता का वेश सामान्य स्त्रियों जैसा है। जिसको राज्याभिमान की अपेक्षा अपने सत्यपथिक पुत्राभिमान अधिक है। वह एक क्षत्राणी नारी है। उस क्षत्राणी का दर्प एवं तेज परिस्थितिगत विवशताओं से परिपुष्ट है। कुंती अज्ञातवास में अपने आश्रयदाता ब्राह्मण परिवार को संकट से बचाने में अपने पुत्र तक को मृत्यु हेतु भेज देती है। यह भारतीय नारी के त्यागशील आदर्श का उच्चतम प्रयास है। कुंती अपने पुत्र भीम को 'वक' राक्षस को भोजन हेतु भेजते समय अपनी दृढ़ता गर्वपूर्वक इस प्रकार रखती है –

" यह देव का अन्याय है,
पर वत्स, कौन उपाय है,

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 240
2. किन्तु नहीं रोऊँगी अब मैं, जल से भली मुझे ज्वाला।
तू भी क्या समझेगा, कैसे क्या कह बैठी कुल–बाला।।
वही, पृ. सं. 241

पूछो न तुम इस हृदय की कुछ दशा।
रण में मरण तक के लिए,
पति–पुत्र को आगे किए,
करती विसर्जित गर्व कर हम कर्कशा। " 1

'जयभारत' महाकाव्य की कुंती अपने पुत्रों के दिव्य बल से परिचित है और आश्वस्त है कि भीम वक को मारकर ही लौटेगा। कुंती का इस तरह का विश्वास स्वाभाविक जीवन–व्यवहार से जुड़ा है। एक माता के जीवन आदर्श एवं त्यागशील जीवन–शिक्षा का परिणाम है कि उनके पाँचों पुत्रों में प्रत्येक पुत्र वक का संहार करने को तैयार हो जाता है। उनके पुत्र एक दूसरे को रोककर स्वयं वक को मारने हेतु जाने का त्यागशील भाव अपनी माता से इस प्रकार व्यक्त करते है –

सब जानते है पार्थ मेरा नाम है।
माँ तुम मुझे भेजो, अहा!
पर भीम ने रोका उन्हें,
ठहरो तनिक तुम, भीम का यह काम है। " 2

भारत देश की संकीर्ण राजनीति में मोहग्रस्त एवं स्वार्थी शासक तथा पथभ्रष्ट राजनेताओं को सुशासन का पाठ पढ़ाने में कवि गुप्त के महाकाव्य 'जयभारत' की नारी कुंती भी पीछे नहीं है। वह सुप्त एवं पथभ्रष्ट शासकों के प्रति जनता की जागृति में संजीवनी एवं मार्गदर्शक बनी है। कुंती 'वक' नामक राक्षस द्वारा जनता को मारने व कष्ट पहुँचाने पर शासक के मौन रहने व उसके द्वारा कोई उपाय न करने पर वे चिन्तित हो उठती है। ऐसे शासक को दुत्कारती हुई कहती है –

" मुझसे कहो, राजा यहाँ का कौन है ?
कुछ यत्न वह करता नहीं,

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत — पृ. सं. 75
2. वहीं, — पृ. सं. 76

क्या कर्त्तव्य से डरता नहीं ?
मरती प्रजा है, और रहता मौन है ? " 1

माता कुंती का ऐसे मौन शासक के विषय में मानना है कि 'जो शासक संकट के समय अपनी प्रजा की रक्षा न कर सके, तथा विपत्ति के समय प्रजा की सहायता हेतु कोई उपाय न कर सके तो ऐसे "शासक के सत्ता में बने रहने का कोई हक नहीं है। उसे अपने पद को त्याग देना चाहिए। कुंती प्रजा को भी सावचेत करती है कि न्याय के लिए प्रजा को भी राजा का विरोध करना चाहिए।"2 इस प्रकार कुंती 'जयभारत' महाकाव्य की एक ऐसी नारी है जो मातृ–सुलभ हृदय में उदारता, साहस, त्याग, आत्मविश्वास, सहिष्णुता पुत्रभिमान, वात्सल्य एवं नारी स्वभावोचित आशंकाओं को धारण किए हुए है। जो नारी चेतना में मील का पत्थर है।

सुभद्रा –

भारतीय संस्कृति के रक्षक मातृभूमि के अमर पुजारी, राष्ट्रीयता के सशक्त कवि मैथिलीशरण गुप्त के 'जयभारत' महाकाव्य में उदात्त नारी–चेतना की जो अवतारणा हुई है उसमें सुभद्रा का उदय अभिमन्यु की माता के रूप में हुआ है। सुभद्रा 'जयभारत' की एक ऐसी नारी है, जो भारतीय संस्कृति के मानव–मूल्यों की रक्षक व वाहक है। कामी पुरुषों द्वारा एक से अधिक नारी रखने के पुरूषों के स्वभाव के वह पूर्णतः विपरीत है। जयद्रथ के कामी रूप को देखकर तथा नारियों को दासी बनाकर रखने पर वे चिन्तित होकर कह उठती है–

" आर्या को दासी रखते हो, जाति तुम्हारी जानी,
मेरे प्रभू रखते हैं, अब भी मुझे बनाकर रानी। " 3

नारी संतान को जन्म देने के कारण वह जननी कहलाती है। संतान का वात्सल्य उसे सब सुखों से बढ़कर होता है। अपने पुत्र की मृत्यु उसके कलेजे को छेद देती है। सुभद्रा भी अभिमन्यु की माता है, और अभिमन्यु की मृत्यु पर उसकी अकथनीय अन्तर्वेदना को शब्दों में बांध पाना कठिन

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत — पृ. सं. 71
2. जूझे की निज पद त्याग दे, सबके सदृश्य बलि–भाग दे।
   न्यायार्थ क्यों उससे प्रजा लड़ती नहीं ? "
   वही, — पृ. सं. 71
3. वहीं, — पृ. सं. 159

है। वेदना का प्रलाप करती हुई वह कृष्ण से कहती है –

" भैया, कहां मेरे दृगों का, आज तारा है कहां ?
मुझ दुःखिनी हतभागिनी का सौख्य सारा है कहां ? " 1

सुभद्रा अपने इस करुण रूप के अतिरिक्त वह सहनशील, त्याग और पतिव्रत–धर्म को धारण करने वाली नारी है। आज संसार में अधिकतर पुरुष नारी के प्रति कामुक दृष्टिकोंण रखते हैं। लेकिन सुभद्रा ऐसे कामी पुरुषों को स्वयं का नहीं, अपितु मृत्यु का कामी–पुरुष समझती हैं। वह अपने पति के साथ ही रहने को ही श्रेष्ठ समझती है। सुभद्रा एक पतिव्रता हिन्दू–नारी को दुर्बल, असहाय व मजबूर समझने वाले कामी पुरुषों पर प्रहार करते हुए कह उठती है–

" ठहर अनार्य दस्यु, तू मेरा नहीं, मृत्यु का कामी,
दूर नहीं, मैं देख रही हूँ लौट रहे हैं स्वामी।
आकर जो कर धरा ढीठ ने, देकर झट से झटका,
उसे छुड़ा, पद रज में उसको पांचाली ने पटका। " 2

भारतीय नारी धर्म और कर्त्तव्य के नाम पर जीवन में अत्यंत अप्रिय विषय को भी धैर्यपूर्वक स्वीकार करने वाली है। 'जयभारत' महाकाव्य में सुभद्रा की समस्त चेतना का लक्ष्य पति, परिवार और कुटुम्ब की इच्छा पालन है। उसके लिए वह अपने सुख भोग को भी विस्मृत एवं विसर्जित कर तिलांजलि दे देती हैं। सुभद्रा में दायित्वबोध की भावना और गरिमा है। अपना सम्पूर्ण दायित्व माता कुंती को सौंपकर पांडवों का हिमालय के लिए प्रस्थान करने पर उदार नारी–भावना का परिचय देते हुए कह उठती है–

" नर घर छोड़ निकल जाता है,
नारी घुटती रहती है।
लज्जा, भय–विषाद की मारी,
दुखियारी सब सहती है। " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत — पृ. सं. 148
2. वही, — पृ. सं. 159
3. वहीं, — पृ. सं. 170

कवि गुप्त की नारी सुभद्रा संसार की उन नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। जिनके पति ग्राईस्थ्य दायित्व उन्हें सौंपकर तपसिद्धि अथवा किसी अन्य प्रयोजन से प्रयाण करते हैं। सुभद्रा भी उन्हीं नारियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित हो जाती है। "वर्तमान समय में भी नारी सब कष्टों को धारण करती है। लेकिन उसके दुःखों को देखने समझने वाला कोई नहीं है।" 1 इस प्रकार कवि ने सुभद्रा के त्याग और निरीहता द्वारा नारी चेतना का वर्णन 'जयभारत' के विविध खंडों में कर नारी को एक नवीन जीवन–दर्शन प्रदान किया है।

उत्तरा –

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के 'जयभारत' महाकाव्य की श्रेष्ठता और सार्थकता को साबित करने में उत्तरा के चरित्र की महत्ता भी सर्वोपरि है। उत्तरा और अभिमन्यु का प्रणय–भाव युद्धकालीन वातावरण की गम्भीरता से परिवेष्टित है। वह एक ऐसी नारी है जो आदर्श एवं मर्यादा की प्रतिमूर्ति है। अभिमन्यु को पूरा विश्वास है कि उत्तरा उसे युद्ध भूमि में जाने हेतु बाँधक नहीं होगी अपितु प्रेरित करेगी। तभी तो वह युद्ध में जाने से पहले अपनी पत्नी से विदा परिणय–भाव में लीन होकर लेता है –

" यों कह वचन निज सूत से वह वीर रण में चल दिये,
पहुँचा शिविर में उत्तरा से बिदा लेने के लिए।
सब हाल उसने निज प्रिया से जब कहा जा कर वहाँ,
कहने लगी तब वह स्वपति के अति निकट आकर वहाँ। " 2

भारतीय–आर्य–वीर नारियों का वीरता भाव विश्व प्रसिद्ध रहा है। 'जयभारत' महाकाव्य की उत्तरा भी एक क्षत्राणी वीर नारी है। वह क्षात्र–धर्म तथा दर्प को प्रकट करती है। वीर–पत्नी के गुणों को देश सेवा एवं रक्षार्थ युद्ध में अपने पति–पुत्र के जाने पर अपने कर्तव्य भाव की यों अभिव्यंजना प्रदान करती है–

---

1. मैं सबकी धात्री मेरा भी कोई धाता–त्राता,
   अगति अभद्रा को जगती में तू न भूल ओ भ्राता।
   मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत — पृ. सं. 235
2. वहीं, — पृ. सं. 10

" क्षत्राणियों के अर्थ भी सबसे बड़ा गौरव यही–
सज्जित करें पति–पुत्र को रण के लिए जो आप ही।
जो वीर पति के कीर्ति–पथ में विघ्न–बॉधा डालतीं
होकर सती भी वह कहाँ कर्त्तव्य अपना पालतीं। " 1

नारी–सुलभ मन की एक विशेषता यह है कि वह भावी–अनर्थ की आशंका से विचलित हो उठती है। उत्तरा को भी अपने पति अभिमन्यु के युद्ध में जाने का समाचार उसे इसलिए विचलित करता है कि वह अपशकुनों तथा कुलक्षणों के माध्यम से भावी संकटपूर्ण स्थिति की आशंका का आभास कर लेती है। उत्तरा अपने हृदय के द्वन्द्व को छिपाते हुए उद्विग्न मन से कह उठती है –

" अपशकुन आज परन्तु मुझको हो रहे सच जानिए,
मत जाइए सम्प्रति समर में प्रार्थना यह मानिए।
जाने न दूंगी आज मैं प्रियतम तुम्हें संग्राम में,
उठती बुरी हैं भावनाएं, हाय मम हृद्धाम में ! " 2

मानव जीवन में श्रेष्ठ मानवीय प्रवृत्तियों के लिए उम्र कभी बॉधक नहीं बनती है। वीर–नारी किशोरावस्था में भी क्षत्राणी रूप से परिपूर्ण होती है। उत्तरा का किशोरी रूप 'जयभारत' के 'वृहन्नला' खण्ड में प्रस्तुत है। कवि गुप्त ने उत्तरा के माध्यम से नारी के बालमन में भी वीरता के भावों को स्थापित किया है। उनका मन बाल्यावस्था में भी अपने पति से शत्रु को परास्त करके यथायोग्य सामग्री छीनकर लाने को लालायित है। उत्तरा बचपन में अपने भावी पति को युद्ध में जाने और विजयी होने पर अपने भावों को इस प्रकार प्रकट करती है–

" वृहन्नले समर में जाकर तू मुझको न भूल जाना,
दुष्ट दस्युओं को परास्त कर उनके वसन छीन लाना।
उनसे वर्ण वर्ण की गुड़ियाँ में सानन्द बनाऊँगी,
और खेलती हुई उन्हीं से मैं तेरा गुण गाऊँगी। " 2

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत — पृ. सं. 11
2. वहीं, — पृ. सं. 160
3. वहीं, — पृ. सं. 198

उत्तरा के चरित्र के दूसरे पक्ष में अभिमन्यु की मृत्यु के समाचार एवं उसके शव के दर्शन से शोकाकुल उत्तरा का भाव–विभोर होना प्रकट होता है। लेकिन अंत में क्षत्राणी उत्तरा अपने पति की मृत्यु में भी अपने जीवन की श्रेष्ठता मानती है। क्योंकि उसके वीर–नारी होने की प्रसिद्धि में पति का योगदान प्रमुख हैं। इस प्रकार उत्तरा में अपने पति, परिजनों एवं कला–गुरु वृहन्नला (अर्जुन) में पूर्ण आस्था और श्रद्धा है। राजप्रासाद में पली इस अल्हड़ बालिका के अप्रौढ़ मन की कोमल–सूक्ष्म भावनाओं का सजीव चित्र कवि गुप्त ने उत्तरा के रूप में प्रस्तुत किया है।

गान्धारी –

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी काव्याकाश के अप्रतिम कवि है। उनके 'जयभारत' महाकाव्य में गान्धारी एक ऐसी नारी है , जो धृतराष्ट्र की पत्नी और कौरवों की माता के रूप में अवतरित हुई हैं। गान्धारी एक ओर पुत्र–मोह के कारण अधर्म तथा अन्याय को विवशतापूर्वक सहन करती है, तो दूसरी ओर न्याय और धर्म के प्रति सजग होकर सद्–आचरण तथा व्यवहार का परिचय देती है। इस संबंध में डॉ. रश्मि शर्मा की अवधारणा है कि 'जयभारत' की गान्धारी मुख्यतः पतिव्रत धर्म में सीमित है और अपने पुत्रों के असत् आचरण के प्रति तटस्थ है। " 1

समाज में परिवार, व्यक्ति की प्रथम पाठशाला तथा माता संतान की प्रथम शिक्षक होती है। संतान में माता ही मानव–मूल्यों की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की वाहक होती है। माता गान्धारी भी कौरवों में मानव–मूल्यों का संचार करने वाली है। वह अपने पुत्रों से अहंकार, कठोरता एवं कर्कशता का भाव त्यागकर नम्रता धारण करने की शिक्षा प्रदान करती हुई कहती है–

" धन्य नम्रता के विधान तुम, होकर भी स्वाधीन,
कर बैठे हो आप अखिल में अपना अहं विलीन।
धन्य हमारी धरा, जहाँ तुम प्रकट हुए प्रत्यक्ष,
नम्र भाव धारण कर हम भी साधे अपना लक्ष्य। " 2

---

1. डॉ. रश्मि शर्मा : साकेत का विशिष्ट अध्ययन पृ. सं. 221
2. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 102

'जयभारत' महाकाव्य की गान्धारी एक विवेकशील, तटस्थ नारी है। वह सत्य के मार्ग पर चलने वाले पाण्डवों की प्रशंसा करने में कभी भी उसका पुत्रमोह आड़े नहीं आता है। वह कुमार्गी अपने पुत्र दुर्योधन की आलोचना तक करती है। अपनी वंश–मर्यादा के गौरव एवं नारी सम्मान की भावना को हृदयंगम करते हुए वह अपने स्वजनों तथा सम्बंधियों के सम्मान एवं हित–रक्षा का ध्यान रखती है। द्रौपदी के अपमान एवं चीर–हरण भावी आशंका से चिन्तित होकर कह उठती है–

" सूक्ष्म धर्म–गति का विचार तो कर सकते हैं वृद्धाचार्य,
पर क्या यह सब कर सकते हैं वे भी, जो है अधम अनार्य ?
हाय ! लोक की लज्जा भी अब नहीं रह गई लक्षित क्या,
आज बहू का तो कल मेरा कटि–पट नहीं अरक्षित क्या ? " 1

भारतीय आर्य–नारी अपने आचरण में सर्वत्र आशावादी भाव रखती है। गान्धारी के मन में भी अपने पुत्रों की विजय को लेकर आशा का भाव है। परन्तु पुत्रों की मानवीय दुर्बलताएँ उसे लज्जित करती है। वह स्वीकार करती है कि " पुत्र का अनैतिक कार्य स्वयं एवं परिजनों के साथ सर्वाधिक माता को लज्जित करता है। " 2

'गान्धारी' भौतिक जीवन से विरक्त होने के साथ ही पारिवारिक मोह तथा सामाजिक बदलाव के प्रति सजग है। 'जयभारत' महाकाव्य के 'द्यूत' खण्ड में वह द्रौपदी पर घटित अनाचार से त्रस्त होकर पुरुष द्वारा नारी के अपमान तथा अत्याचार के प्रति विद्रौही हो उठती है। अपने पति धृतराष्ट्र को उचित दिशा–बोध देते हुए, न्याय तथा धर्म का पक्ष लेने को प्रेरित करती है। धन और शासन के संबंध में गान्धारी की धारणा इस प्रकार है–

" यदि पुरुषों में पुरुष होगा, तो सब कुछ हो जावेगा,
तात, अन्यथा वह भिक्षा का वैभव फिर खो जावेगा। " 3

कवि गुप्त ने गान्धारी के माध्यम से नारी का जो आक्रोश व्यक्त किया है। वह भाई, पति तथा पुत्र के लिए न होकर सम्पूर्ण पुरुष समाज के प्रति है। जो नारी को केवल भोग्या की दृष्टि से

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत — पृ. सं. 106
2. पुत्र–मोह उससे भी दुस्तर मज्जित करता है मुझको,
   सबल मेरा मातृ–हृदय यह लज्जित करता है मुझको।
   वहीं, — पृ. सं. 106
3. वहीं, — पृ. सं. 107

देखते है। गान्धारी के मन में तभी तो द्रौपदी के प्रति स्नेह एवं सौहार्द्र है। युद्ध में अपने पुत्रों का संहार हो जाने पर उसकी आशाओं का एक मात्र केन्द्र द्रौपदी ही रहती है। वह द्रौपदी को अपनी विधवा पुत्र–वधुओं की रक्षा का दायित्व अत्यन्त मार्मिक शब्दों में प्रदान कहती है–

" तेरे दुःख पर बहू, आज ईर्ष्या है मुझको,
मैं तो जठरा, बहुत भोगना होगा तुझको।
देवरानियाँ निरपराधिनी हैं सब तेरी,
उन्हें देखियों यही याचना– आज्ञा मेरी। " 1

एक श्रेष्ठ माता का अपने पुत्रों के सद्कर्मों को देखकर गर्वित और कुकर्मों को देखकर दुःखी होना स्वाभाविक है। इस संबंध में गान्धारी ने भी आत्मग्लानि तथा पश्चाताप को प्रकट किया हैं । वह अपनी पुत्रैषणा तथा पांडवों के प्रति ईर्ष्या–भाव को स्वीकार करती है, साथ ही अपने पुत्र दुर्योधन के अधम–कर्मों से उसकी माँ होने का पश्चाताप भी प्रकट करती है। भगवान श्रीकृष्ण से अपना क्षोभ प्रकट करती हुई वह कहती है–

" मैं भी हे गोविन्द, अन्ततः अबला नारी,
पांडुसुतों को देख मुझे भी डाह हुई थी,
एक एक पर बीस बीस की चाह हुई थी,
दुर्योधन में विकसित हुई घनीभूत यह डाह ही।
क्या कर सकती हूँ मैं भला, भर सकती हूँ आह ही। " 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने गान्धारी को 'महाभारत' की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक और विवेकशील रूप में प्रकट किया है। जो हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि होने के साथ समाज में सद्नारी की से परिभाषित आदर्श गृहिणी एवं सुयोग्य नारी है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 296
2. वहीं, पृ. सं. 234

'जयभारत' के गौण स्त्री–पात्रों में नारी चेतना –

भानुमती –

प्रकृति ने नारी में जिन उर्ध्वगामिनी संभावनाओं को जन्म दिया है। उनके चरितार्थ हेतु संबल प्रदान करना मानव का प्रमुख लक्ष्य है। इन सम्भावनाओं का अहसास भारतीय परिवेश में कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'जयभारत' महाकाव्य में दुर्योधन की पत्नी भानुमती के रूप में किया है। भानुमती को भारतीय आदर्श हिन्दू–नारी के गुणों से सम्पृक्त करके, पति के दीर्घ जीवन की आकांक्षिणी पत्नी के रूप में चित्रित किया है।

जिस प्रकार 'रामचरितमानस' में "रावण–पत्नी मन्दोदरी रावण को बार–बार सन्मार्ग पर लाने का प्रयास भगवान राम की श्रेष्ठता को चित्रित करके करती है और रावण की विजय के संबंध में आशंकित रहती है। " 1 उसी प्रकार भानुमती भी 'जयभारत' महाकाव्य में अपने पति दुर्योधन को सन्मार्ग पर लाने का भरसक प्रयत्न करती है। उनको विश्वास है कि अंत में विजय सत्य एवं धर्म की ही होगी। वह अपने पति को सन्मार्ग की शिक्षा एवं भावी–परिणाम की आशंका से इस प्रकार परिचय कराती है–

" जैसे भी हो, विजय ही बना तुम्हारा धर्म,
किन्तु पराजित प्रथम ही हैं ये मेरे मर्म।
प्रिये, पराजय मत कहो यह हैं विजयी प्रेम,
कर सकती हैं मुत्यृ भी क्या मेरा अक्षेम ? " 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने भानुमती की चेतना के माध्यम से नारी में मानवीय–गुण एवं मानव मूल्यों की स्थापना की है। भानुमती भारतीय आर्य संस्कृति की रक्षा के साथ सांस्कृतिक चेतना के प्रयासों में सर्जनात्मक भूमिका की परिचारिका रही है। वह रामायणकालीन मंदोदरी की भांति महाभारत में एक पथद्रष्टा नारी है।

---

1. " कंत करश हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू।
   समुझत जासु दूत कह करनी। स्रववहिं गर्भ रजनीचर घरनी।"
   तुलसीदास : रामचरितमानस पृ. सं. 432
2. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 249

शचि –

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी काव्य में नारी चेतना के अप्रतिम कवि है। उन्होंने नारी में नवीन चेतना का संचार करने की हुँकार अपने सम्पूर्ण काव्य में भरी है। 'जयभारत' महाकाव्य में कवि गुप्त ने शची अथवा इन्द्राणी को एक विवेकशील, ध ार्मिज्ञ तथा पति–परायण नारी के रूप में प्रतिष्ठित किया है। भारतीय आर्य–संस्कृति के अनुरूप शची अपने पति इन्द्र के प्रति एकाग्र भाव से समर्पित है। उस समर्पण में ही अपने अस्तित्व की सार्थकता मानती है। उनका यह समर्पण नहुष के विभिन्न प्रलोभनों के सामने टस से मस नहीं होता है। वह नहुष को फटकारती हुई पतिव्रता धर्म की वाणी में कहती है–

" सौंपा अपने को यह राज्य वैसे जानो तुम,
थाती इसे मानो, निज धर्म पहचानो तुम।
त्यागों शची–संग रहने की पाप–वासना,
हर ले नरत्व भी न कामदेवोपासना! " 1

कवि गुप्त की नारी के इस समर्पण की एकाग्रता को सर्वत्र सराहा है, और भारतीय नारी–गौरव का प्रधान लक्षण स्वीकार किया है। शची के चरित्र में नारी समाज के प्रति चिंतन और बौद्धिकता की प्रधानता है। मानव द्वारा शराब का सेवन समाज को गर्त में ले जाता है। शराब ने कितने परिवारों को तबाह कर दिया। शराब के दुष्प्रभावों से कोई भी बच नहीं पाया, चाहे वह देव ही क्यों न हो। शची युगीन समस्या एवं शराब के दुष्परिणामों के कारण मनुष्य अपनी सुध–बुध खो बैठता है –

" एक बार पीकर प्रमत्त जो हुआ जहाँ,
सुध फिर अपनी–परायी उसको कहाँ ?" 2

इस प्रकार शची के चरित्र में अपने पतिव्रत आदर्श के प्रति श्रद्धा और भक्ति है तो दूसरी ओर अपनी आस्था और आदर्श के संरक्षण के लिए वह बौद्धिक माध्यम को ही स्वीकार करती है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 16
2. वहीं, पृ. सं. 14

इस प्रकार कवि गुप्त की नारी अपनी चेतना द्वारा धर्म की रक्षा के लिए विवेक–समन्वित आचरण तथा व्यावहार का प्रश्रय लेती है और शची इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

उर्वशी–

हिन्दी ही नहीं, बल्कि समस्त विश्व–काव्य की श्रेष्ठता और सत्प्रेरणा की मूल चेतना नारी का सम्मान है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भी अबला एवं साहित्यिक दृष्टि से उपेक्षित नारियों को कवि ने अपनी लेखनी से सामाजिक धरातल प्रदान किया है। दैवीय–दृष्टि में उपेक्षित नारी अप्सरा, उर्वशी को कवि गुप्त ने अपने 'जयभारत' महाकाव्य के 'अस्त्र लाभ' खण्ड में संक्षिप्त अवतरण में भी दिव्य–धारणा से युक्त कर मानवीय सौन्दर्य तथा नारी सुलभ–वृत्तियों से परिपूर्ण किया हैं। उर्वशी स्वर्ग की अप्सरा होकर भी मनुष्य को संयमी रहने का संदेश प्रदान करती है। उनका कहना है कि पर–नारी को प्राप्त करना नर को सहज नहीं समझना चाहिए। वह अर्जुन से कह उठती है–

" पर मैं इतनी सुलभ नहीं, समझों यह ठीक,
अपना सच्चा स्वप्न न कर दो आप अलीक !
तप करते हैं, और साधते हैं जब योग,
पाते हैं तब कृती भाग्य से ऐसा भोग। " 1

आदर्श एवं श्रेष्ठ दाम्पत्य जीवन में प्रणय् भाव अपनी सीमाओं में नारी का धर्म तथा स्वभाव है। उर्वशी अर्जुन के प्रति प्रणय–आग्रह सशक्त वाणी में करती है। जिसमें मानव–जीवन की सहज काम–वृत्ति की प्रखरता के साथ भावी जीवन की नवीन प्रेरणा तथा प्रथ–प्रदर्शक का संदेश है। " वह अर्जुन को युद्ध में निराश देखकर सारी मनोबॉधाओं को छोड़कर सन्मार्ग हेतु युद्ध करने का संदेश प्रदान करती हैं " 2 उर्वशी का यह भाव परम्परागत अप्सराओं के संदर्भ में दिव्यता और नव्यता प्रदान करता है।

सामान्यतः नारी को रूप–सौन्दर्य, चिर–यौवन और अबॉधित काम–भाव के आधार पर उसे नर की उपलब्धि मार्ग में बॉधा समझा जाता है। सामान्य धारणा यह है कि

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 117
2. तुम उदास से मुझे दीख पड़ते हो शूर!
   हुई यहाँ भी नहीं मनोबॉधा क्या दूर ?
   वहीं, पृ. सं. 116

अर्जुन के जीवन–क्रम में उर्वशी का आविर्भाव उनके व्रत तथा संकल्प को खंडित करने के लिए होता है। लेकिन इस धारणा के ठीक विपरीत डॉ. रामानन्द तिवारी ने अपने 'उर्वशी' खंडकाव्य में अपना मत उर्वशी के शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया है–

" आप भूमि के राजा है, हम परियाँ स्वर्ग विहारी
अतिथि या कि अबला कैसे भी रक्षा की अधिकारी
ललनाओं का हरण भूमि पर दुष्ट दनुज है करते,
इसीलिए हम कभी भूलकर भू पर भीत उतरते। "1

कवि गुप्त की उर्वशी अप्सरा होकर भी मानवीय के पुरुषार्थ तथा मनुष्यत्व से अभीभूत सामान्य नारी है। वह मानव के लिए प्रेरक जीवन–दर्शन को सशक्त रूप से प्रतिपादित करती है।

मत्स्यगंधा –

समस्त विश्व–काव्य में नारी के नख–शिख वर्णन की परम्परा रही है। लेकिन आधुनिक कवि मैथिलीशरण गुप्त ने मत्स्यगंधा के सौन्दर्य एवं शान्तनु के प्रति आकर्षण का चित्रण नारी–मनोभावों के सामान्य बिम्ब के रूप में किया है। परम्परागत नख–शिख वर्णन के रूप में नहीं। वह राजा शान्तनु के समक्ष विवाह का प्रस्ताव भारतीय आर्य–संस्कृति के अनुरूप रखती है। तब राजा मत्स्यगंधा के गुणों का बयान इस प्रकार करता है–

" शुभे, कौन तुम ? पली प्यार से सुख से खाई खेली हो,
अद्भूत सुरभि–भरी फूली–सी, कल्प–वृक्ष की बेली हो ?
भोली–भाली भी कुछ अल्हड़, निर्मल नई नवेली हो,
क्रीड़ा–तरी लिए निर्जन में डरती नहीं अकेली हो ? " 2

भारतीय नारी में लज्जा का भाव उसमें नारियोंचित गुणों को बढ़ाता है। मत्स्यगंधा भी लज्जा भाव से परिपूर्ण नारी है। शान्तनु के समक्ष आदर्श प्रेम प्रस्तुत करने पर वह लज्जा–भाव से घिर जाती है। शान्तनु द्वारा लज्जा को त्यागने के प्रस्ताव पर मत्स्यगंधा उस लज्जा को नारी का आभूषण बताती हुई कहती है–

1. डॉ. रामानन्द तिवारी : उर्वशी पृ. सं. 48
2. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 26

" लज्जा ललनाओं की भूषा, ऊषा की ज्यों अरुणाई।
समधिक साहस भरी किन्तु है निडर तुम्हारी तरुणाई। " 1

इस प्रकार कवि गुप्त की नारी मत्स्यगंधा आधुनिक सौन्दर्य से युक्त नारी की प्रतीक होते हुए भी भारतीय आर्य नारी के शील, लज्जा, दया, करुणा तथा पतिव्रत धर्मों का पालन करती हुई वर्तमान जीवन को प्रेरित करती है।

सत्यवती –

मानव एक सामाजिक प्राणी हैं ,समाज में ही वह अपने सम्पूर्ण क्रिया–कलाप पूर्ण करता हैं, अकेले रहना उसे नहीं भाता है। मानव–सभ्यता के विकास का इतिहास इस मत का प्रमाण प्रस्तुत करता है। भारतीय संस्कृति के मूल में भी पिता–पुत्री का रिश्ता सामाजिक बंधन को दृढ़ता प्रदान करता हैं। हिन्दू धर्म में यदि पुत्री परिजनों के अनुकूल आचरण करे, अपने बड़े भाग्य पर कभी भी गर्व नहीं करें, तो वह श्रेष्ठ गृहिणी का पद पाती है, और इसके विपरीत आचरण करने वाली पुत्री कुलटा कहलाती है। कवि गुप्त ने इस मत की पुष्टि अपने 'शकुन्तला' काव्य में इस प्रकार की है –

" परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूलकर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी–पद पाती हैं,
उलटी चलकर वंश–व्याधियाँ कहलाती है। " 2

कविवर गुप्त ने भी अपने 'जयभारत' महाकाव्य में वर्णित सत्यवती भी एक आदर्श पुत्री है, जो अपने पिता दासराज की अनुमति तथा आज्ञा के अभाव में स्वयं कोई निर्णय नही लेती है, और अपने भविष्य का उत्तरदायित्व अपने पिता को ही सौंपती है। वह अपने पिता को ही सब कुछ मानती हुई कहती है –

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 26
2. मैथिलीशरण गुप्त : शकुन्तला पृ. सं. 26

" जय हो श्रीमन् सत्यवती मैं, दासराज हैं, मेरे तात
राज्य हमारे राजा का है, कहिए फिर डर की क्या बात ?
क्या वस्तुतः तुम्हारा राजा ऐसा धीरधुरन्धर है ?
अधिक क्या कहूँ, भू पर वह है, ऊपर सुना पुरन्दर है।" 1

'जयभारत'महाकाव्य की सत्यवती एक ऐसी नारी है जो प्रथम स्तर पर वर्ण–भेद और वर्ग–भेद से चिन्तित हैं। वह सामाजिक स्तर पर विषमता के भाव से दूर है। क्योंकि वह मानती है कि "मानवीय विषमता का भाव मानवीय संबंधों में कटुता स्थापित करने में योग देता है। " 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने अपने महाकाव्य 'जयभारत' में सत्यवती के माध्यम से एक स्त्री को मानवीय मूल्यों की वाहक तथा संचारिक के रूप में स्थापित किया है, जो भारतीय नारी में नवीन चेतना को व्यापक करती है।

'जयभारत' के अन्य स्त्री–पात्रों में नारी चेतना–
सुदेष्णा –

भारतीय आध्यात्मिक चिंतन में लौकिक जीवन की उपेक्षा न करके उसे प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है। सरल और सात्विक कर्ममय मानव–जीवन में अतिथि का सर्वोपरि स्थान है। भारतीय संस्कृति स्वभावतः 'अतिथि देवो भवः' पर आधारित है। भारतीय संस्कृति के आख्याता कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'जयभारत' महाकाव्य के विराटपर्व में पाण्ड़वो का छद्मवेश में राजा विराट के यहाँ अतिथि रूप में रहने एवं राजा विराट की रानी सुदेष्णा द्वारा उनका आतिथ्य स्वीकार करना हमारी आर्य संस्कृति के अतिथि–आतिथ्य भाव को दृढ़ता प्रदान करता है।

कवि गुप्त ने राजा विराट की पत्नी रानी सुदेष्णा का चित्रण कीचक जैसे राक्षस की बहन तथा सैरन्ध्री की स्वामिनी के रूप में किया है। यद्यपि सुदेष्णा महाभारत के परम्परागत आधारभूमि पर ही प्रतिष्ठित है। लेकिन कवि गुप्त ने उसके व्यक्तित्व

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 26
2. बल दिखलाते हो हम तो तू यह बात नहीं कहता,
   अहो भाग्य निज मान हमारे इंगित का अनुगत रहता।
   वहीं, पृ. सं. 27

का विश्लेषणात्मक चित्र प्रस्तुत कर उसमें नारी चेतना का संचार किया है। सुदेष्णा एक ऐसी नारी है जो यदि विनोद में भी किसी का अपमान हो तो वह उस भी ठीक नहीं मानती है। वह अपने भाई कीचक द्वारा द्रौपदी का अपमान करने पर कहती है –

" अपमान किसी का जो करे, वह विनोद भी है बुरा,
यह सुनकर ही होगी न क्या सैरन्ध्री क्षोभातुरा ? " 1

राजा विराट की पत्नी सुदेष्णा एक ऐसी नारी है जो मनुष्य के अमर्यादित आचरण पर क्षोभ प्रकट करती है। अपने भाई कीचक के बलशाली एवं योग्य होने पर भी वह उसके अमर्यादित व्यवहार से दुःखी होकर कहती है –

" राम–राम! यह वही बली मेरा भ्राता है,
कहलाता जो एक राज्य भर का त्राता है।
जो अबला से अचानक आज हार रहा है,
अपना गौरव, धर्म, कर्म सब वार रहा है। " 2

सामान्यतः सुन्दरता को नारी की लज्जा–घातिनी माना जाता है। इस विषय में सुदेष्णा का मानना है कि यदि सुन्दरता से मानव मन में काम–वासना उत्पन्न होती है, सुन्दरता नारी समाज द्वारा क्यों अपनाई जाती है। वह कामी–पुरुषों पर प्रहार करती हुई कहती है कि आज पुरुषों के द्वारा काम–प्रवृत्ति एवं वासना–तृप्ति को प्रेम का नाम दिए जाने लगा है। सुदेष्णा का मानव समाज से प्रश्न यह है कि यदि पुरुषों का प्रेम पवित्र है तो वह माता, बहन एवं पुत्री के समान दूसरी नारियों को भी देखें। वह कीचक से इस विषय में स्वतः प्रश्न कर बैठती है –

यदि पुरुष जनों का प्रेम है पावन नेम निबाहता ,
तो कीचक मुझ–सा क्यों नहीं सैरन्ध्री को चाहता ? " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 174
2. वहीं, पृ. सं. 177
3. वहीं, पृ. सं. 177

इस प्रकार कवि गुप्त ने सुदेष्णा के माध्यम से नारी को सशक्त एवं वैभवशाली होने पर भी मानव–मूल्यों की रक्षक तथा नारी के अधिकारों की संरक्षिका के रूप में स्थापित किया है। वह मानव जाति की श्रेष्ठता के संबंध में अपनी अवधारणा इस प्रकार व्यक्त करती है –

" पद से ही मैं किन्तु मानती नहीं महत्ता,
चाहे जितनी क्यों न रहे फिर उसमें सत्ता।
स्थिति से नहीं, महत्व गुणों से बढ़ता है,
यों मयूर से गीध अधिक ऊँचे चढ़ता है। " 1

निष्कर्ष –

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कवि गुप्त ने अपने 'जयभारत' महाकाव्य में प्रमुख तथा प्रासंगिक नारियों के चरित्रगत वैशिष्ट्य का निरूपण कर एक नवीन चेतना का संचार किया है। कवि ने इन नारियों के माध्यम से पराधीन एवं धर्मच्युत तथा सांस्कृतिक दृष्टि से पराभूत नारी समाज में संजीवनी शक्ति भरी है। पुरुष और पौरुष के अहं को तोड़ने में उनकी नारी–पात्र सरलता से प्रहार करते है।

'जयभारत' महाकाव्य के नारी पात्र ईश्वरीय उपासना एवं शक्ति से प्रेरित है। जो धर्म की हानि होने तथा मानव–मूल्यों के क्षय होने पर अवतरित हुए है। कवि गुप्त की नारी कर्म को जीवन की अनिवार्य सार्थकता मानते हुए उसे धर्मपूर्ति तथा नारी चेता का महत्वपूर्ण अंग मानती है। कवि ने अपने इन नारी–पात्रों में मानव–जीवन की सहज दुर्बल–वृत्तियों का कौशलपूर्वक प्रदर्शन और निदर्शन किया है। इस प्रकार कवि गुप्त ने सभी पात्रों के जीवन में गंभीर मूल्यवत्ता का अन्वेषण किया है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 181

चतुर्थ – अध्याय

खण्डकाव्यों में नारी चेतना

चतुर्थ अध्याय

खण्डकाव्यों में नारी चेतना

समाज मनुष्य की समस्त अपेक्षाओं का क्षेत्र है, और उसी के समानान्तर राष्ट्र उसके मनोबल और चरित्रबल की परिणति है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का समस्त काव्य राष्ट्रीय भावना और नारी चेतना से युक्त है। यह चेतना–संजीवनी मात्र पुरुष वर्ग की एकाधिकारी न होकर समस्त मानव समाज, देव, दानव आदि में व्यापक है। यह नारी चेतना किसी–न–किसी रूप में नारी को संबल एवं ऊर्जा प्रदान कर आधुनिक संदर्भ में समाज और राष्ट्र को एक नवीन दिशा प्रदान करती है।

कवि गुप्त ने अपने खण्डकाव्यों में नारी चेतना द्वारा समाज के स्त्री–पुरुष भेद, ऊँच–नीच, धर्म–विधर्म के भेद को मिटाया है। "राष्ट्रीय और सामाजिक स्तर पर उनकी नारी अपनी चेतना द्वारा सभी जनसमुदायों तथा समाज को समान धरातल पर मानव–मूल्यों की रक्षार्थ प्रेरित करती है। " 1 उनके खण्डकाव्यों की नारी विशेष उदारता और सद्भावना व्यक्त करती है। इसलिए आज के समय में सम्पूर्ण समाज की नारी से अपेक्षाएँ भी अधिक है। कवि गुप्त के विभिन्न खण्डकाव्यों में नारी चेतना को हम इस प्रकार समझ सकते हैं।

पौराणिक खण्डकाव्यों में नारी चेतना–

भारतीय संस्कृति को उन्नत, गौरवमय, उज्ज्वल और सतत् दीप्त करने वाले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त 'पुरातना' वैष्णव संस्कारित कवि है। 'जो पीर पराई जाने' के अर्थ में वैष्णव है। कवि गुप्त आधुनिकता के ग्राहक और परम् उदार होते हुए भी पुराण उनकी रचनाओं के अक्षय–स्रोत है। धर्म का अर्थ उनके लिए मानव–हित–साधन, जीवन में अगाध विश्वास और नवीन विवेकपूर्ण दृष्टिकोंण की स्वीकृति हैं। कवि गुप्त ने अपनी लेखनी द्वारा पौराणिक खण्डकाव्यों में रामायण और महाभारत पर आधारित खण्डकाव्यों के अतिरिक्त कुछ

---

1. अर्पित हो मेरा मनुज काय,
   बहुजय हिताय बहुजन सुखाय।
   मैथिलीशरण गुप्त : कुणाल गीत — पृ. सं. 106

अन्य पौराणिक खण्डकाव्यों की सृजना की है। उनके द्वारा रचित 'द्वापर' और 'शक्ति' पौराणिक खण्डकाव्य प्रमुख है। 'द्वापर' खण्डकाव्य के मूल में श्रीमद्भागवत' की प्रेरणा एवं कथा प्रमुख है।

'द्वापर' में नारी चेतना–

कवि गुप्त के 'द्वापर' खण्डकाव्य की कथा के मूल में 'श्रीमद्भागवत' के दशम्स्कन्ध के तेईसवें अध्याय की कथा है। श्रीकृष्ण अपनी मण्डली के साथ वन में दूर विहार करते हुए निकल गए। वहाँ उनके बन्धुओं को भूख लगी। निकट ही एक स्थान पर यज्ञ हो रहा था। उन्होंने भोजन प्राप्ति के लिए उन्हें वहीं भेजा, परन्तु याज्ञिक ब्राह्मणों ने उन्हें दुत्कार दिया। भगवान ने उन्हें फिर यज्ञशाला में भेजा, परन्तु इस बार पुरुषों के पास नहीं स्त्रियों के निकट। वहाँ उनकी अभिलाषा पूरी हुई। स्त्रियों ने विविध व्यंजन लाकर भगवान को भोग अर्पण किया। एक ब्राह्मण ने बलपूर्वक अपनी विनिता को रोक लिया। वह स्त्री 'नैवेद्य समर्पण' तो दूर भगवान के दर्शन भी न पा सकी। इस दुःख से उसने अपने प्राण त्याग दिये। उनकी एक सखी वियोग पूर्वक कहती है–

" तत्रैका विधृता भर्ता भगवन्तं यथा श्रुतम्
हृदोगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम्। " 1

इस प्रकार सम्पूर्ण 'द्वापर' खण्डकाव्य की कथा में आधुनिक कवि गुप्त ने नारी के अर्पण समर्पण, को शामिल किया है। 'द्वापर' खण्डकाव्य के प्रमुख नारी पात्रों में नारी चेतना इस प्रकार है–

राधा –

'द्वापर' खण्डकाव्य में कवि गुप्त ने नारी पात्रों की चेतना में भौतिक, सामाजिक तथा पार्थिव परिवेश को स्थापित किया है। 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार कृष्ण अप्राकृत, परम प्रेमास्पद, चरम भागवद्तत्व है जो प्रेम प्राप्ति के लिए सदैव उत्सुक और लालायित रहते है।" 2 'द्वापर' खण्डकाव्य के नारी–पात्र अपनी चेतना और अपनी स्थिति के

---

1. श्रीमद्भागवद्गीता — पृ. सं. 10/407
2. डॉ. माधुरी खोंसला : मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में पात्रों की परिकल्पना — पृ. सं. 241

अनुरूप कृष्ण–प्रेम मार्ग का चयन करते है। समस्त विश्व काव्य में राधा को एक सामान्य कृष्ण–प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है, परन्तु कवि गुप्त की राधा रागिनी, शक्तिरूपा, ब्रह्मा के आंनद की प्रतिष्ठापना है। जो संसार के दुख, मर्म व व्यथा का अवसान करती है –

" शरण एक तेरे मैं आई,
धरे रहें सब धर्म हरे !
बजा तनिक तू अपनी मुरली,
नाचें मेरे मर्म हरे ! " 1

समर्पण और वात्सल्य का नाम ही नारी है। कवि गुप्त ने 'द्वापर' खण्डकाव्य में पुरातन राधा–संदर्भो का उल्लेख न करके समर्पण ,त्याग, प्रेम और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रण किया है। राधा एक सामान्य नारी बनकर अपना समर्पण परहितार्थ इस प्रकार व्यक्त करती है–

" नहीं चाहती मैं विनिमय में,
उन वचनों का वर्म हरे !
तुझको–एक तुझी को–अर्पित
राधा के सब कर्म हरे! " 2

'द्वापर' खण्डकाव्य की राधा में न तो भक्तिकालीन सैद्धान्तिक बोझिलता हैं, और न रीतिकालीन मांसलता प्रधान है। उसमें न तो लौकिक–भोग के प्रति आकर्षण है, न बाह्य कृत्रिम सौन्दर्य के प्रति झुकाव और न ही उसमें लोकोत्तर दिव्यता का ही समावेश है। कवि गुप्त ने राधा के रूप में एक ऐसी भारतीय नारी का चित्र प्रस्तुत किया है जो अपने आदर्श, धर्म और कर्त्तव्य के प्रति समर्पित होकर अपने उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करने की इच्छुक हैं। राधा श्रीकृष्ण को भी स्वयं कष्ट सहकर सन्मार्ग पर चलने की बेबाक प्रेरणा इस प्रकार देती है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर पृ. सं. 13
2. वहीं, पृ. सं. 13

" निज पथ धरे चले जाना तू ,
अलं मुझे सुधि–सुधा हरे !
सब सह लूँगी–रो रोकर मैं,
देना मुझे न बोध हरें ! " 1

मानव मन स्वभावतः ईश्वर की शरण में अपने को सुरक्षित महसूस करता है। ईश्वर भी अपनी शरण में आए हुए प्राणियों का उद्धार करते हैं। उसी संदर्भ में "राधा संबंध–बंधन से मुक्त अपने प्रेम–भाव को कृष्ण के प्रति समर्पित करके अपने मानसिक द्वन्द्वों से तटस्थ होकर उनकी शरण में आ गयी है।" 2

इस प्रकार 'द्वापर' खण्डकाव्य में 'राधा' प्रकृति के विराट सौन्दर्य में कृष्ण–संस्पर्श का अनुभव करती हुई, मुग्धा नायिका के समान उनके प्रेम से तृप्त है। वियोगावस्था में कृष्ण की स्मृति–रूपी सुधा के सहारे वियोग–अवस्था सहते हुए वह अपने अस्तित्व को कृष्ण में विलीन कर देना चाहती है।

यशोदा –

हिन्दी साहित्य के सम्पूर्ण कृष्ण–काव्य में माता यशोदा एक ऐसी नारी है, जो कृष्ण की जैविक माँ न होकर भी मातृत्व–सुख से परिपूर्ण है। कवि गुप्त के 'द्वापर' खण्डकाव्य में यशोदा का चरित्र करुणा, वात्सल्य और ममता की त्रिमूर्ति हैं। पुत्र और मुक्ति भारतीय–जीवन की दो विशेष इच्छाएँ है। लोगों ने यहाँ पुत्र प्राप्ति के लिए अनेक यज्ञ, अनुष्ठान किए है। उसी तरह यशोदा भी पुत्र के अभाव में बड़ी संतृप्त थी, बड़े यज्ञ तप, दान और देवपूजा के बाद कृष्ण उन्हें पुत्र रूप में मिलें, तो वह ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता इस प्रकार ज्ञापित करती है –

" मेरे भीतर तू बैठा है, बाहर तेरी माया,
तेरा दिया राम, सब पावें,जैसा मैंने पाया। " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर — पृ. सं. 14
2. बस, यह तेरा अंक और यह,
   मेरा यह रंक शरीर हरे !
   वहीं, — पृ. सं. 13
3. वहीं, — पृ. सं. 15

कवि गुप्त ने माता यशोदा में नारी–प्रेम के उस मातृत्व–पक्ष को प्रकट किया है, जिसमें भावी संतान के प्रति आशावादी भाव है। प्रत्येक माता को अपनी संतान में अलौकिकता का बोध होता है। लेकिन माता यशोदा को इस बोध के साथ विश्वास भी है। वह अपने संदेह पर विजय पाते हुए विश्वास भाव व्यक्त करती है –

" जिये बाल–गोपाल हमारा, वह कोई अवतारी है।
नित्य नये उसके चरित्र, निर्भय विस्मयकारी है। " 1

बालक कृष्ण ईश्वर का अवतार है, लेकिन माता यशोदा के मातृत्व के समक्ष उसकी ईश्वरीयता लघु हो जाती है। यशोदा को कृष्ण की बाल–लीलाएँ इसलिए आह्लाद करती है क्योंकि उन लीलाओं में परोपकार का भाव है। यशोदा कृष्ण के द्वारा जनकल्याण एवं परोपकार के कार्य करने पर कहती है–

" अपनों पर उपकार देखकर, वह आगे आता है,
उलझ नाग से, सुलझ आग से विजय–भाग लाता है। " 2

माता यशोदा एक ऐसी नारी है, जिसमें कृष्ण जैसे ईश्वरीय पुत्र का वात्सल्य पाकर भी गर्व को लेशमात्र स्थान नहीं देती है। वह भाव–विभोर होकर कृष्ण के प्रति वात्सल्य–भाव समर्पिता है। मातृत्व के सौभाग्य के प्रति उसमें अभिमान नहीं अपितु कृतज्ञता है। वह ईश्वर से यही प्रार्थना करती है कि मेरे जैसा पुत्र सब माताओं को मिले–

" गर्व नहीं यह कृतज्ञता है, मैंने जिसे जनाया।
तेरा दिया राम सब पावें, जैसा मैंने पाया। " 3

भक्तिकालीन कृष्ण–काव्य में कृष्ण–भक्त कवियों ने यशोदा के वात्सल्य–पक्ष का ही चित्रण किया है। लेकिन कवि गुप्त ने माता यशोदा को अनेक रूपों में वर्णित किया है। वह वर्तमान शहरीकरण के विपरीत है। प्राकृतिक व ग्रामीण जीवन के प्रति निष्ठा भाव उनमें पूर्णता के साथ उपस्थित है। इस संबंध में यशोदा की धारणा है कि नगरों के

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर — पृ. सं. 16
2. वहीं, — पृ. सं. 18
3. वहीं, — पृ. सं. 20

विकास से हमारे ग्राम बचें रहे। वह ब्रज की तुलना स्वर्ग से करती हुई कह उठती है –

" बचा रहे वृंदावन मेरा, क्या है नगर–नगर में !
मेरा सुरपुर बसा हुआ है, ब्रज की डगर–डगर में। " 1

कवि गुप्त की यशोदा में वात्सल्य–पक्ष के साथ ही पत्नी का कर्त्तव्य और पति–निष्ठा का भाव भी अपनी पूर्णता के साथ उपस्थित है। पति से प्राप्त प्रेम में नारी अपना सम्पूर्ण सुख देखती है और गौरवान्वित अनुभव करती है। उनका यह प्रेम वर्तमान पति–पत्नि संबंधों को मजबूती प्रदान करता है। यशोदा का पति प्रेम के विषय में मानना है कि –

" मेरे पति कितने उदार है, गद्गद् हूँ यह कहते –
रानी–सी रखते हैं मुझको, स्वयं सचिव–से रहते ।" 2

इस प्रकार यशोदा नारीत्व की पूर्ण मर्यादाओं का स्पेश करती हुई मातृत्व एवं दाम्पत्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति के रूप में प्रकट हुई है।

देवकी –

भारतीय आर्य–संस्कृति में नारी के त्याग एवं समर्पण की महिमा अपार होने के साथ ही उसमें परिस्थितियों से जूझने का साहस भी है। 'द्वापर' खण्डकाव्य की देवकी भी मातृत्व की विलक्षण भूमिका में स्थापित है। "वह एक ऐसी नारी है जो जैविक माँ बनकर भी मातृत्व–सुख प्राप्त नहीं कर पाती है।" 3 कवि गुप्त की देवकी में वात्सल्य के साथ पति के प्रति भी पूर्णतः समर्पण एवं सहयोग की भावना है। नारी के दाम्पत्य जीवन की श्रेष्ठता का प्रमाण यह है कि वह कभी भी अपने पति को कष्ट में देखना नहीं चाहती है। देवकी अपने पति वासुदेव की विपत्ति की जिम्मेदार स्वयं को मानती है और अपने पति से कहती है –

" नाथ, कंस के हाथ उसी दिन, यदि मैं मारी जाती,
यह मरने से अधिक आपदा, तो तुम पर क्यों आती ? " 4

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर पृ. सं. 19
2. वहीं, पृ. सं. 15
3. हे भगवान ! हो गई व्यर्थ वह, प्रसव वेदना सारी,
   लेकर यह अनुभूति–चेतना, कहाँ रहे ये नारी।
   मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर पृ. सं. 61
4. वहीं, पृ. सं. 56

'द्वापर' खण्डकाव्य की देवकी की व्यथा बहुमुखी है। वह अपने राज्य और पति–सुख से वंचित होकर बन्दी–जीवन यापन कर रही है, जो भारत माता के सच्चे सपूत भारतीयों के बन्दी जीवन का प्रतीक स्वरूप है। इन बंदियों के संबंध में देवकी की वेदना इस प्रकार है–

" बन्दी जो जीवित रह कर भी, जीवन से वंचित है,
धन से, जन से और स्वयं जो, निज तन से वंचित है। " 1

देवकी की वेदना एवं आक्रोश अपने भाई के प्रति न होकर एक आततायी राजा कंस के प्रति है। क्योंकि ऐसे बर्बर, अत्याचारी एवं अन्यायी राजा से सम्पूर्ण प्रजा त्रस्त रहती है। कंस के रूप में ऐसे राजा को धिक्कारती हुई वह कहती है–

" धिक् तुमको, ऐसे राजा को, वह है जो स्वेच्छाचारी,
अविचारी, अन्यायी, बर्बर, केवल पशुबल–धारी। " 2

कवि गुप्त की देवकी दासता के बंधन में बँधी हुई भारत की शोषित जनता का प्रतीक बनकर उभरी है। राजभक्ति भारत की जनता का आदर्श है। लेकिन स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध शोषित–जनता समय–समय पर आवाज उठाती है। 'द्वापर' खण्डकाव्य में देवकी के माध्यम से कवि ने निरंकुश राजतंत्र में पीड़ित एवं शोषित जनता को जाग्रत किया है। वह जनता के रूप में मातृभूमि को संबोधित करती हुई कहती है –

" अरी भूमि, तू आज कहाँ है? नहीं जानती यह मैं,
मूक न रह, ले मेरी वाणी, बोल उठूँ क्या कह मैं। " 3

इस प्रकार कवि गुप्त ने अपने 'द्वापर' खण्डकाव्य में देवकी के माध्यम से नारी चेतना के संदर्भ में नवीन सामाजिक एवं मानव मूल्यों से युक्त नवीन चेतना के प्रतिपादन में पूर्ण सतर्कता का परिचय दिया है।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर पृ. सं. 57

2. वहीं, पृ. सं. 59

3. वहीं, पृ. सं. 60

'शक्ति' में नारी चेतना–

साहित्य में वर्णित नारी चित्रण में अपनी लेखनी से शक्ति का संचार करने वाले कवि गुप्त का 'शक्ति' खण्डकाव्य 'मार्कण्डेय पुराण' पर आधारित हैं। इस पुराण में 'शक्ति' को समस्त देवताओं का समुच्चय माना गया है। इसी आधार पर यह शक्ति ब्रह्मा–रूप में सृष्टि की रचना करती है, लक्ष्मी–रूप में पालन करती है, और काली रूप में संहार करती है। कवि गुप्त शक्ति के प्रकट होने पर उसकी महत्ता एवं व्यापकता एक पूंज रूप में इस प्रकार चित्रित करते है–

" प्रकटी एक साथ वह सत्ता जो थी विश्व –विकीर्ण,
जिसके विना आज निर्जर थे जर्जर किंवा जीर्ण।
सब देवों की एक देवता हुई अहा ! अवतीर्ण,
मा भैः ! मा भैः ! गिरा गमन में होती थी उद्गीर्ण, " 1

'शक्ति' खण्डकाव्य में दुर्गा–शक्ति ही प्रमुख रूप से उद्घटित हुई है। शक्ति अथवा दुर्गा रूप में कवि गुप्त ने मातृत्व–रूप में व्याप्त ईश्वरत्व की व्यंजना की है। उनका यह शक्ति रूप लौकिक नहीं है, बल्कि दिव्यता और अलौकिकता से पूर्ण है, जो मानव–जीवन तथा जगत् को प्रेरित एवं समर्थ बनाने में पूर्णतः सक्षम है। वह दुर्गा–शक्ति दुष्टों का नाश कर अपनों का कल्याण इस प्रकार करती है –

" होती है जब–जब दैत्यों की बाँधा इसी प्रकार,
करती है तब–तब कल्याणी अपनों का उद्धार।
कभी कालिका कभी सुन्दरी नाम रूप गुण धार,
मूर्तिमती होकर हरती है महाशक्ति भय भार। " 2

संसार में 'शक्ति' की स्थापना एवं चेतना के मूल में कवि की यह अवधारणा है कि संसार में लोक–मर्यादा एवं मानव मूल्यों को नियंत्रित और व्यवस्थित करने के लिए दिव्य–शक्तियों का

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : शक्ति पृ. सं. 10

2. वहीं, पृ. सं. 15

आविर्भाव होता है। " दुर्गा के रूप में ईश्वर की उस मातृत्व–भावना का विकास दिखाया है जिससे संसार के समस्त प्राणियों का त्राण और परिरक्षण होता है। " 1

भारतीय आर्य–संस्कृति की यह धारणा है कि पुत्र चाहे कुपुत्र हो जाए लेकिन माता कभी कुमाता नहीं होती है। दुर्गा–शक्ति में भी यह भाव उसकी देव–दानव दोनों संतानों के प्रति है। लेकिन शक्ति–रूपा देवी माँ दानवों के प्रति वैसी ही कुटिल दृष्टि रखती है। जिस प्रकार कुमार्ग पर चलने वाली संतान का निग्रह तथा अवरोध एक लौकिक माता अपने हृदय में ममत्व रखते हुए रखती है। माता की दृष्टि में इस प्रकार के भाव में भी अपनी संतान का कल्याण ही निहित है–

" देवों के समान दानव भी उस माँ की संतान,
देख नहीं सकती है देवी उसके दोष महान।
पागल होने पर होता है ऐसा व्याकुल श्वान,
उसके वध में स्वयं उसी का कल्याण–विधान। " 2

शक्ति की परिकल्पना एवं चेतना में कवि गुप्त के मातृभूमि की रक्षा का दृढ संकल्प प्रधान हैं। राष्ट्रीय व सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए हमारी संगठित शक्ति को एक महान शक्ति के रूप में सदुपयोग किया जा सकता है। 'शक्ति' इसके लिए देशवासियों से आह्वान करती है–

" निज सिर उठा सके फिर वैरी, यह कैसा अन्धेर ?
न दो उन्हें अवकाश वीरवर, बढ़ों, करो मत देर।
अब के कोई भाग न पावे, बांधो सबको घेर ,
बन्दी बनें हैं हमारे सारे वासव, वरुण, कुबेर।" 3

इस प्रकार कवि गुप्त ने दुर्गा अथवा शक्ति के माध्यम से नारी–शक्ति को एक नवीन चेतना प्रदान कर पौराणिक संदर्भो में आधुनिक मूल्यों को उद्भासित किया है।

---

1 तू ही हम सब की शक्ति, तुझे है बारंबार प्रणाम,
तुझको पाकर सिद्ध हुए हैं हम सबके सब काम।
मैथिलीशरण गुप्त : शक्ति — पृ. सं. 17

2. वहीं, — पृ. सं. 15

3. वहीं, — पृ. सं. 10

'रामायण' आधारित खण्डकाव्यों में नारी चेतना

'पंचवटी' में नारी चेतना–

'पंचवटी' खण्डकाव्य रामभक्त वैष्णव कवि मैथिलीशरण गुप्त का प्रमुख अवदान है। इस खण्डकाव्य के मूल में गोस्वामी तुलसी–कृत रामचरितमानस की चेतना विद्यमान है। 'पंचवटी' में राम–लक्ष्मण–सीता के वनवासकाल का लघु प्रसंग वर्णित है। जिसमें रात्रि के समय प्रहरी लक्ष्मण को रावण की बहन शूर्पणखा सम्मोहित करने के प्रयास में असफल होकर राम की ओर आकर्षित होती है। राम की ओर से भी विफल होकर सीता को आतंकित करने का प्रयास करती है। लेकिन अंत में लक्ष्मण द्वारा विकृत कर दी जाती है। 'पंचवटी' खण्डकाव्य के प्रमुख नारी–पात्रों में चेतना इस प्रकार है–

सीता –

राघवप्रिया सीता नारी–जगत् में अपने पतिव्रत धर्म के कारण वंदनीय है। सीता अपने पति के अतिरिक्त परिवार के दूसरे लोगों के प्रति भी संवेदनशील हैं। वनगमन के अवसर पर लक्ष्मण के साथ चलने पर लक्ष्मण से पूछती है कि " प्रियतम राम तो पिता की आज्ञा से घर छोड़कर जा रहे है लेकिन तुम एक त्यागी, तपस्वी की भाँति क्यों घर छोड़कर जा रहे हो। "1 यह भाव सीता के हृदय की विशाल चेतना तथा संवेदनशीलता का प्रमाण है।

सीता एक सौन्दर्यशालिनी आदर्श पत्नी है। 'पंचवटी' खण्डकाव्य में वह नगरीय जीवन से दूर प्राकृतिक–सुषमा में अपने पति राम के साथ रहने को ही जीवन की श्रेष्ठ पूँजी मानती है। वनवास की अवधि पूर्ण होने पर सीता के मन में उत्सुकता का भाव क्षणिक भी नहीं रहता है। वह अपने पति राम से स्वच्छंद एवं सादगीपूर्ण जीवन की श्रेष्ठता को इस प्रकार प्रकट करती है–

" अब वह समय निकट ही है, जब अवधि पूर्ण होगी वन की,
किन्तु प्राप्ति होगी इन जन को, इससे बढ़कर किस धन की। " 2

---

1. सीता बोली कि ये पिता की आज्ञा से सब छोड़ चलें।
पर देवर तुम त्यागी बनकर क्यों घर से मुँह मोड़ चलें ?
मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी पृ. सं. 02
2. वहीं, पृ. सं. 07

'अकर्मण्यता मनुष्य को अधिकारों से वंचित करती हैं। इसी भाव को धारण करते हुए 'पंचवटी' खण्डकाव्य में सीता मनुष्य को कर्मशील होने का संदेश देती है। कवि गुप्त ने पंचवटी में उनके हाथ में खुरपी तथा कुदाली प्रदान की है। इस प्रकार सीता स्वावलंबी समाज की नारी बनकर वन में रहती है। लक्ष्मण ने अपनी भाभी सीता की कर्मशीलता एवं मेहनत को इस प्रकार वर्णित किया है–

" अपने पौधों में जब भाभी, भर भर पानी देती ।
खुरपी लेकर आप निराती, जब वे अपनी खेती।" 1

राजगृह में पोषित सीता वनवासी–जीवन में अत्यन्त सरलता एवं सादगी को अपनाती है। वह काननवासी स्वामी के साथ रहते हुए सूनापन महसूस करती है। सीता भी शूर्पणखा के रूप में एक नारी को जंगल में देखकर अपने आप को धन्य समझती है और कह उठती है।

" सीता बोली–वन में तुम–सी,
एक बहिन यदि पाऊँगी।
तो बातें करके ही तुमसे ,
मैं कृतार्थ हो जाऊँगी। " 2

वर्तमान के भौतिक वैज्ञानिक युग ने मानव जीवन को संचय की प्रवृत्ति की ओर उन्मुख किया है। लेकिन कवि गुप्त की सीता पति के साथ वन का कंटकमय–मार्ग चुनकर भी अपरिग्रह तथा स्वावलम्बन का आदर्श प्रस्तुत करती है। सीता वर्तमान दिखावें की प्रवृत्ति से कोसों दूर है। पंचवटी के वृक्षों को सींचती हुई सीता अपना पर्णकुटी आवास राजभवन के समान मानती है–

" मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया। " 3

इस प्रकार 'पंचवटी' खण्डकाव्य में सीता का चित्रण संक्षिप्त होते हुए भी आज के दौर में प्रासंगिक हैं। जो नर के साथ नारी में नवीन चेतना की उद्भावना करता हैं।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी पृ. सं. 15
2. वहीं, पृ. सं. 41
3. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 136

शूर्पणखा –

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने 'पंचवटी' खण्डकाव्य में शूर्पणखा की उद्भावना की है। 'पंचवटी' खण्डकाव्य के आंरभ में तामसी–वृत्ति से युक्त शूर्पणखा को पहली बार रात्रि के अंधकार में रात्रि–प्रहरी लक्ष्मण के सम्मुख लाया गया है। लक्ष्मण भी शूर्पणखा को अचानक देखकर कह उठते हैं –

" सुन्दरि, मैं सचमुच विस्मित हूँ, तुमको सहसा देख यहाँ,
ढलती रात अकेली अबला, निकल पड़ी तुम कौन कहाँ ? " 1

निशा में विचरण करने के कारण शूर्पणखा निशाचरी है। कवि गुप्त ने भी उसका एक राक्षस कुल में उत्पन्न राक्षसी का स्थान निर्धारित किया है। शूर्पणखा का ब्राह्य स्वरूप एक सामान्य, सुन्दर तथा सौम्य नारी का है। लक्ष्मण उसके रूप को देखकर निर्णय नहीं कर पाता है कि वह कौन है और अपनी शंका निवारण हेतु पूछता है –

" वनदेवी समझूँ तो वह तो, होती है भोली–भाली,
तुम्हीं बताओ कि तुम कौन हो, हे रंजित रहस्यवाली ? " 2

वस्तुतः राक्षस संस्कृति की मर्यादाएँ आर्य–संस्कृति से भिन्न होती है। इसका संबंध जब शूर्पणखा जैसी कामातुर नारी से जुड़ता है तो उसका परिणाम चारित्रिक और नैतिक विश्रृंखलता ही होता है। वह लक्ष्मण के प्रति अपनी वासनावृत्ति को इस प्रकार प्रकट करती है–

" रात बीतने पर है अब तो, मीठे बोल बोल दो तुम,
प्रेमातिथि है खड़ा द्वार पर, हृदय–कपाट खोल दो तुम। " 3

भारतीय संस्कृति में नारी की स्वच्छंदता को प्रमुखता से अपनाया गया है। परन्तु अतिबल नारी–स्वच्छंदता का पूर्णतः निषेध भी है। कवि की उदार–नारी भावना शूर्पणखा के संदर्भ में मौन है। क्योंकि शूर्पणखा में आचरण और नैतिक पवित्रता का सर्वथा अभाव है जो समाज के लिए घातक और हानिकारक है–

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी पृ. सं. 21
2 वहीं, पृ. स. 23
3 वहीं, पृ. स. 33

" मैं अपने ऊपर अपना ही, रखती हूँ अधिकार सदा।
जहाँ चाहती हूँ करती हूँ , मैं स्वच्छंद विहार सदा। " 1

इस प्रकार कवि ने शूर्पणखा का राक्षसी, अनार्य–संस्कृति में लिप्त उपहासजन्य रूप ही 'पंचवटी' खण्डकाव्य में उपस्थित किया है।

'महाभारत' आधारित खण्डकाव्यों में नारी चेतना
'सैरन्ध्री' में नारी चेतना–

समाज में पाप और असत् प्रवृत्तियों को फैलाने वाले व्यक्तियों का एक दिन विनाश निश्चित है। कवि मैथिलीशरण गुप्त के 'सैरन्ध्री' खण्डकाव्य में कीचक का विनाश इसी भावना का द्योतक है। नारी का माता के रूप में जिस प्रकार मातृत्व एवं उदारता का संगम होता है उसी प्रकार पत्नी–रूप में उसके आचरण में प्रेम, समर्पण, कर्त्तव्य–भावना, त्याग और सहिष्णुता की भावना का पूंज होता है। 'सैरन्ध्री' खण्डकाव्य की सैरन्ध्री को कवि गुप्त ने श्रद्धा और तेजस्वी नारी के रूप में स्थापित किया है। डॉ. सरला दुआ के अनुसार "महाभारतकालीन काव्य की नारियों में सैरन्ध्री ही ऐसी नारी है जिसने साहित्य और समाज को जाग्रत करने के साथ–साथ नैतिक आदर्शों की शिक्षा दी है। " 2

कवि गुप्त ने सैरन्ध्री के पारम्परिक रूप और चरित्र की रक्षा करते हुए नारी–हृदय के स्पंदन को व्यक्त किया है। वह कृष्ण जैसे भाई की बहन, पाँच वीर–पाण्डवों की पत्नी, कुरुवंश की वधू आदि होते हुए भी " धर्म की रक्षार्थ अति साधारण नारी रूप में दासी बनकर, मलीन वस्त्र धारण करती है। " 3

सैरन्ध्री अपने परिवार के साथ विराट के दरबार में कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करती है। उसके आचरण में चारित्रिक दृढ़ता और नैतिक बल है। सैरन्ध्री को कीचक पाना चाहता है लेकिन वह सतीत्व–धर्म का पालन करते हुए अपने नारीत्व की रक्षा करती है। वह कीचक के हीन पुरूषार्थ को दुत्कारते हुए कहती है –

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी — पृ. सं. 21

2 डॉ. सरला दुआ : आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी — पृ. सं. 49

3 यद्यपि दासी बनी, वस्त्र पहने साधारण,
मलिन वेश द्रौपदी किये रहती थी धारण।
मैथिलीशरण गुप्त : सैरन्ध्री — पृ. सं. 05

" सावधान हे वीर, न ऐसे वचन कहो तुम,
मन को रोको और संयमी बने रहे तुम।
है मेरा भी धर्म, उसे क्या खो सकती हूँ ?
अबला हूँ, मैं किन्तु न कुलटा हो सकती हूँ। " 1

मानव–समाज पर जब–जब संकट आया है, तब–तब धरती से लेकर स्वर्ग तक किसी न किसी रूप में नारी ने उसकी रक्षार्थ अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। सैरन्ध्री भी संकट में अपने और पांडवों के सम्मान को सुरक्षित कर आत्मरक्षा और धर्म रक्षा स्वयं करती है। कवि गुप्त की यह नारी मूक होकर कुशासन और अनुशासन को स्वीकार नहीं करती है। वह कीचक को सावचेत् करती हुई पाण्डवों की भांति मानव धर्म की अपनाने का प्रेरणा देती हुई कह उठती है–

" मेरे पति हैं पाँच देव अज्ञात निवासी,
तन–मन–धन से सदा उन्हीं की हूँ मैं दासी।
बड़े भाग्य से मिले मुझे ऐसे स्वामी हैं,
धर्म–रूप हो सदा वे धर्म के अनुगामी है। " 2

मानव–मर्यादा के अनुसार आचरण नारी का श्रेष्ठ सोपान है। सैरन्ध्री भी व्यावहारिक, धार्मिक, न्यायिक और वैचारिक व्यवस्था को मर्यादानुकूल संतुलन की कसौटी पर कसती है। कीचक के बलशाली होने पर भी मर्यादाहीन होने व नारी को सताने के कारण सैरन्ध्री की दृष्टि में उसका कोई स्थान नहीं है। वह कीचक को कीचड़ की भांति समझती हुई कहती है–

" होकर उच्च पदस्थ नीच–पद–गामी है वह,
पाप–दृष्टि से मुझे देखता, कामी है वह।
नर होकर भी हाय! सताता है नारी को,
अनाचार कभी उचित है वलधारी को ? " 3

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : सैरन्ध्री पृ. सं. 07
2 वहीं, पृ. सं. 07
3 वहीं, पृ. सं. 16

सैरन्ध्री एक स्वाभिमानी नारी है। वह कौरवों द्वारा सभा में अपमानित होकर भी दर्प और स्वाभिमान का परिचय देती है। उसी प्रकार कीचक के हाथों अपमानित होकर भी वह चण्डिका की भाँति हुंकार भरकर कह उठती है –

" अरे नराधम, तुझे नहीं लज्जा आती है ?
निश्चय तेरी मृत्यु मुण्ड पर मँडराती है।
मैं अबला हूँ किन्तु न अत्याचार सहूँगी,
तुझ दानव के लिए चण्डिका बनी रहूँगी। " 1

वर्तमान समय में नारी का अपमान, हत्या, छेड़छाड़, दुष्कर्म की घटनाएँ दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। शासन द्वारा ऐसी घटनाओं पर नियंत्रण नहीं हो रहा है। शासक वर्ग यदि इन घटनाओं को रोक नहीं पाता है तो उसे सत्ता में बने रहने का कोई हक नहीं है। सैरन्ध्री राजा विराट की सभा में निर्भय होकर ऐसे शासन पर चोट करती हुई कहती है। सामर्थ्यवान राजा ही प्रजा का सही मायने में पालनहार होता है, अन्यथा ऐसे राजा को राज करने का कोई अधिकार नहीं है।

'वन–वैभव' में नारी चेतना–

द्रौपदी –

'महाभारत' के लघु–प्रसंग पर आधारित 'वन–वैभव' खण्डकाव्य में कवि मैथिलीशरण गुप्त ने इस सत्य से साक्षात्कार कराया है, कि असत् मार्ग पर चलने का परिणाम सदैव विनाशकारी होता हैं। "वन में शान्तिपूर्वक रहते पाण्डवों को दुःख पहुँचाने के लिए दुर्योधन आदि कौरव कुटिल बन जाते है।" 2 लेकिन पाण्डवों के अनुसार वन में रहने वाली द्रौपदी के मन में नारी सुलभ–चेतना धर्म के अनुसार आचरण करने में सहायक बनती है। कवि गुप्त ने द्रौपदी के वनवास–जीवन में धर्म एवं आचरण के निर्वहन को सर्वोपरि मानती है, उनकी दृष्टि में हम नारियों की ऐसी ही स्थिति है देखिए–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : सैरन्ध्री — पृ. सं. 20
2. आज पांडव वनवासी है, पास वे दास न दासी है।
   न भोगी, न विलासी है, उदासी है, संन्यासी है।
   मैथिलीशरण गुप्त : वन–वैभव — पृ. सं. 05

" सदा पति—सेवा करती रहती है,
अतिथियों का श्रम हरती है।
भव्य भावों को भरती है,
धर्म्म अपना आचरती है। " 1

द्रौपदी भारतीय नारी के आदर्श, धर्म और कर्त्तव्य के साथ नवीन—मूल्यों को स्थापित करती है। एक नारी को भरी सभा में नग्न करने से बढ़कर और क्या अपमान हो सकता है ? लेकिन द्रौपदी मौन होकर, चुपचाप आँसुओं की घूँट पीकर सहन करती है। जो नारी की सहनशीलता की पराकाष्ठा है। कवि ने द्रौपदी के रूप में नारी के धैर्य एवं मौनालाप को इस प्रकार उकेरा है—

" बैठती है वह जब चुपचाप,
अचानक चढ़ते हैं भ्रू—चाप।
ओंठ करते हैं मौनालाप,
उमड़ते हैं फिर आँसू आप। " 2

कविवर गुप्त ने द्रौपदी के माध्यम से सद्गृहस्थ एवं सत्कर्मों की शिक्षा प्रदान की है। द्रौपदी का मानना है कि व्यक्ति को उसके कुकर्मों का दण्ड मिलना चाहिए। यदि दूसरा व्यक्ति ऐसे लोगों की सहायता करें तो वह उसका मानव धर्म नहीं हैं, क्योंकि अपराधी का साथ देने वाला भी अपराधी होता है। द्रौपदी कौरवों को राजा चित्ररथ द्वारा बंदी बनाए जाने पर पाण्डवों से कौरवों की सहायता करने पर कठोर वाणी में कहती है—

" करें यदि अन्य मनुज दुष्कर्म,
तजें तो हम क्यों अपना धर्म ?
धैर्य ही धर्म्म—परीक्षा है,
वही वीरों की दीक्षा है। " 3

इस प्रकार कवि गुप्त ने द्रौपदी में नारी—जीवन के समग्र आदर्श, उसके जीवन की सार्थकता के सभी अवयव विद्यमान किए हैं। जो नारी में एक नवीन चेतना का संचार करते हैं।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : वन—वैभव पृ. सं. 06

2 वहीं, पृ. सं. 06

3 वहीं, पृ. सं. 18

'वक संहार' में नारी चेतना–

कुन्ती –

'वक संहार' खण्डकाव्य में कवि गुप्त ने माता कुन्ती के मातृत्व का एक अभूतपूर्व पक्ष उभरा है। भारतीय संस्कृति में मातृत्व का भाव मानव–मूल्यों में सबसे उच्च शिखर पर प्रतिष्ठित हैं। कुन्ती भी ब्राह्मण परिवार से वक–राक्षस को भोजन के रूप में परिवार के एक सदस्य के जाने पर दुःखी देखकर वह उनके संकट में साथ देने का संकल्प रखती है। यह भाव माता कुन्ती के मातृत्व एवं परोपकार को दर्शाता है। चिन्तित द्रौपदी ब्राह्मण परिवार से पूछ उठती है –

आपत्ति क्या तुम पर अचानक आ पड़ी ?
क्या भय उपस्थित है कहो,
आत्यमीय हूँ में भी अहो!
जो कर सकूँ , सन्नद्ध हूँ मैं हर घड़ी। " 1

कुन्ती का पाँच पुत्रों की भाव–विह्ल माता का वेश सामान्य स्त्रियों के पुत्राभिमान से अधिक स्वयं का सजग होना है। उसमें क्षत्राणी का दर्प व तेज होने के साथ परिस्थितिगत विवशताओं के प्रति सजगता है। 'वक' के अत्याचार से क्रुद्ध वह शासन–व्यवस्था पर प्रहार करती हुई स्वयं कमजोर शासक के बारे में पूछ उठती है –

" मुझसे कहो, राजा यहाँ का कौन है ?
कुछ यत्न वह करता नहीं
कर्त्तव्य से डरता नहीं ?
मरती प्रजा है और रहता मौन है ?" 2

कवि गुप्त के 'वक संहार' खण्डकाव्य में माता कुन्ती संघ–शक्ति पर बल देती है। उनका विचार है कि यदि प्रजा एक साथ संगठित होकर एक–एक मुट्ठी धूल भी वक

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : वक संहार पृ. सं. 11

2 मैथिलीशरण गुप्त : वक संहार पृ. सं. 17

जैसे राक्षस पर डाले तो वह भी धूल में मिल सकता हैं। वह प्रजा से अपनी भीरुता त्यागने और संघर्ष का संदेश देती हुई कहती है–

" वह भीरु है, फिर ठीक ही यह कष्ट है।
डालें नहीं तो यदि अभी,
भर धूल मिट्टी भर सभी,
तो धूल में मिल जाय वक, सो स्पष्ट है। " 1

'हिडिम्बा' खण्डकाव्य में भी माता कुंती के मातृत्व का प्रमुख पक्ष उभरा है। वह अपने पाँचों पुत्रों की भयानक विपत्ति में सामान्य नारी की भाँति जंगल में अपना जीवन–यापन करती है। कवि गुप्त ने कुन्ती के सामान्य नारी–रूप में आत्मोत्सर्ग को इस प्रकार लिपिबद्ध किया है–

" रानी न भी होती वह तो भी ग्रह–नारी थी,
घन–वन–योग्य न थी, चिर सुकुमारी थी।
पर उसको भी आज दुःख न था अपना,
पुत्रों की विपत्ति का ही जी में था कलपना। " 2

कवि गुप्त ने माता कुन्ती के मातृत्व–पक्ष को उदारता के साथ उभारा है। पाँच पुत्रों के प्रति उनका मातृत्व भाव समान रूप से सभी पुत्रों के प्रति है। वह एक ऐसी आदर्श नारी है, जो सबको साथ लेकर जीवन यापन करती है। कुन्ती की दृष्टि में शासक व सेवक सभी समान है। सेवकों के प्रति उनका उदारता व समानता का भाव इस प्रकार है–

" नित्य भोग–व्यंजन जनों को जो जिमाती थी,
सेविकाओं को भी संग बैठाकर खाती थी।
राजपुत्री, राजरानी, राजपुत्र–जननी,
धूलि–लंठिता है आज आर्त्त आत्महननी। " 3

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : वक संहार पृ. सं. 12

2 मैथिलीशरण गुप्त : हिडिम्बा पृ. सं. 07

3 वहीं, पृ. सं. 08

कुन्ती एक ऐसी आदर्श नारी है जो मानवीय शोषण एवं अहंकार से हमेशा दूर रहने वाली है। वह वर्तमान समय में समाज में होने वाले नारी के शोषण से आर्त्त है। कुन्ती का मानना है कि आज नर द्वारा नारी की सुरक्षा एवं संरक्षा को अपनाना ही होगा। वह राक्षस हिडिम्ब से भी घृणा एवं घात की प्रवृत्ति को छोड़कर मानवीय गुणों को अपनाने की प्रेरणा इस प्रकार प्रदान कहती है –

" वैरी की बहन भी तू स्त्री है, त्राण हो तेरा,
अपने समान हमें क्यों न प्राण हो तेरा ?
आर्या, शंका मुझसे करें न किसी बात की,
हम में प्रवृत्ति नहीं ऐसे घृण्य घात की। " 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने माता कुन्ती के माध्यम से नारी में एक नवीन चेतना की स्थापना की है, जो सबको साथ लेकर सभी में मानवीय गुणों की पुर्नस्थापना पर बल देती है।

ब्राह्मण–पत्नी –

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'वक संहार' खण्डकाव्य में ब्राह्मण–पत्नी के माध्यम से नारी–जागरण एवं नारी चेतना का स्वर मुखरित किया है। कवि ने इस नारी–पात्र के माध्यम से नर के उस भ्रम को तोड़ा है कि संकट में केवल पुरुष ही त्याग करते है। कवि गुप्त की यह नारी अपने पति से पहले संकट का सामना करने में अपना धर्म समझती है, और अपने पति से कह उठती है–

" जीती रहूँ मैं और जाकर मरो,
इससे अधिक परिताप की,
क्या बात होगी पाप की ?
कहकर इसे मुझको न धर्मच्युत करो।" 2

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : हिडिम्बा पृ. सं. 15

2 मैथिलीशरण गुप्त : वक संहार पृ. सं. 17

भारतीय नारी त्याग, समर्पण एवं तितिक्षा की प्रतिमूर्ति होती है। ब्राह्मण–पत्नी भी जब अपने पति को वक के भोजन हेतु जाने से रोके जाने पर अपने पति के समक्ष अपने अकाट्य तर्क परिवार की रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर समर्पण शील भाव से इस प्रकार प्रस्तुत करती है–

" मेरे विना अब हानि क्या संसार की ?
इस हेतु जाने दो मुझे,
यह पुण्य पाने दो मुझे,
जिससे सुरक्षा हो सके परिवार की। " 1

इस प्रकार कवि गुप्त की नारी ब्राह्मण–पत्नी अपने त्याग एवं समर्पण से नारी–चेतना को र्स्पश करती है–

'हिडिम्बा' में नारी चेतना–

'संवेदना' वह मानव–मूल्य हैं, जिसके बीज हिंसक और क्रूर व्यक्ति में भी अन्तर्हित रहते है। मनुष्य की महानता में इन गुणों का योगदान सर्वोपरि होता है। 'संवेदना' के आधार पर ही व्यक्ति अपने में निहित दानवता के प्रक्षालन में भी सक्षम हैं। कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपने 'हिडिम्बा' खण्डकाव्य में हिडिम्बा का भाई 'हिडिम्ब अपने परम्परागत राक्षस रूप में विचित्र है। "उसकी चेष्टाएँ, गर्वोक्तियाँ, मानव–रक्त–पिपासा सभी दानवोचित और परम्परागत है। " 2

हिडिम्बा –

कवि गुप्त ने प्रस्तुत 'हिडिम्बा' खण्डकाव्य में हिडिम्बा को एक सामान्य मानवीय नारी के रूप में उद्धृत किया है। उनका मानना है कि शारीरिक बनावट के आधार पर दानव व मानव का भेद न होकर कर्म एवं स्वभाव के आधार पर होता है। हिडिम्बा के चरित्र के आधार पर भीम ने इस परम्परागत धारणा एवं भ्रम को इस प्रकार तोड़ा है –

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : वक संहार — पृ. सं. 18

2 आ गया उसी क्षण 'हिडिम्ब यमदूत–सा,
भीरुओं की कल्पना का सच्चा वह दूत सा।
मैथिलीशरण गुप्त : हिडिम्बा — पृ. सं. 12

" फूटा जिसे देख यहाँ पत्थर से सोता है,
ऐसा रस–रूप यदि राक्षसी का होता है।
तो थी राक्षसों के प्रति मेरी भ्रान्त धारणा,
तन्वि, तुझे योग्य नहीं यह वन–चारणा। " 1

हिडिम्बा यद्यपि एक राक्षस–कन्या है, किन्तु मानवीय गुणों से परिपूर्ण नारी हैं। वह 'पंचवटी' की शूर्पणखा से भिन्न एक प्रबुद्ध, सुशील और स्पृहणीय नारी के रूप में नवीन चेतना से युक्त है। उसकी वैचारिकता और सहृदयता उसे दानवीय परिवेश से मानवीय धरातल पर ले आती है। वह भीम के समक्ष अपनी मानवीय–ममता को धारण कर, रक्षा भाव से कह उठती है–

" जैसे तुम शूर्पणखा मुझको न कहते!
भाते किन्तु कैसे तुम भव्य जो न रहते ?
देख के अपूर्व तुम्हें आई मुझे ममता,
रक्षिका तुम्हारी बनी आप मेरी क्षमता। " 2

भारतीय नारी में मानवोचित संवेदना व सरलता केवल शरीर–भोग–वृत्ति पर आधारित न होकर प्रेम व मानवता पर आधारित होती है। हिंसा और क्रूरता की आश्रयभूता हिडिम्बा में जब प्रेम का स्फुरण होता है तो वह सहज, भावुक व संवेदनशील सहृदय हो जाती है। उसका मानना है कि जीवन में जिससे प्रेम किया उसी के हाथों मरना भी श्रेयस्कर है। वह भीम से समर्पित एवं प्रेम–भाव से कह उठती है–

" प्रस्तुत मैं, प्यार किया मैंने जिसे एक बार,
उसके करों से मरना भी मुझे अंगीकार ।
मानती हूँ, किन्तु मिटा मेरा मतिभ्रम है,
राक्षसों से न्यून क्या नरों का गतिक्रम है। " 3

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : हिडिम्बा पृ. सं. 10
2 वहीं, पृ. सं. 11
3 वहीं, पृ. सं. 14

कवि गुप्त की हिडिम्बा एक ऐसी राक्षसी–नारी है जो राक्षसी होने पर भी सहज–सुन्दरी, सहज गुणशील समन्विता, बुद्धिविवेक से परिपूर्ण है। उसके हृदय की संवेदनशीलता बनावटी न होकर उसकी मूल–जीवन–वृत्ति है। वह अपने हृदय में राक्षसी–वृत्ति जैसे विनाश का नहीं अपितु नव–निर्माण का भाव रखती है। अपने विनाशक दानव–भ्राता की मौत के बाद सृष्टि में नव–निर्माण संदेश देती हुई भीम से अपने जीवन–स्वप्न को प्रकट करती हुई कहती है–

" मैं यहाँ की मिट्टी से सुवर्ण ही बनाऊँगी।
खींच कुछ रेखाएँ गुहा में छोड़ जाऊँगी।।
सृजती प्रकृति और पुरुष सजाता है,
यद्यपि कला–कृति प्रकृति से ही पाता है। " 1

हिडिम्बा रूप, गुण व शील की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। वह भीम की वासना–वृत्ति को परिमार्जित करती हुई अपने वैवाहिक संबंध द्वारा सामाजिक मर्यादाओं और नैतिकता को अपनाती है। उसका प्रेम राक्षसी–वृत्ति की भाँति वासनाजन्य तथा चरित्र पतनोन्मुखी न होकर एक आदर्श नारी की भाँति संस्कारित है। हिडिम्बा राक्षसी होने पर भी एक नारी के रूप में अपने सद्गुणों को माता कुन्ती के समक्ष इस प्रकार प्रकट करती है–

" होकर मैं राक्षसी भी अन्त में तो नारी हूँ,
जन्म से मैं जो भी रहूँ, जाति से तुम्हारी हूँ।
कर सकती हो अविश्वास कैसे मेरा तुम ?
तोड़ दिया मैने अम्ब, छोड़ो क्षुद्र घेरा तुम। " 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने हिडिम्बा के माध्यम से नारी में उत्पन्न मानवीय गुणों का राक्षस–कुल में भी उत्कर्ष दिखाकर एक नवीन नारी चेतना का संचार किया है। उन्होंने हिडिम्बा को आदर्शवादी संकल्पना से सम्पृक्त कर एक नवीन चेतना उत्पन्न की है कि व्यक्ति जन्म से महान न होकर कर्मों से महान होता है।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : हिडिम्बा पृ. सं. 17

2 वहीं, पृ. सं. 33

ऐतिहासिक खण्डकाव्यों में नारी चेतना–

'रंग में भंग' में नारी चेतना –

भारतीय संस्कृति के रक्षक अपने पूर्वजों की उपलब्धियों और परम्पराओं के प्रति विशेष निष्ठावान, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'रंग में भंग' खण्डकाव्य में भारतीय मध्यकालीन इतिहास के शौर्यपूर्ण आदर्शों, राष्ट्र–गौरव और संस्कृति प्रेम को अभिभूत किया है। भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध राजपूतों की आन–वान, सत्यप्रियता, संकल्प–शक्ति तथा शूरवीरता में राजपूत–रानियों का योगदान भी कम नहीं है। कवि गुप्त ने राजपूत–रानियों के योगदान को 'रंग में भंग' खण्डकाव्य की प्रमुख नारियों के योगदान द्वारा इस प्रकार वर्णित किया है–

हाड़ा रानी –

आधुनिक हिन्दी साहित्य में राष्ट्र–गौरव और राष्ट्रप्रेम को सर्वाधिक महत्व देने वाले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने हाड़ा–रानी के माध्यम से राष्ट्रीयता एवं स्वाभिमान की भावना से प्रत्यक्ष साक्षात्कार कराया है। कवि गुप्त की हाड़ा–रानी एक ऐसी वीर नारी है, जिसमें मर्यादा तथा त्याग–भावना अपने चरमोत्कर्ष पर है। कवि गुप्त ने "हाड़ा–रानी को एक जगमगाती हुई अद्भूत, अनुपम ज्योति के समान अपने वंश में प्रकाशमान तरुणी माना है।" 1

प्रस्तुत काव्य में हाड़ा–रानी चित्तौड़ के राणा खेतल की नवविवाहित पत्नी है। राणा खेतल का, कवि बारू की अतिशयोक्तिपूर्ण उक्ति के बाद हुए युद्ध में वीरगति को प्राप्त होने पर बूंदी राजकुमारी हाड़ा–रानी पर ऐसा संकट आ गया, जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। एक नारी का शादी के तुरंत बाद ही विधवा हो जाना, इससे बढ़कर उसके लिए और क्या संकट हो सकता है। इस नारी–संकट का कारण पुरुषों का आपसी दंभ एवं अहं–भाव है। कवि गुप्त ने हाड़ा–रानी के उजड़ते स्वप्न–संसार को इस प्रकार वर्णित किया है–

---

1 जगमगाती एक अनुपम ज्योति धारण कर नई ,
पाणिपीड़न योग्य वज जब कुछ दिनों में हो गई।
मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग पृ. सं. 04

" वृत्त उस विधवा वधू का शोक–कारक है निरा,
फूलने पर पहुँचते ही वज्र बल्ली पर गिरा।
स्वप्न–सा संसार उसको हो गया सहसा सभी,
शत्रुओं को भी न दे भगवान ऐसा दुःख कभी। " 1

भारतीय आर्य–संस्कृति में 'पतिव्रत धर्म नारी के लिए सबसे बढ़कर है। हाड़ा–रानी भी अपने पति की मौत पर, पति–निष्ठा,सती–धर्म और राजपूती–मर्यादा को रेखांकित करती है। उसका यह विश्वास इतनी दृढ़ता धारण कर लेता है कि वह ईश्वर तक को कह देती है कि उसे भूमि–सुख नहीं तो स्वर्ग सुख अवश्य मिलेगा। वह पूर्ण आत्मविश्वास से कहती है कि कभी भी कोई आर्य–कन्या का अहित नहीं कर सकता है–

" वाम होकर हर सकेगा सुख न मेरा दैव! तू,
हो भले ही विश्व में बॉधक विशेष सदैव तू।
भूमि–सुख न सही, मिलेगा स्वर्ग–सुख मुझको अभी,
आर्य्य–कन्या का अहित कोई न कर सकता कभी।" 2

समाज में विधवा और वियोगिनी नारियाँ अपने जीवन में परम्परागत बंधनों से सहज प्रभावित होती है। कवि गुप्त ने अपने काव्य में इन विधवाओं की दयनीय स्थिति को उजागर किया है। वीर क्षत्राणी हाड़ा–रानी तत्कालीन राजसी विधवा जीवन को सामाजिक बंधन एवं पाबंधियों के कारण नरक के समान मानती है। वह विधवा जीवन के बंधनों पर प्रहार करते हुए अपने पिता से विधवा जीवन की अपेक्षा मृत्युवरण अधिक श्रेयस्कर मानती हुई कहती है –

" प्राण रखने के लिए जो आप है करते मुझे ?
किन्तु अब क्या सुख मिलेगा देह के रहते मुझे,
फिर भला जीकर नरक के दुःख को सहना भला ?
या विनश्वर देह तज कर स्वर्ग में रहना भला ? " 3

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग पृ. सं. 12

2 वहीं, पृ. सं. 13

3 वहीं, पृ. सं. 14

भारतीय आर्य–नारियों के त्याग एवं उत्कर्ष की भावना सम्पूर्ण विश्व में विख्यात है। हाड़ा–रानी की संकल्प शक्ति और धर्म की रक्षार्थ प्राण देना भारतीय नारी का वह प्रतिरूप है, जहाँ वह अशक्त और प्रतिबद्ध होकर भी असीम तथा अनंत शक्ति–रूप में भारतीय नारियों में त्याग को परणित करती है। कवि गुप्त की हाड़ा–रानी का त्याग देखते ही बनता है।

" धन्य है तू आर्य–कन्ये! धन्य तेरा धर्म्म है,
देवि तू! स्वर्गीय है, स्वर्गीय तेरा कर्म है।
प्राण देना धर्म्म पर तेरे लिए क्या बात है।
कीर्ति भारत की तुझी से विश्व में विख्यात है। " 1

" वर्तमान समय में भी ऐसी ही त्याग एवं साहस की साक्षी बनी है 26.11. 2008 के मुम्बई आंतकी हमले के बाद आतंकी कसाब को फांसी के फंदे तक पहुँचाने वाली सबसे छोटी उम्र की चश्मदीद गवाह देविका रोटावान। वह आतंकी हमले के समय 9 वर्ष की थी। जो मूलरूप से राजस्थान के पाली के सुमेरपुर की रहने वाली है। आतंकियों की गोली लगने से पैरों के क्षतिग्रस्त होने पर छह ऑपरेशन करवाने पर भी बैसाखियों के सहारे कोर्ट में अहम् गवाही देकर देविका ने अपने साहस एवं शौर्य का परिचय दिया था। " 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने हाड़ा–रानी के माध्यम से नारी समाज में एक नवीन चेतना का संचार किया है। उनकी नारी–चेतना की सार्थकता इस बात में है कि वे पुरातन मूल्यों को आधुनातन मुख्यधारा में उनकी नारी के अनुरूप बना देते है।

'विकट भट' में नारी चेतना –

कवि गुप्त ने जोधपुर राज्य के इतिहास से गृहीत कथा–कथ्य से युक्त 'विकट भट' खण्डकाव्य में भारत के मध्यकालीन राजपूतों की आन, दर्प, शौर्य एवं संकल्प–शक्ति के प्रति कवि ने तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संकल्पों की छवि प्रस्तुत की है। इस संबंध में डॉ. टी. रवीन्द्रन का मत इस प्रकार है "तत्कालीन ऐतिहासिक खण्डकाव्यों का वर्ण्य राजपूती शौर्य, निर्भीक

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग पृ. सं. 16

2 दैनिक भास्कर : जयपुर संस्करण 'दिनांक 26/11/17 का लेख पृ. सं. 02

वचनवद्धता, प्रतिज्ञा–पालन, बलिदान–भावना, स्पष्टवादिता तथा सत्य निष्ठा की भावना है।"1 इन्हीं भावनाओं से परिपूर्ण 'विकट भट' में सवाईसिंह की माता की चेतना इस प्रकार है–

सवाईसिंह की माता–

'विकट भट' खण्डकाव्य की नारियों में सवाईसिंह की माता का लघु–चित्रण कवि गुप्त ने आधुनिक संदर्भ में किया है। वह तेजस्वी,क्षत्राणी वीरोचित दर्प से सम्पन्न ऐसी माता है जो अपने राज्य की रक्षार्थ अपने पुत्र को विजयसिंह जैसे क्रूर एवं अत्याचारी शासक के द्वारा मृत्यु हेतु बुलाने पर भेज देती है। वह अपने पुत्र सवाईसिंह से अनिष्ट की आशंका व्यक्त करते हुए स्वयं कहती है–

" बेटा, तुझे राजा ने बुलाया है,
न जाने से भी तू न बचेगा। " 2

माता द्वारा पुत्र को मातृभूमि की रक्षार्थ बलिदान हेतु भेजकर एक ओर उनका वात्सल्य–विचलित ह्रदय करुण क्रंदन करता है तो दूसरी ओर उसका क्षात्र–दर्प, स्वाभिमान और तेज अपने साहस एवं शौर्य के लिए गौरवन्वित होने की अनुभूति भरता है। सवाईसिंह की माता धैर्य के साथ अपने पुत्र को पूर्वजों के त्याग एवं सर्मपण की प्रेरणा देकर शीघ्र ही रणभूमि में भेजते हुए कह उठती है–

" वत्स जाने में भी मुझे क्षेम नहीं दीखता,
ससुर गए है और स्वामी गए साथ ही।
मेरे लाल तू भी चला कैसे धरुँ धैर्य मैं ?
रोने तक को भी अवकाश मुझे हैं नहीं। " 3

'विकट भट' काव्य में सवाईसिंह की माता का साहस एवं राष्ट्र–प्रेम उसे चेतनाशील नारियों की अग्रिम पंक्ति में स्थापित करता है। वह अपने पुत्र को पूर्वजों के साहस, प्रतिज्ञापालक, शौर्य व बलिदानी रास्ते पर चलने का दृढ़ संकल्प इस प्रकार धारण करने का संदेश देती है –

---

1 डॉ. टी. रवीन्द्रन : आधुनिक हिन्दी काव्य में दलित वर्ग पृ. सं. 156

2 मैथिलीशरण गुप्त : विकट भट पृ. सं. 08

3 वहीं, पृ. सं. 09

" तुझको भी प्राणहीन देख सकती हूँ मैं
किन्तु मानहीन देखा जायेगा न मुझसे।
करना वही जो कहा तेरे पितामह ने,
भूल मत जाना जिस बात पर वे मरे। " 1

'सिद्धराज' में नारी चेतना–

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'सिद्धराज' खण्डकाव्य में सिद्धराज जयसिंह द्वारा किए गए अनेक युद्धों का वर्णन राष्ट्रीय एकता और नारी के चरितोत्कर्ष के संदर्भ में किया है। कवि का " मध्यकालीन राजपूत वीरों की राजपूती आन–वान, शूरवीरता, जाति–गौरव, संकल्प–शक्ति और चारित्रिक–उत्कर्ष की झलक को प्रस्तुत करना मुख्य प्रतिपाद्य है। "2 इस खण्डकाव्य में रानकदे, मीलनदे तथा कांचनदे आदि वीर नारियों द्वारा कवि ने नारी समाज में एक प्रगतिवादी नारी–चेतना का संचार किया है। जो इस प्रकार है –

रानकदे –

'सिद्धराज' खण्डकाव्य में रानकदे एक ऐतिहासिक वीर नारी होने के साथ ही सिन्धुराज की पुत्री है। परन्तु उसका जन्म ग्रह–दोषों में होने के कारण परिवार द्वारा त्यागने पर कुम्हार –दम्पति द्वारा पालन किया जाता है। रानकदे अनुपम सौन्दर्यवती होने के साथ–साथ बुद्धिमती और विवेकशील नारी थी। लेकिन सिन्धुराज उस कन्या को परम्परागत आमधारणा के अनुसार "ग्रह–दोष में उत्पन्न होने के कारण एवं वंश का दीपक बुझाने वाली नागकन्या के समान मानकर उसका त्याग कर देता है। " 3

राजा सिन्धुराज की इस धारणा के ठीक विपरीत कुम्हार दम्पती ने कन्या रानकदे के पालनार्थ, अपने घर तथा नगर का त्याग कर दिया। वे उस कन्या को लेकर दूसरे नगर में चले गये ओर राजहंसिनी की भांति उसका पालन–पोषण करने लगें। एक साधारण कुम्हार परिवार का यह कार्य वर्तमान में कन्या–हत्या करने वालों पर प्रहार करते हुए 'बेटी

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : विकट भट पृ. सं. 09

2 मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज पृ. सं. 08

3 ऐसे ग्रह–दोष थे, रहेगी जिस घर में
दीपक बुझाके ही रहेगी नाग–कन्या सी।
वहीं, पृ. सं. 43

बचाओ' की भावना को बल प्रदान करता है। एक कन्या के पालन–पोषण को कवि गुप्त ने इस प्रकार वर्णित किया है–

" क्या न करते थे आँख मूँदके, जी खोलके!
बाप मनोरंजन की वस्तुएँ जुटाता था,
माता नये व्यंजन बनाकर चुगाती थी
पाली थी उन्होनें राजहंसी मान–सर की। " 1

कवि गुप्त ने रानकदे के रूप में उस भारतीय नारी को मूर्तिमंत किया है, जो अपनी हीनता, अभावों और त्रुटियों से परिचित होकर भी समाज में सम्मान की भावना स्थापित करती है। राजा सिद्धराज द्वारा रानकदे से विवाह प्रस्ताव रखने पर वह स्वयं के साथ अपने पालक कुम्हार माता–पिता को भी अपनाने तथा जाति–प्रथा के भेदभाव को मिटाने का प्रस्ताव रखती है। वह जाति–प्रथा को हीन मानकर उसके खिलाफ अपनी अवधारणा इस प्रकार प्रकट करती है–

" मेरे पिता–माता वही, पालक जो मेरे हैं,
लड़की–उन्हीं की लाडली हूँ मैं, लडेती–भी।
हीन मानती हूँ मैं किसी भी जाति–कुल को
कौशल के साथ निज कर्म करते हैं, जो। " 2

रानकदे में नारी की नैतिकता मूलबद्ध हैं। वह स्वकर्त्तव्य के प्रति सदैव उन्मुख तथा तत्पर है। अपने पति सिद्धराज का राजा जयसिंह द्वारा वध कर दिए जाने पर वह सच्ची राजपूत–वीरांगना की भांति अपने पति का शव सती होने के लिए मांगती है। वह जयसिंह से कठोर वाणी में अपने पति के उत्सर्ग को उद्घाटित करती हुई कहती है–

" मेरा राजसिंहासन जलती चिता में हैं,
वीरगति–भोगी एक मात्र मेरे स्वामी ही ने
वे बैठ सकते हैं, वहाँ ऊँचा सिर करके। " 3

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज पृ. सं. 45

2 वहीं, पृ. सं. 48

3 वहीं, पृ. सं. 55

कवि गुप्त ने रानकदे के व्यक्तित्व और सौन्दर्य की पवित्रता का जयघोष आधुनिक संदर्भ में किया है। रानकदे अबला होने पर भी मानव–धर्म एवं मर्यादा पर अडिग नारी है। दाम्पत्य–प्रेम में समर्पण एवं त्याग को आवश्यक शर्त मानते हुए, आज के संदर्भ में रानकदे प्रेम को परिभाषित करते हुए कहती है–

" अबला रहूँ मैं किन्तु धर्म बलवन्त है।
तुम हो कृपाण–पन्थी, प्रणय–पथी नहीं,
प्रेम तो पराजय भी भोगता है जय–सी,
सच्चा योग उसका वियोग में ही होता है। " 1

इस प्रकार रानकदे आधुनिक मानव–जीवन में प्रभावशाली व सचेत नारी के रूप में अवतरित हुई है,जो भावी जीवन–आदर्शों को स्थापित करने में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करती है।

मीनलदे –

संसार में माता का रिश्ता संतान के प्रति समर्पित एवं वात्सल्य–भाव से युक्त होता है। माता का चरित्र त्याग एवं बलिदान की प्रतिमूर्ति होता है। इस संदर्भ में डॉ.नीलिमा वर्मा की अवधारणा इस प्रकार है "माता के सामाजिक चरित्र में ममत्व, समर्पण, सेवा भावना के साथ, नारी सुलभ सहन–शक्ति, दृढ–निष्ठा तथा कर्त्तव्यपरायणता होती है।" 2

कवि गुप्त के 'सिद्धराज' खण्डकाव्य की नारियों में मीनलदे जयसिंह की उदार और साहसी राजमाता के रूप में अवतरित हुई है। मीनलदे का मातृत्व नारी समाज में इसलिए सार्थक और श्रेष्ठ है क्योंकि वह अपने पुत्र को विलासी और सुखान्वेषी राजा के रूप में न देखकर, एक धर्मपरायण, जनसेवी और कर्त्तव्यनिष्ठ पुत्र के रूप में देखकर उसके उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षिणी है –

" हो गया युवक, इस योग्य–निज राज्य जो,
आप ही सँभाले और पाले प्रजा प्रीति से।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज पृ. सं. 55

2 डॉ.नीलिमा वर्मा :
स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी कहानी में नारी–चरित्र की अवधारणा पृ. सं. 41

नीति से ,उचित रीति रक्खे भीति छोड़के,
कर सके योग्य व्यवहार शत्रु–मित्र से। " 1

मीनलदे एक चेतनाशील माता होने के साथ ही सच्ची क्षत्राणी के दर्प से युक्त और मानव–गौरव के प्रति सजग नारी है। वह वात्सल्यमयी होने पर भी अन्याय एवं मानव–शोषण का विरोध करने में सक्षम है। मीनलदे अपने विपक्षी अर्णोराज के मंत्री द्वारा भोजन पर आमंत्रित करने पर, वह भोजन करने से इसलिए मना कर देती है, क्योंकि वह धन जनता के शोषण और अत्याचार द्वारा संगृहित किया गया है। वह उस पाप अन्न को खाने से इन्कार करती हुई कहती है –

" मंत्री एक साथ था जो, पूछा जब उसने,
उनसे अयोजन का हेतु, वह बोली यों–
कैसे वह पाप–अन्न खाऊँ अब और मैं,
ऐसे पाप–कर से कमाते तुम हो जिसे ? " 2

कवि गुप्त ने सामाजिक समरसता की स्थापना पर बल देते हुए राज धर्म की बात करते है वहीं जाति–प्रथा का विरोध भी करते है। कवि ने मंदिरों में अछूतों के प्रवेश की पैरवी मीनलदे के माध्यम से की है। वह सोमनाथ मंदिर में दलितों के प्रवेश पर लगी पाबंदी को हटाने के लिए पुरातन धारणाओं पर प्रहार करती हुई कहती है–

" किसके ? तुम्हारी उस पत्थर की पिण्ड़ी के,
जिसको दिखाकर कमाते तुम लाखों हो ?
मंदिर का द्वार जो खुलेगा सबके लिए
होगी तभी वहाँ मेरी विश्वम्भर–भावना। " 3

इस प्रकार कवि गुप्त ने मीनलदे के माध्यम से प्राचीन भारतीय नारी की उस चेतना को जीवन्त किया है जो राजसी होकर भी ग्राहस्थ्य–जीवन के प्रति समर्पित है। अतः मीनलदे की चेतना वर्तमान समय में अनुकरणीय है।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज पृ. सं. 11
2 वहीं, पृ. सं. 18
3 वहीं, पृ. सं. 20

कांचनदे –

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'सिद्धराज' खण्डकाव्य में कांचनदे की उद्भावना जयसिंह की पुत्री के रूप में की है। वह एक राजपूत कन्या होने के साथ भावुक, संवेदनशील एवं सहृदय नारी है। कांचनदे एक ओर अपने पिता जयसिंह के शासन की बारीकियों से परिचित हैं तो दूसरी ओर अर्णोंराज जैसे शासक के प्रति मुग्धा का आकर्षण और समर्पण है। कांचनदे की मान्यता है कि जीवन में एक क्षण ऐसा भी आता है तब भावी–जीवन–सृष्टि का निर्माण होता है। इस संबंध में कांचनदे का मत इस प्रकार है।

" एक क्षण ऐसा इस जीवन में आता है,
एक दृष्टि में जो नई सृष्टि रच जाता है।
यौवन का बोध अकस्मात् ही तो होता है,
मुग्धा एक पल में ही मध्या बन जाती है। " 1

कांचनदे हमेशा सत्य एवं कर्त्तव्य के पथ पर अग्रसर होने वाली नारी है। अपने पिता जयसिंह को अपने शासन में विफल होने पर विपक्षी अर्णोराज द्वारा बन्दी बनाने जाने पर भी अर्णोराज के प्रति उसका प्रेम, उसके दृढ़ निश्चयी और निर्भीक व्यक्तित्व को दर्शाता है। वह अर्णोंराज को भी श्रेष्ठ शासन के संचालन और प्रजा को सुखी रखने का मूलमंत्र देते हुए एक सफल शासक के गुण एवं कर्त्तव्य का वर्णन इस प्रकार करती है–

" एक सा कुशल है, कृती जो गुण–गौरवी,
मन से वरूण है, कुबेर वह धन से।
देता और भोगता है, शूर दोनों हाथों से,
रात में भी जागत है, सोती है प्रजा सुख से। " 2

अतः कवि गुप्त की नारी कांचनदे समाज एवं शासक को आधुनिक समय में प्रजा के हितार्थ सद्कार्य करने की उद्भावना करती है जो नारी चेतना का प्रमुख सोपान है।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज पृ. सं. 72
2 वहीं, पृ. सं. 81

'अर्जन और विसर्जन' में नारी चेतना –

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'अर्जन और विसर्जन' खण्डकाव्य में धर्म एवं राष्ट्र की रक्षा हेतु मानव के त्याग एवं समर्पण का चित्रण किया है।' अर्जन' खण्ड में सीरिया की राजधानी दश्मिक पर अरबों की बर्बरता तथा क्रूरतापूर्ण आक्रमण पर सीरियावासियों का देश–प्रेम, जाति–गौरव एवं स्वधर्म–निष्ठा को अभिव्यक्ति किया है। इस प्रकार 'अर्जन' खण्डकाव्य में वर्णित में इउडोसिया की चेतना इस प्रकार है–

इउडोसिया–

कवि गुप्त ने अपने खण्डकाव्यों में एक नारी के कन्या, प्रेमिका, आदर्श पत्नी, आदर्श माता आदि सुन्दर रूपों को प्रस्तुत करने के साथ ही उसका वीरांगना रूप भी प्रदर्शित किया है। " इन सभी रूपों के चित्रण में कवि ने नारी के आदर्श चरित्र की उज्ज्वलता यथातथ्य रूप में प्रस्तुत की है।" 1'अर्जन' काव्य की सर्वाधिक महत्वूपर्ण नारी इउडोसिया समाज में धर्मनिष्ठा, स्वदेश प्रेम तथा त्याग भावना की प्रतिमूर्ति। है। वह अपने छलि एवं स्वार्थी प्रेमी को राष्ट्र प्रेम नहीं अपनाने पर तथा अरबों के उपर आक्रमण करने पर उसको दुत्कारते हुए कहती है–

" आक्रमण करने की सन्ध्या यह हो रही,
मेरे धीर वृद्धा पिता कब के गये वहाँ।
चाहती हूँ, मेरे भावि पति भी स्वदेश के,
संकट–निवारण में, वीरोचित भाग लें। " 2

माता–पिता ही संतान में संस्कारों के वाहक होते हैं। इउडोसिया को भी ये संस्कार अपने बलिदानी पिता से मिले है। वह जोनस जैसे कायर प्रेमी को अपने पति रूप में अपनाने से इन्कार कर देती है और भावी नव–निर्माण में जुट जाने का संदेश प्रदान करते हुए कहती है–

" अपना मान लेना अब उचित नहीं अब हमको ?
उजड़ें घरों को फिर से बसाना हैं हमको। " 3

---

1 के. एस. मणि : मैथिलीशरण गुप्त और वल्लत्तोल के काव्यों में सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना पृ. सं. 202

2 मैथिलीशरण गुप्त : अर्जन और विसर्जन पृ. सं. 08

3 वहीं, पृ. सं. 11

इउडोसिया में देश–भक्ति के साथसर्व–धर्म सम्भाव की भावना कवि गुप्त की धर्मगत आस्था का प्रतिफल हैं। वह अपने देश–वासियों को भी सभी धर्मो का सम्मान तथा धर्म–निरपेक्षता की भावना को धारण करने की अवधारणा इस प्रकार प्रकट करती है–

" एक सर्व–धर्म्म कहीं मान्य हो अब भी,
होगा कब, कौन कहे अथवा अधर्म्म ही
होगा वह ? जो हो, मुझे मेरा मत मान्य है। " 1

इस प्रकार इउडोसिया कवि गुप्त की एक ऐसी नारी हैं, जिसमें त्याग, कर्त्तव्य, आत्मगौरव, धर्म–निष्ठा और शुद्ध–सात्विक प्रेमादर्श के गुणों के साथ नवीन नारी–चेतना की धारा प्रवाहित हुई है।

रानी काहिना–

कवि गुप्त ने 'विर्सजन' खण्ड में अफ्रीका की 'मूर' जाति की रानी काहिना के दृढ़ चरित्र, देशभक्ति और स्वाधीनता के आदर्श को वर्णित कर एक नारी में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया है। स्वाधीनता के लिए अपना सर्वस्व विसर्जन में वीर सपूतों के साथ–साथ नारियों का योगदान भी कम नहीं है। कवि गुप्त के अनुसार हमारी माता, बहनों एवं पत्नियों के स्वातन्त्र्य–प्रेम और आर्त्मोत्सर्ग के कारण ही हमारा राज्य, सम्मान धन बचा हुआ है। " 2

कवि गुप्त ने आदर्श एवं गरिमामय नारी–चरित्रों के माध्यम से स्वाधीनता , त्याग एवं समर्पण आदि मूल्यों की स्थापना की है। जो स्वतंत्रता–संग्राम के समय संकटमय वीरों को उनका आत्मविश्वास लौटा सकें। रानी काहिना भी अपने देश की स्वतंत्रता सुरक्षित रखने के लिए अपना सर्वस्व विसर्जित करना ही श्रेयस्कर समझती है–

स्वतंत्रता के अर्थ हमारे
निकट मौन सा मूल्य महान,
धन क्या यह जीवन भी अपना
कर दें हम उस पर बलिदान। " 3

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : अर्जन और विसर्जन पृ. सं. 12
2 निहंतो की माँ, बहनें, बहुए, मानें मन में यह संतोष –
बचा उन्हीं के स्वजन दान से, सबका राज्य, मान, धन–कोष
वहीं , पृ. सं. 17
3 वहीं , पृ. सं. 21

भारत का स्वाधीनता संग्राम लम्बे समय तक चलने वाला एक निरन्तर संघर्ष एवं बलिदान की कहानी है। इस संघर्ष में भारतीय योद्धाओं के साथ नारियों के योगदान की आशारानी व्होरा ने भूरी–भूरी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "इस संघर्ष में नारियाँ भी पीछे नहीं रही, वे अग्रणी होकर चली। जीवन के समस्त सुखों को तिलांजलि देकर कठोर साधना और कष्टमय जीवन अपनाने वाली नारियों का योगदान प्रमुख है।" 1

कवि गुप्त की नारी काहिना में सांस्कृतिक और नैतिक ऊर्जा का गहन रौपण किया है। वह ऐसी नारी है जो स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता को ही जीवन में सर्वोपरि स्थान देने वाली नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। देश–स्वातन्त्रय की भावना उसके श्वास–प्रश्वास में बसी है। काहिना अपने देश के साथ सम्पूर्ण विश्व को स्वतंत्र रहने की कामना इस प्रकार करती है–

" नहीं चाहते हम धन–वैभव,
नहीं चाहते हम अधिकार।
बस स्वतन्त्र रहने दो हमको,
और स्वतन्त्र रहे संसार। " 2

व्यक्ति स्वतंत्रता ही नहीं समृष्टि की स्वतंत्रता की आकांक्षी रानी काहिना के त्याग एवं समर्पण का जो चित्रण किया है, वह इतिहास में अभूतपूर्व है। काहिना का चारित्रिक उत्कर्ष और स्वतंत्रता के लिए त्याग–भावना, नारी में स्वतंत्रता की चेतना का संचार करने में एक नवीन धरातल प्रदान करती है।

'गुरुकुल' में नारी चेतना–

भारत के मध्यकालीन इतिहास में धार्मिक– क्रान्ति का अनिवार्य और महत्वपूर्ण स्थान है। धार्मिक समन्वय की विराट चेष्टा, कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'गुरुकुल' खण्डकाव्य में सर्वधर्म सम्भाव को अभिव्यक्ति दी है। निर्गुण और सगुण कवियों की साधना तथा लोक–चेतना के अनवरत् क्रम में नानकदेव एवं नानक पंथ का उदय हुआ। उनके बाद

---

1 आशारानी व्होरा : भारत की प्रथम महिलाएँ पृ. सं. 13

2 मैथिलीशरण गुप्त : अर्जन और विसर्जन पृ. सं. 22

सिख–गुरुओं के द्वारा त्याग एवं बलिदान की परम्परा को बनाए रखा। कवि गुप्त ने सिख–गुरुओं की त्याग एवं बलिदानी भावना के साथ बन्दा बैरागी और सिख–गुरुओं की पत्नियों के त्याग एवं चेतना का चित्रण 'गुरुकुल' खण्डकाव्य में इस प्रकार किया है।

जैतीजी –

कविवर गुप्त ने जैतीजी को गुरुगोविंद सिंह की पत्नी के रूप में एक आदर्श हिन्दू नारी का उत्कीर्ण किया है। यह नारी क्षत्राणी के तेज और अर्द्धांगिनी के गौरव से युक्त गुरु–पत्नियों की पंक्ति में महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारी है। वह पति के धर्मसंकट के समय युद्ध में साथ जाने की इच्छा व्यक्त करते हुए कहती है–

" मैं संकट में साथ छोड़ दूँ,
नाथ, यही क्या मुझको न्याय।
भार सिद्ध हूंगी न कभी मैं,
दूंगी यथाशक्ति साहाय्य। " 1

भारतीय नारी संकट में अपने पति, पुत्र आदि की सहायता में ही अपना जीवन सार्थक एवं धन्य समझती है। जैतीजी भी पुरुष–वेश में युद्ध में जाती है, और वहाँ अपने मरणासन्न पति गुरुगोविंद सिंह को पानी पिलाती हुई आदर्श क्षत्राणी–रूप को प्रकट करती है। कवि गुप्त ने जैतीजी के क्षत्राणी रूप का वर्णन इस प्रकार किया है।

" एक घूँट जल भी अवसर पर
पहुँचा सकें कहीं ये हाथ,
तो इतने से ही कृतार्थ
हूँगी नाथ, तुम्हारे साथ।" 2

जैतीजी अपने पति गुरु गोविन्द सिंह की त्याग एवं बलिदान भावना को उनके पुत्र फतह सिंह एवं जोरावर सिंह को भी अपनाने की प्रेरणा प्रदान करती है। फतह सिंह और जोरावर सिंह वे वीर बालक है जिन्हें वजीरखां द्वारा उनकों मुसलमान न बनने पर जीवित दीवार में चुनवा देता

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : गुरुकुल पृ. सं. 110
2. वहीं पृ. सं. 111

है। इस प्रकार सम्पूर्ण परिवार को धर्म–रक्षार्थ प्राण उत्सर्ग करने और पति एवं पुत्र के आत्मोत्सर्ग पर क्षत्राणी जैतीजी भी युद्ध में भाग लेने की अभिलाषा के साथ अपने स्वामी से ही प्रार्थना करती है कि –

" स्वामी तुमने बना दिया है
सिंह उन्हें भी जो ये मेष।
कहो, एक नारी को तुम क्या,
दे न सकेंगे नर को वेष। " 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने 'गुरुकुल' काव्य में वर्णित गुरु–पत्नी के द्वारा धर्म–निष्ठा, त्याग, समर्पण और बलिदान–भावना को जीवन की सार्थकता के रूप में वाणी प्रदान की है। आधुनिक नारी द्वारा राष्ट्रीय चेतना की भावना का व्यापक प्रसार करने वाला जीवन्त दस्तावेज है।

खण्डकाव्यों के प्रमुख स्त्री–पात्रों में नारी चेतना –

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने खण्डकाव्यों के प्रमुख नारी–पात्रों के आदर्श एवं गरिमामय चित्रण द्वारा नारी चेतना की स्थापना की है। नारी चेतना के दृष्टिकोण के संबंध में कवि गुप्त की मौलिकता इस बात में है कि उन्होंने आधुनिक युग की नारी में चेतना का विकास पश्चिमी चिंतन के बजाय भारतीय चिन्तन की पृष्ठभूमि में किया हैं। उनका मानना है कि "नारी शारीरिक रूप से अबला है लेकिन वह किसी भी प्रकर के अत्याचार को सहन नहीं कर सकती। वह अत्याचारी दानवों के लिए चंडिका के समान है।" 2 कवि गुप्त ने खण्डकाव्यों के प्रमुख नारी–पात्रों में नारी चेतना को इस प्रकार उद्‌घाटित किया है–

विष्णुप्रिया –

नारी भारतीय संस्कृति की आधारभूत दैवीय–शक्ति है। नारी वैदिक काल से ही देवी के रूप में ज्ञान तथा संस्कृति की अधिष्ठात्री रही है। उत्तर–मध्यकालीन इतिहास में चैतन्य महाप्रभु की पत्नी विष्णुप्रिया का व्यक्तित्व तथा अस्तित्व सत्य एवं यथार्थ से

1 मैथिलीशरण गुप्त : गुरुकुल पृ. सं. 111

2 मैं अबला हूँ किन्तु न अत्याचार सहूँगी,
तुझ दानव के लिए चण्डिका बनी रहूँगी।
मैथिलीशरण गुप्त : सैरन्ध्री पृ. सं. 20

परिपूर्ण रहा है। कवि गुप्त ने विष्णुप्रिया के चरित्र को इन शब्दों में अभिव्यक्ति दी है वह स्वभाविक है–

" कवियों की, कोविदों की, भावुकों की, भक्तों की,
गुणियों की , ज्ञानियों की, भूमि वंगभूमि तू,
शक्ति समाराधना की साधना की सिद्धि सी!
वैष्णवों की भाव–मूर्ति विष्णुप्रिया–रूपिणी। " 1

विष्णुप्रिया एक गुणशाली व शीलवती कन्या हैं। जिसे चैतन्य महाप्रभु की माता शची अपनी बहू बनाकर घर लाती है। लेकिन कुछ दिनों बाद पिता का श्राद्ध करने पति निमाई 'गया' जाता है। उनके लौटने तक विष्णुप्रिया आशंकित रहती है कि पति कहीं वैराग्य धारण न कर लें। पति की भक्ति–भावना 'गया' से लौटकर आने पर इतनी बढ़ती है कि समस्त वंगभूमि उन्हें रसप्लावित लगती है। विष्णुप्रिया अपनी भावना एवं आशंका को व्यक्त करते हुए उनके शीघ्र लौटने की कामना इस प्रकार करती है–

" व्रत–उपवास देह देख कर करना।
धर्म–साधना के लिए स्वस्थता है पहले।
श्राद्ध करने में सदा श्रद्धा ही प्रधान है।
राम तेरी रक्षा करें जा तू शीघ्र लौटना। " 2

चैतन्य महाप्रभु एक दिन संन्यास का निश्चय कर अपनी माता से आज्ञा मॉगते है। वे अपनी माँ की सेवा का दायित्व अपनी पत्नी विष्णुप्रिया को सौंपते है। तब विष्णुप्रिया अपने पति से कहती है कि एक धर्म को पालने के लिए पति नारी को त्याग कर दूसरा अधर्म कर रहें है। विष्णुप्रिया अपनी रक्षा हेतु पूछकर, चैतन्य महाप्रभु को किस प्रकार निरुत्तर करती है–

" अन्यथा क्या संभव था जाना छोड़ अम्बा को ?
आगे के लिए भी अब चिन्ता नहीं उनको।
और मेरी ? प्रश्न किया विष्णुप्रिया देवी ने।
उत्तर न दे कर मौन रहे वे मन में। " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया पृ. सं. 02
2. वहीं, पृ. सं. 09
3. वहीं, पृ. सं. 13

विष्णुप्रिया के पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में उनकी सामाजिक चेतना विशेष रूप से प्रखर हुई है। उनकी यह चेतना नारी स्वतंत्रता की अवधारणा की प्रथम सोपान है। वह पुरुषों के उस भ्रम पर भी प्रहार करती है कि नारी भक्ति–मार्ग में बॉधक होती है। विष्णुप्रिया की धारणा है कि दैवों तक ने कभी भी अपनी नारियों का त्याग नहीं किया और उन्हें हमेशा अपने साथ रखा है। वह भक्ति हेतु नारी–त्याग के विरोध में अपने तर्क इस प्रकार प्रस्तुत करती है–

" यद्यपि तुम्हारें देव ऐसा नहीं करते।
नारायण लक्ष्मी को, यतीन्द्र हर गौरी को,
इन्द्र इन्द्राणी को, ज्यों वरुण वरुमाणी को,
संग रखते हैं वे असंग नहीं तुमसे! " 1

सामान्यतः नर के कठोर निर्णयों मे नारी की सहमति होती है। लेकिन चैतन्य द्वारा अपनी सहचरी विष्णुप्रिया के पूछे बिना घर से निष्क्रमण करना उसे ग्लानि एवं क्षोभ से भर देता है। वह अपनी नींद को धिक्कारते हुए कहती है –

" हाय! मैं छली गई हूँ, छिप कर भागे वे,
जागकर आप यहाँ मुझको सुला गये।
जागी फिर क्यों मैं, क्यों न रह गई सोती ही ?
जानती थी, बंचक न होंगे विदा लेंगे वे ,
पूज कर उनको विसर्जित करूँगी मैं। " 2

सम्पूर्ण सृष्टि में नारी के लिए 'वात्सल्य' वह सुख है जो नारी के सब सुखों की पूर्ति करके उसके अकेलेपन का हरण करता है। विष्णुप्रिया भी निःसन्तान नारी है। चैतन्य महाप्रभु के निष्क्रमण पर उसकी संतानाभिलाषा और बढ़ जाती है। वह अपने एकांगी जीवन को प्रकट करती हुई कह उठती है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया पृ. सं. 23
2. वहीं, पृ. सं. 27

" भरी गोद ही होती मेरी, तो रीते दिन सह लेती मैं,
तिनके का भी कहाँ सहारा, जिसके बल पर बल लेती मैं।
कौन यहाँ है अब जिससे कुछ, अपने जी की कह लेती मैं,
सुत पाती तो पति क्यों खोती, जैसे रहती रह लेती मैं। " 1

भारतीय नारियॉ जीवन में स्वावलंबिनी रही है। विष्णुप्रिया अन्य त्यागशील नारियों की भाँति राजसी या धनिक न होकर सामान्य–गृार्हस्थ्य नारी है। वह अपनी सास शची के साथ जीवकोपार्जन हेतु सूत–कातने तक का सामान्य कार्य अपनाते हुए अपनी स्वावलंबी–भावना को इस प्रकार प्रकट करती है–

" स्वजन हमारे अनुगामी उनके है जो ,
उचित प्रबंध वे करेंगे हम दोनों का ।
किन्तु यों ही बैठे कर कैसे हम खायेंगी ?
कात कर सूत निज लाज अब रखेंगी। " 2

'अभाव कम उम्र में भी जिम्मेदारी का अहसास करा देता है।' विष्णुप्रिया में भी उम्र के साथ धीरे–धीरे गंभीरता आती है। वह जानती है कि पुरुष की भक्ति और तपस्या कभी भी नारी के बिना पूर्ण नहीं हो सकती, क्योंकि उसके आधे भाग्य पर पत्नी का ही अधिकार है–

" उनका यह कीर्तन है आधा,
उसके साथ नहीं यदि राधा। " 3

विष्णुप्रिया ने सामाजिक रूढ़ियों एवं पुरुष वर्चस्व के उस बंधन को भी तोड़ा है। जिसमें नर भक्ति का आश्रय लेकर घर से निकल जाते है। यदि नारी द्वारा घर–प्रयाण का यह प्रयास किया जाए तो पुरुष समाज द्वारा उसे अनैतिक घोषित किया जाता है, उसे माया समझा जाता है। रूढ़ परम्पराओं ने नारी को हमारे यहाँ सहानुभूति से वंचित रखा है। पुरुष और स्त्री के लिए नैतिकता के मानदण्डों के भेद को विष्णुप्रिया सतर्क प्रकट करती है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया पृ. सं. 29
2. वहीं, पृ. सं. 38
3. वहीं, पृ सं. 82

" अबला के भय से भाग गये,
वे उससे भी निर्बल निकले।
नारी निकले तो असती है,
नर यति कहाकर चल निकले। " 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने विष्णुप्रिया के रूप में दर्पयुक्त, सहधर्मिणी, त्यागमयी, धैर्यमूर्ति मार्गदर्शिका नारी को प्रतिष्ठापित कर, उसमें नवीन स्वावलंम्बिनी चेतना की स्थापना की है।

रत्नावली –

रामभक्त कवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'रत्नावली' खण्डकाव्य को पति–परित्यक्ता नारियों के जीवन–चरित्रों की चिन्तन परम्परा में अंतिम सोपान माना गया है। कवि गुप्त ने रत्नावली के रूप में एक ऐसी उपेक्षित नारी को पुनर्जीवित किया है जो पति–उपेक्षा के कारण आजीवन अनुतप्त रही है। रत्नावली का मानना है कि "दाम्पत्य जीवन में नर ने ही हमेशा नारी का त्याग किया है, नारी ने कभी भी नर का त्याग नहीं किया। " 2

साहित्य में रत्नावली एक विलक्षण वियोगिनी नारी है। वह अपने चिरवियोग का कारण किसी अन्य को नहीं स्वयं को ही मानती है। उसे अपने वियोग एवं में भी गर्व की सुखद् अनुभूति होती है। क्योंकि वह स्वयं ही अपने पति को सन्मार्ग हेतु भेजने वाली है। इसी यथार्थ में रत्नावली का स्वार्थ है–

" धिक् मुझे और तुमको भी!
हाँ, यह मैंने था कहा।
यह यथार्थ है, मुझे स्वार्थ का,
कुछ भी बोध नहीं रहा। " 3

समाज का हर वर्ग धीरे–धीरे यह समझ चुका है कि नारी के प्रतिनिधित्व और हिस्सेदारी के बिना किसी भी क्षेत्र में कार्य ठीक और सौहार्द्र के साथ नहीं हो सकता है। कवि गुप्त की नारी रत्नावली भी सामान्य गृहस्थ के यहाँ होने वाले गो–सेवा आदि गृह–कार्यों और आचरण संबंधी स्वाभाविक स्थितियों तथा मनः स्थितियों में अवतरित हुई है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया पृ. सं. 33
2. नारी निज करधारी को ?
   त्यागा नर ने ही नारी को।
   मैथिलीशरण गुप्त : रत्नावली पृ. सं. 17
3. वहीं, पृ. सं. 09

" आती थी जब गाय साँझ को
करती हम्बा–नाद थी,
अम्बा कह उसका स्वागत कर
पाती मैं आह्लाद थी। " 1

मानव–जीवन का रथ एक पहिए से नहीं चल सकता है। उसकी समुचित गति के लिए दोनों पहिए बराबर होने चाहिए। इस विषय में डॉ. सुषमा जैमन की मान्यता इस प्रकार है "गृहस्थी की गाड़ी नर और नारी के सहयोग व सद्भावना से प्रगति के पथ पर अविराम गति से बढ़ सकती है। " 2 रत्नावली भी एक सात्विक गृहस्थ–जीवन प्रवृत्ति से युक्त नारी है। वह अपने पति तुलसीदास को जीवन की वास्तविक सत्यता से अवगत कराती है। लेकिन रत्नावली को दुःख है कि उस जीवन–सत्य के बदले उन्हें जीवन विछोह मिला। वह अपनी मूक वेदना को इस प्रकार प्रकट करती है–

" सचमुच मेरा वह कथन रहा कटु थोड़ा,
समुचित ही तुमने अरुचि मान मुँह मोड़ा।
पर उसमें था जो सत्य उसे भी छोड़ा,
तो तुमने खोकर मुझे कहो क्या जोड़ा ? "3

भारतीय नारी धर्म और मर्यादा के संयम से कभी भी विच्छिन्न नहीं होती हैं। रत्नावली भी तुलसीदास के दर्शनों की अभिलाषी इसलिए है कि अपने ज्ञान–बोध के लिए क्षमा मांगना चाहती है। वह अपने जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि इसी में मानती है कि उसके पति मानवीय स्वार्थों से बहुत ऊपर उठकर ब्रह्मा के साथ विराट हो गए। रत्नावली अपनी अभिलाषा इस प्रकार प्रकट करती है–

" प्रियतम तुम किस वन के वासी ?
मैं केवल दर्शन की प्यासी।
पानी पाकर प्रेत भी करते हैं कल्याण,
पर दे सकती हूँ भला मैं अब क्या प्रतिदान ? " 4

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : रत्नावली पृ. सं. 10
2. डॉ. सुषमा जैमन : भारतीय समाज और महिलाएँ पृ. सं. 09
3. मैथिलीशरण गुप्त : रत्नावली पृ. सं. 25
4. वहीं, पृ. सं. 27

नारी जीवन–साथी ही नहीं अपितु योग्य–मित्र परामर्शदात्री, सहायिका, माता के समान नर पर सर्वस्य–न्यौछावर करने वाली तथा एक सेविका की तरह सच्ची सेवा करने वाली है। रत्नावली भी एक ओर अपने कृत्य के लिए क्षमा–याचना करती है तो दूसरी ओर अपने दोष की सराहना भी करती हैं। क्योंकि उस दोष के कारण ही तुलसी राममय हो सकें है। वह अपने अपराध–बोध को दृढ़ता के साथ इस प्रकार रखती है–

" होम करते झुलसता देखा गया है हाथ,
पूर्ण प्रिय उद्देश्य होगा धैर्य के ही साथ।
भटक कौन मरीचिका में पा सका है पाथ ?
व्यग्र होकर आप मैंने खो दिये निज नाथ। " 1

रत्नावली को सामाजिक परिवेश में एक नगण्य और उपेक्षित नारी माना गया है। लेकिन कवि गुप्त ने उन्हें सामाजिक परिवेश में सजीव एवं जीवंत किया है। वह तुलसीदास जैसे पुरुष की प्रेरक–शक्ति होने के साथ समाज में नव–निर्माण का माद्दा रखती है। उसकी उद्धत उपेक्षा पति तथा समाज को चरम ऊँचाइयों तक ले जाने में कभी बॉधक नहीं बनती है और नव–निर्माण की आकांक्षी अपने सहास बल के सहारे शुभ दिनों की प्रतीक्षा करती है–

" आवे नव–निर्माण तुम्हारा,
फूटे फिर टूटी–सी धारा,
पावें सब नव बल, नव साहस,
फिरें वही फिर निज शुभ दिन।" 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने 'रत्नावली' खण्डकाव्य में रत्नावली की भाव–भूमि और चिंतन को ओजस्वी वाणी प्रदान की है। उनकी नारी चेतना आदर्श की चरम रेखाओं का स्पर्श करती है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : रत्नावली — पृ. सं. 49
2. वहीं, — पृ. सं. 69

खण्डकाव्यों में गौण स्त्री–पात्रों में नारी चेतना

समाज की संरचना के प्रथम सोपान परिवार के दो आधार–स्तंभ नर एवं नारी माने गये हैं। किंतु मूलतः परिवार सुव्यवस्था का उत्तरदायित्व नारी के कंधों पर ही होता है। नारी के समुचित सहयोग से ही परिवार के सुव्यवस्थित वातावरण का निर्माण होता है।

आधुनिक समय में नारी में नवीन चेतना को संचारित करने वाले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने खण्डकाव्यों में वर्णित मर्यादाबद्ध और तर्कशील नारियों के द्वारा उनकी चेतना को वर्तमान में परिणत किया है। उनके खण्डकाव्यों के गौण स्त्री–पात्रों की नारी चेतना को इस प्रकार उद्‌घाटित किया जा सकता है–

विधृता –

साहित्यिक एवं सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित नारी–पात्रों को सम्मान प्रदान करने वाले कवि गुप्त के 'द्वापर' खण्डकाव्य में 'विधृता' एक ऐसी नारी है जिसका साहित्य में कहीं भी स्थान एवं नाम वर्णित नहीं हैं। 'द्वापर' खण्डकाव्य की कथानुसार "एक ब्राह्मण ने बलपूर्वक अपनी पत्नि को बालकों को भोजन देने से रोक लिया। नैवेद्य समर्पण तो दूर, वह भगवान के दर्शन भी न पा सकी। इस दुःख से उसने अपना शरीर छोड़ दिया। " 1

'द्वापर' खण्डकाव्य में विधृता का अर्थ है–'बलपूर्वक पकड़ी हुई'। विधृता के माध्यम से कवि गुप्त ने तत्कालीन समय में प्रचलित वैदिक–यज्ञ–पद्धति के विरोध की ओर भी संकेत किया है, जहाँ नारियों का प्रवेश निषेध था। विधृता एक ऐसी नारी है जो अपने पतिधर्म, कर्त्तव्य और मर्यादाओं के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित है। वैदिक ब्राह्मणों द्वारा उन्हें पति के साथ यज्ञशाला में प्रवेश न देने पर वह अपने अस्तित्व और अधिकार के प्रति सजग होकर कह उठती है–

" हम–तुम पति–पत्नी थे दोनों,
दीक्षित इस अध्वर में,

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर पृ. सं. 09

पर मेरा पत्नीत्व मिटाया
किसने यह पलभर में ? " 1

संसार में नारी को ही नर की 'खान' माना गया है। लेकिन आज नर द्वारा ही उसका भावनात्मक पक्ष बॉधित होता है, तो नारी पुरुष के अत्याचार को न सहती हुई, उनके विरुद्ध उठ खड़ी होती है। विधृता भी अपने पति से कहती है कि जीवन भर साथ देने वाले हाथ को झकझोर करने के लिए ही क्या आपने पाणिग्रहण किया। विधृता प्रश्नाकुल हो कह उठती है –

" वह गुण किसने तोड़ा, जिसमें
यह जोड़ा जकड़ा था ?
नर, झकझोर डालने को ही
क्या, यह कर पकड़ा था ? " 2

विधृता के माध्यम से कवि गुप्त ने उस नारी चेतना को उद्घाटित किया है जो नारी को स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता देने के पक्ष में है। वह मानती है कि नारी, नर से प्रत्येक क्षेत्र में श्रेष्ठ एवं उत्तम है क्योंकि नर की तुलना में नारी शब्द में दो मात्रा उसके दुगुने गुणों की प्रतीक है। " 3 विधृता अपने कठोर स्वर में उन नारियों का आक्रोश व्यक्त करती है, जिनके अधिकारों को नर द्वारा सीमित किया जाता है। तब समानाधिकारों की आकांक्षिणी विधृता कहती है–

" अधिकारों के दुरुपयोग का,
कौन कहों अधिकारी का
कुछ भी स्वत्व नहीं रखती क्या
अर्द्धांगिनी तुम्हारी। " 4

समाज में नर के द्वारा हमेशा नारी के चरित्र को लेकर ही शंका की जाती रही है। विधृता जैसी पतिव्रता नारी के पुण्य और निश्छल हृदय में पाप देखने वाले उस पति नामधारी पुरुष से उसे

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर पृ. सं. 22
2. वहीं, पृ. सं. 22
3. एक नहीं दो–दो मात्राएँ /नर से भारी नारी !
   वहीं, पृ. सं. 23
4. वहीं, पृ. सं. 25

वितृष्णा हो जाती है। वह विद्रोही स्वर में अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कह उठती है–

" नर के बाटे क्या नारी की
नग्न मूर्ति ही आई ?
माँ बेटी या बहिन हाय! क्या
संग नहीं वह लाई। " 1

कवि गुप्त की नारी विधृता अपने क्षोभ, विद्रोह और तर्कों से पुरुष वर्ग को चुनौती देती है और यह घोषित कर देती है कि नारी का भी कुछ स्वत्व है और वह पुरुष की मात्र दासी नहीं है। वह उन लोगों पर प्रहार करती है जो नारी को स्वर्ग–मार्ग की बॉधक मानते है।

" रहे लोक की व्यथा, वेद की
कथा कहो मुँह धोकर,
किन्तु स्वर्ग का मार्ग गया है
इसी नरक से होकर। " 2

आधुनिक नारी चेतना से युक्त विधृता भारतीय संस्कारों और पतिव्रत धर्म के प्रति पूर्ण आस्थावान होकर अन्याय एवं अत्याचारों के समक्ष कभी नहीं झुकने का संकल्प अपने भीतर संजोए रखती है। वह अपनी अधिकार–दृढ़ता को प्रकट करती हुई कहती है –

" जाती हूँ, जाती हूँ अब में,
और नहीं रुक सकती।
इस अन्याय समक्ष मरु मैं,
कभी नहीं झुक सकती। " 3

इस प्रकार विधृता को कवि गुप्त ने नारी अधिकारों के प्रति सजग कर नवीन चेतना का संचार किया है। लेकिन नर के द्वारा आज भी नारी को 'विधृता' (बलपूर्वक दबाकर) चेतनाहीन किया जाता है। जिसे विधृता ने आज जीवंत किया है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर — पृ. सं. 25
2. वहीं, — पृ. सं. 26
3. वहीं, — पृ. सं. 29

कुब्जा –

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की साहित्यिक एवं सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित नारियों में कुब्जा भी प्रमुख है। 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार कृष्ण के मथुरा पहुँचने पर उनका कुब्जा–प्रेम उनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण पक्ष है। कुब्जा राक्षसी–प्रवृत्ति की नारी होकर भी, वात्सल्य, उदार एवं ममतामयी जैसे मानवीय–गुणों से परिपूर्ण नारी है।

'द्वापर' खण्डकाव्य में कुब्जा, कृष्ण के प्रति एक रूप–गुण मुग्धा नारी प्रतीत होती है। जो बाल–कृष्ण के लीलामय अलौकिक चरित्र–गौरव से अभिभूत हो स्वयं को पूर्णरूपेण कृष्णार्पित करने के अतिरिक्त अपनी कोई गति नहीं पाती है। वह मानव–जीवन की अभिलाषा रखते हुए दानव–जीवन को धिक्कारते हुए कहती है –

" देखा मैंने, देव आज ही, मेरे आगे आया,
अब तक दानव–पूजन में ही, मैंने जन्म गवाया।" 1

कवि गुप्त ने कुब्जा के माध्यम से यह लक्षित किया है कि संसार का सामान्य जीव भी अपनी आस्था और ईश्वर के अनुग्रह से महान हो सकता है। कुब्जा कृष्ण के प्रथम दर्शन में ही प्रभु–अनुग्रह से शारीरिक, मानसिक, भौतिक और सामाजिक ऊँचाइयों के चरमोत्कर्ष का स्पर्श करती है। कुब्जा अपनी शारीरिक विकृति के ठीक होने पर वह ईश्वर की कृतज्ञता इस प्रकार प्रकट करती है –

" देख पैर उठते, चरणों से, हँस कर उन्हें दबाया
मैं उठ गई और कूबड़ का, मैंने पता न पाया। " 2

सामान्यतः मानव में भी दानवी–प्रवृत्तियों का निवास होता है। लेकिन मानव उनको अपने ऊपर हावी नहीं होने देता है। कुब्जा पर दानवी प्रवृत्तियों का एकाधिकार है। लेकिन अंत में ज्ञानबोध होने पर वह उनको त्याग देती है। इस प्रकार कुब्जा को अपनी हीनता का बोध होने के साथ ही इस बात का गर्व है कि कृष्ण ने उसे अपने अनुग्रह एवं प्रेम का आश्रय दिया। कृष्ण की उदारता पर वह आश्चर्यपूर्वक कहती है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर पृ. सं. 97
2. वहीं, पृ. सं. 97

" मेरा तत्व–तत्व तन्म था, किसे कंस का भय था ?
लौट पड़ी मैं घर वैसी ही, जन–जन को विस्मय था। " 1

कृष्ण–काव्य में राधा को तो कृष्ण की अभिन्नभूता प्रेम–शक्ति के रूप में वर्णित किया है, किंतु कुब्जा दास्यभाव को समर्पित एकांत सेविका है। सामान्यतः काव्य में कुब्जा को स्त्री–स्वभाव में निहित ईर्ष्या–दौर्बल्य के रूप में वर्णित किया गया है। लेकिन 'द्वापर' खण्डकाव्य में कुब्जा का समर्पण भी सहज सुलभ है–

वह ब्रजरानी भी नारी है, यह सरला भी नारी,
आत्म–समर्पण से दोनो जब, हम समान अधिकारी। " 2

इस प्रकार कुब्जा एक सामान्य प्रेमिका न होकर सर्वत्र चिंतन एवं संवेदनशीलता में बँधी नारी हैं। वह कृष्ण के अलौकिक सौन्दर्य को स्पर्श करने वाली नारी है।

शची –

कवि गुप्त द्वारा विरचित 'विष्णुप्रिया' खण्डकाव्य में वर्णित शची सिद्धार्थ गौत्तम बुद्ध की माता के रूप में उद्घाटित है। कवि ने शची को सरल, विदुषी तथा सहनशील नारी के साथ उदार मातृत्व के रूप में प्रकट किया है। वह पति के देहावसान के पश्चात् अपने समस्त स्नेह, वात्सल्य और नारी–बोध को पुत्र चैतन्य तथा वधू विष्णुप्रिया पर समर्पित कर देती है। शची सामान्य नारी की भाँति अपनी वधू विष्णुप्रिया की गोद भरने एवं आगामी वंश–वृद्धि की कामना का सपना इस प्रकार संजोती है–

" बीता कुछ समय विनोद भरे मोद में,
गोद भरे कुल की, मनाने लगीं माँ शची।
याचक का अलं–अनादर है दाता का,
मिलता है यद्यपि वहीं जो वह देता है। " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर पृ. सं. 99
2. वहीं, पृ. सं. 103
3. मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया पृ. सं. 09

माता को पुत्र–विछोह हार्दिक पीड़ा प्रदान करता है। माता शची भी चैतन्य के गृह–त्याग से टूटकर विश्रृंखलित हो जाती है। वह अपने हृदय को कठोर कर पुत्र के जीवन के प्रति शंकाग्रस्त होकर भी उसे गमन की अनुमति दे देती है। वह वधू विष्णुप्रिया के संकल्प, सेवा, त्याग, सहिष्णुता व तितिक्षा और निरीहता से प्रभावित होकर अपना समस्त वात्सल्य वधू पर केन्द्रित कर देती है। अपनी वधू विष्णुप्रिया के त्याग पर गर्वित होकर कह उठती है–

" मेरा अभिमान आज तुझमें समा गया।
हो रही यथार्थ ही मैं तुझसे भी कातरा।
त्याग किया लेकर उन्होंने हित लोक का,
स्वीकृत हित किया तूने त्याग करके। " 1

माता शची अपने पुत्र चैतन्य की प्रसिद्धि से स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करती है। लेकिन वधू विष्णुप्रिया के तप, त्याग, सेवा एवं साधारण जीवन के समक्ष उसे अपने पुत्र की साधना निस्तेज प्रतीत होती है। वह वधू के बिना पुत्र से मिलने नहीं जाना चाहती है। और पुत्र से कठोर वाणी में 'नारी नर पर भारी' के साथ कह उठती है–

" लौट जो निताई, तब मैं भी नहीं जाऊँगी।
यह नहीं उसकी तो मैं भी कह, कौन हूँ ?
अब अधिकार इसे रोकने का क्या उसे ?
देखूँ मुख मैं ही तब क्यों उस कृतघ्न का। " 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने शची के रूप में एक ऐसी नारी का चित्रण किया है , जो आधुनिक समय की दहेज–लोभी एवं वधू–हंता सास के लिए प्रेरणा एवं आदर्श स्थापित करती है। शची भी विष्णुप्रिया जैसी वधू को पाकर धन्य हो जाती है। शची के माध्यम से कवि ने नारी में निहित स्नेह, प्रेम, वात्सल्य, क्षमा, करुणा आदि से सम्पोषित शाश्वत मातृत्व की उपासना की है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया — पृ. सं. 36
2. वहीं, — पृ. सं. 35

खण्डकाव्यों के अन्य स्त्री–पात्रों में नारी चेतना –

कविवर मैथिलीशरण गुप्त के खण्डकाव्यों के अन्य नारी–पात्रों का क्षेत्र ज्यादा व्यापक नहीं है, परन्तु फिर भी उनके अन्य स्त्री–पात्रों की सार्थकता उनकी नारी चेतना में हैं। आधुनिक काव्य–जगत् में कवि गुप्त उन प्रमुख कवियों में है, जिन्होंने आधुनिक युग में नवीन नारी चेतना के साथ विविधता तथा व्यापकता का परिचय दिया। नारी में युगबोध की यथार्थ धारा की बहुमुखी दिशाओं को मर्यादाबद्ध किंतु तर्कशील व्यावहारिक चेतना प्रदान करते हुए कवि ने नारी के आदर्शों एवं जीवन मूल्यों को आज के संदर्भ में परिणित किया है। कवि गुप्त के खण्डकाव्यों के अन्य नारी–पात्रों में कुलवन्ती, अजियारी, उर्वशी, क्षेत्रवर्मा की माता आदि ऐसी नारियाँ है जो अपने त्याग, समर्पण एवं तितिक्षा के लिए व्यक्तिगत सुखों को तिलांजलि दे देती है। इन नारी–पात्रों में नारी चेतना इस प्रकार है –

कुलवन्ती –

आज भारत कृषि प्रधान देश न होकर कुर्सी प्रधान देश हो गया है। क्योंकि वर्तमान में कृषि की अपेक्षा कुर्सी बचाव व रक्षा पर हमारे देशवासियों का ध्यान अधिक है। कवि गुप्त ने अपने 'किसान' खण्डकाव्य में हमारे देश का ध्यान उस महत्वपूर्ण वर्ग की ओर खींचा है जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चेतना के आधार पर पिछड़ा हुआ है। कवि के अनुसार "आज किसान की दयनीय दशा के लिए निष्ठुर मनुष्य ही जिम्मेदार है। जिसने किसान की यह हालात की है। "1

कवि गुप्त के 'किसान' खण्डकाव्य में कुलवन्ती किसान कल्लू की एक पतिपरायणा, आदर्श गृहिणी, नारी के रूप में अवतरित हुई है। कुलवन्ती अपने पति के साथ जीवन की विषमताओं को झेलते हुए जीवन–संघर्ष में एक क्षण के लिए भी अपने पति से अलग नहीं होती है, अपितु प्रेरणा–शक्ति बनती है। आशान्वित कुलवन्ती अपने पति से धैर्य धारण करने की अपेक्षा रखते हुए कहती है–

---

1. निष्ठुर नर क्यों छोड़ दिये फिर बिना विचारें ?
   उनके हाथों आज देख लो हाल हमारे।
   मैथिलीशरण गुप्त : किसान पृ. सं. 09

" कुलवन्ती ने कहा कि–अब धीरज धरो,
जिसमें यह संसार चले ऐसा करो।
और किसे अब यहाँ हमारा ध्यान है ?
ऊपर नींच वही एक भगवान है। " 1

कुलवन्ती एक आदर्श भारतीय नारी की प्रतीक है। वह विवाहोपरांत आजीवन पति के साथ रहती हुई पति के सुख–दुख में पूर्णतः सहभागी बनती है। महाजन द्वारा अपने पति को प्रताड़ित करने पर वह अपने शरीर पर पहने गहनों को शीघ्र ही उतारकर दे देती है और पति की विपत्ति में इस प्रकार सहभागी बनती है–

" कुलवन्ती से कहा गया–'गहने कहाँ'
थी चॉदी की एक मात्र 'हसली' वहाँ!
जब तक उसे अमीन छीनने को कहे–
उसने आप उतार दिया, ऋण क्यों रहें। " 2

कवि गुप्त ने कुलवन्ती में आत्मविश्वास, तेजस्विता और धैर्य को साक्षात् , मूर्तिमंत किया है। वह अपने पति से भी हिंसक व्यवहार छोड़कर सन्मार्ग पर चलने तथा अपने ऊपर होने वाले अत्याचार के लिए न्यायालय की शरण में जाने की प्रेरणा देती है। वह देश की न्यायपालिका पर आस्था और विश्वास प्रकट करती हुई कहती है–

" न लो लूट का नाम, पाप है पाप ही,
फल पावेंगे सभी किये का आप ही।
छोड़ो बुरे विचार पाप– प्रतिकार के।
न्यायालय हैं खुले हुए सरकार के। " 3

भारतीय नारी हमेशा देश की उन्नति एवं खुशहाली में विश्वास रखने वाली है। कुलवंती शोषित होकर भी अपने पति से देश की एकता एवं अखण्डता में विश्वास दृढ़ता के साथ व्यक्त करते हुए अपने पति को सावचेत करती हुई कह उठती है –

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : किसान — पृ. सं. 28
2. वहीं, — पृ. सं. 30
3. वहीं, — पृ. सं. 33

" आग लगे क्यों और देश भी क्यों जले,
सुख रहे वह और सदा फूले–फले।
तुम मेरे सर्वस्व, मुझे मत छोड़ियों,
विचलित होकर नियम न कोई तोड़ियों। " 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने कुलवंती के रूप में एक ऐसी सद्नारी को अवतीर्ण किया है जो तत्कालीन व्यवस्था द्वारा शोषित एवं पीड़ित होकर भी देश और समाज की समृद्धि में विश्वास रखने वाली है। जिससे देश की राष्ट्रीय एकता कायम रह सके और भारत उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर हो सकें।

उजियारी –

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये चरित्रप्रधान 'अजित' खण्डकाव्य में उजियारी को ग्रामीण युवक अजित की वधू के रूप में चित्रित है। वह सरल स्वभाव की पतिव्रता तथा त्यागमूर्ति पत्नी है। काव्य के आरंभ में उजियारी को एक अल्हड़ वधू के रूप में प्रकट किया है। जो सामाजिक एवं गृहस्थ–जीवन से पूर्णतः अन्जान है। अजित ने अपनी नववधू कि विशेषता इस प्रकार वर्णित की है –

" माँ तो नहीं, परन्तु पिता ने बहू बिसाई,
बेटी–सी कुछ समय पूर्व ही वह घर आई।
घर की गति–विधि उन्हें उसे जो दिखलानी थी,
बाहर की भी रीति–नीति सब सिखलानी थी। " 2

अजित को जब व्यवस्थागत परिस्थितियों की विषमताओं तथा सामाजिक कुटिलताओं का लक्ष्य बनाया जाता है तो "वह अपने ग्राम्य–जीवन का त्याग कर, जीवन की कुत्सित ईर्ष्याओं से छुटकारा पाने हेतु घर छोड़ने को अपने पति से कहती है। "3 हमारी संस्कृति में 'पति ही पत्नी

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : किसान — पृ. सं. 33
2. मैथिलीशरण गुप्त : अजित — पृ. सं. 08
3. कहीं यहाँ से निकल चलो ' कह कातर वाणी,
मेरे आगे गिरी लता–सी वह कल्याणी।
वहीं , — पृ. सं. 21

की गति है' की धारणा नारी में चरित्र–गरिमा के प्रति पूर्ण चरितार्थ होती है। सरल, सुकुमारी, त्यागमयी, व्यथित, पतिव्रता उजियारी भारतीय नारी के करुण रूप को उजागर करती है। रज्जू जैसे दबंग से अपने सम्मान एवं अस्मिता की रक्षा के लिए नदीं में कूद जाती है। उजियारी स्वाभिमान की सशक्त परिचायिका है। उजियारी के पति दीर्घत्राण से पीड़ित जेल से लौटता है। वह पति हिंसा, विद्रोह, क्रांति और क्रूरता की राह को त्याग कर नव–निर्माण के पथ पर अग्रसर होने का निवेदन करती है। पति द्वारा उजियारी के पतिव्रता होने के विश्वास पर अपने पति का धन्यवाद ज्ञापित करती हुई कहती है–

" फिर भी मुझ पर विश्वास किया जब उन्होंने
सहन के लिए नया बल दिया मुझे उन्होंने
उजियारी का त्राण व्यर्थ हो जाय न जिसमें,
कपट–कल्पना–जाल नहीं हो सकता इसमें ? " 1

इस प्रकार उजियारी चिरकाल तक बिछुड़ने के बाद में विषम सामाजिक परिस्थितियों में भी अपने मानव–मूल्यों को अक्षुण्ण बनाए रखकर उस पतिव्रत–धर्म के मार्ग को नहीं छोड़ती है, जो नारी का जीवन–आधार है।

जयिनी –

साम्यवाद के प्रसिद्ध अधिष्ठाता और प्रगतिवादी सिद्धान्तों के समर्थक कार्लमार्क्स के भौतिक जीवन में एक पक्ष में जयिनी उनकी प्रेमिका के रूप में वर्णित है। कवि गुप्त यद्यपि मार्क्स के सिद्धान्तों के समर्थक नहीं है तदपि उनके भौतिक जीवन का प्रेमादर्श उन्हें अनायास ही इस ओर आकर्षित करता है। कवि ने 'पृथ्वीपुत्र' की भूमिका में लिखा है–" मनीषी कार्ल मार्क्स के दाम्पत्य भाव ने स्वयं कवि को अपनी ओर आकर्षित किया है। " 2 जयिनी एक ऐसी नारी है जो भविष्य में नहीं अपितु वर्तमान में जीना चाहती है। क्योंकि उसके मत में भविष्य उज्ज्वल होकर भी काला होता है। वह मार्क्स से वर्तमान को धारण करने की प्रेरणा इस प्रकार देती है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : अजित — पृ. सं. 67
2. मैथिलीशरण गुप्त : पृथ्वीपुत्र — पृ. सं. 07

" यह क्या ? भविष्य का क्या तुमको कसाला हैं ?
मार्क्स, जो अदृश्य, वह उज्ज्वल भी काला है ?
छोड़ दो भविष्य भगवान ही के हाथ में,
देखो वर्तमान तुम आज मेरे साथ में। " 1

प्रेम का भाव मनुष्य को महानतम स्वार्थों को त्यागकर और शरीर तथा जगत् की सीमाओं एवं प्रतिबद्धताओं का अतिक्रमण करके भी प्रेमी की प्राप्ति की ओर प्रेरित करता है। मार्क्स जयिनी को अपने मार्ग में लाकर पीड़ित नही करना चाहते। इस पर जयिनी उनके जीवन–संघर्ष में एक अर्द्धांगिनी की भूमिका में कह उठती है –

" मार्क्स, तो क्या आये तुम आज मुझे त्यागने ?
एक अबला के तुच्छ भार से भी भागनें ?
साथ लेने योग्य भी नहीं मैं महत्कर्म में ?
अर्द्धांगिनी नर की है नारी ब्रह्माधर्म में। " 2

इस प्रकार जयिनी भौतिक सम्पदा से रहित होकर भी अपने पति के साथ संघर्षशील नारी जीवन का परिचय देती हैं। अपने प्रेमी मार्क्स के साथ उनकी आत्मा पर भी अपने व्यवहार से अधिकार करती है। अतः जयिनी महान् जीवन–दर्शन का महानतम आदर्श स्थापित करती है।

निष्कर्ष –

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य–साहित्य की उपलब्धियों की दृष्टि से खण्डकाव्यों का योगदान प्रमुख है। इनमें जीवन, नैतिकता, समाज और मानवीय–मूल्यों का पुनर्विवेचन और महत्व–स्थापित हुआ है। कवि गुप्त पहले खण्डकाव्यकार थे जिन्होंने पौराणिक और ऐतिहासिक नारियों के साथ आधुनिक नारी संदर्भों का साहित्य तथा जीवन के लिए अनंत सम्भावनाओं का साक्षात् करते हुए नारी में नवयुगीन चेतना का संचार किया है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : पृथ्वीपुत्र — पृ. सं. 24
2. वहीं , — पृ. सं. 30

मानव–मूल्यों और मानवीय–आदर्शों के साथ कवि गुप्त ने नारी के चरित्रगत वैलक्षण्य को लक्ष्य करने नारी में एक नवीन ऊर्जा का संचार करना उनके खण्डकाव्यों के नारी–पात्रों की विशेषता रही है। 'रंग में भंग' खण्डकाव्य से आरंभ हुई नारी चेतना जयद्रथवध, पंचवटी, सिद्धराज, अजित, विष्णुप्रिया, हिडिम्बा आदि खण्डकाव्यों में निरन्तर विकसित होती हुई 'रत्नावली' खण्डकाव्य में चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है।

कवि गुप्त ने अपने खण्डकाव्यों में जिन असंख्य नारियों को स्थान दिया है वे अधिकांश पूर्व–स्थापित नारी–पात्र है, लेकिन इन पात्रों में नवयुग के लिए नव संदेश की वाणी मुखरित करना कवि का लक्ष्य है। इन खण्डकाव्यों की नारियाँ अपने राष्ट्र, समाज, धर्म तथा मानव जाति की सेवा में पूर्णतः समर्पित होने के साथ स्वाभिमान, जागरण तथा अपने अस्तित्व के प्रति सजग एवं संपोषित है।

पंचम् – अध्याय

कवि गुप्त के अन्य काव्यों में नारी चेतना

पंचम् अध्याय

कवि गुप्त के अन्य काव्यों में नारी चेतना

भारतीय संस्कृति के उद्घोषक, हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रबल समर्थक, प्रखर चिंतक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भारत में भारतीयता का स्वाभिमान जागृत करने वाले कालजयी कवि है। कवि गुप्त ने अपने काव्य–सृजन में महाकाव्यों, खण्डकाव्यों के अतिरिक्त विविध अन्य काव्यों की रचना भी थी। उनके विविध अन्य–काव्यों में मुक्तक काव्य गीतिकाव्य, अनुदितकाव्य व चम्पूकाव्य प्रमुख है इन काव्यों में कवि गुप्त ने आस्था, धार्मिक सहिष्णुता, राष्ट्रप्रेम के साथ नारी चेतना के उदात्त विचारों को भाव–भूमि प्रदान की हैं।

नारी चेतना के प्रति कवि गुप्त की निष्ठा का व्यापक क्षितिज उनके अन्य काव्यों में विस्तारित किया है। अन्य काव्यों के नारी पात्रों में नारी चेतना के लिए उनका काव्य विशिष्ट अवधारणा, आकर्षण तथा चिंतन ग्रहण किए हुए है। इन काव्यों के नारी पात्र पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक किसी न किसी रूप में नारी चेतना का आलोक प्रसारित करते है जिनके मूल में राष्ट्र सेवा, देशप्रेम, त्याग, बलिदान आदि भावनाओं का प्रबल संग्रह है।

मुक्तक काव्यों में नारी चेतना –

कवि मैथिलीशरण गुप्त नारी चेतना के समर्थक और प्रवक्ता थे। उनकी काव्य–सृजना स्वतंत्रता–प्राप्ति के पूर्व से शुभारंभित हुई है। उनके काव्य–साहित्य का विस्तार मुक्तक काव्य के रूप में सन् 1912 में मुक्तक अमर रचना 'भारत भारती' के प्रकाशन से आरंभ होकर सन् 1960 में 'उच्छ्वास' के प्रकाशन तक अनवरत् कायम रहा। भारतीय काव्य साहित्य के विस्तार के विषय में कवि गुप्त ने 'भारत भारती' में माना है कि "साहित्य का विस्तार अब भी हमारा कम नहीं और साहित्य की प्राचीन एवं नवीनता में उसकी कोई समानता नही कर

सकता है।" 1 कवि गुप्त के प्रमुख मुक्तक काव्यों में नारी चेतना इस प्रकार है–

'भारत भारती' में नारी चेतना –

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' मुक्तक काव्य में भारत देश में उस सामूहिक चेतना को अवधारित किया है जो राष्ट्र चेतना, नारी चेतना के साथ समन्वित होकर इतिहास और कल्पना का सामंजस्य स्थापित करती है। कवि ने राष्ट्रीय चेतना के प्रेरक और उद्‌भावक ऐसे तत्वों का संबोधन तथा आह्वान किया है जो हमारे अतीतकालीन गौरवपूर्ण देश के इतिहास में प्रमुख रहे है। उन्होंने 'भारत भारती' में आर्य–नारियों के तप, त्याग, तथा आदर्श को प्रस्तुत करके वर्तमान समय में नारी में इन मानव–मूल्यों को प्राणवान बनाने का प्रयास किया है।

समर्पण और वात्सल्य का नाम ही नारी है । समाज में नारी के रूप में माता का पद पूजनीय एवं श्रेष्ठ माना जाता हैं। माता को त्याग एवं समर्पण का अक्षयकोष कहा गया है। एक माता के लिए संसार में अपनी संतान से बढ़कर प्रिय दूसरा नहीं हो सकता है। लेकिन भारतीय आर्य–माताओं ने पर–हितार्थ अपनी संतान का भी उत्सर्ग कर दिया। कवि गुप्त के 'भारत भारती' मुक्तक काव्य में विदुला, सुमित्रा, और कुन्ती जैसी त्यागशील माताओं के जनहित हेतु किए गए उत्सर्ग एवं त्याग स्वतः जीवंत हो उठे है–

" हारे मनोहत पुत्र को फिर बल जिन्होंने था दिया,
रहते जिन्होंने नव–वधू के सुत–विरह स्वीकृत किया।
द्विज–पुत्र–रक्षा–हित जिन्होंने सुत–मरण, सोचा नहीं,
विदुला, सुमित्रा और कुन्ती–तुल्य माताएँ रहीं। " 2

भारतीय नारी में उपस्थित सहयोग, परोपकार एवं पतिपरायणता वें मानव–मूल्य है, जो उसे नव्यता और भव्यता प्रदान कर उसे पुरुष के समक्ष स्थापित करते हैं।

---

1. साहित्य का विस्तार अभी भी हमारा कम नहीं,
प्राचीन किन्तु नवीनता में अन्य उसके सम नहीं।
मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती — पृ. सं. 32
2. वहीं, — पृ. सं. 18

भारतीय नारी अपने पति–सेवा और धर्मपालन से कभी भी पीछे नहीं हटी है। नारी के इन गुणों की बदौलत ही ईश्वर ने उन्हें दिव्य–बल प्रदान किया है। कवि ने गान्धारी, दमयन्ती व अंशुमती आदि नारियों के पतिसहयोग, त्याग आदि को अपनी कलम मसि से इस प्रकार अंकित किया है –

" मूँदे रही दोनों नयन आमरण गान्धारी जहाँ
पति–संग 'दमयन्ती' स्वयं वन वन फिरी मारी जहाँ।
यों ही जहाँ की नारियों ने धर्म्म का पालन किया,
आश्चर्य क्या फिर ईश ने जो दिव्य–बल उनको दिया। " 1

नारी में समाहित त्याग, शौर्य और आत्मबलिदान वे ओज गुण है जो भारतीय नारी को क्षत्राणी और वीर नारी के अलंकरण से अलंकृत करते हैं। भारतीय नारियों के देश पर आए संकट में धर्म की रक्षार्थ आत्म निर्भर होकर युद्ध करने की गाथाएँ इतिहास प्रसिद्ध है। कवि गुप्त ने 'भारत भारती' मुक्तक काव्य में अपने पति को युद्ध हेतु विदा करते समय वीर क्षत्राणी नारी के उत्साह एवं प्रसन्नता को भावी अभिलाषा के साथ इस प्रकार प्रकट किया है –

" क्षत्राणियों भी शत्रुओं से हैं यहाँ निर्भय लड़ीं,
इतिहास में जिनकी कथाएँ हैं अनेक भरी पड़ी।
देकर विदा युद्धार्थ पति को प्रेम वल्ली–सी खिलीं,
यदि फिर न भेंट हुई यहाँ तो स्वर्ग में झट जा मिलीं। " 2

आरंभ से ही 'नारी' नर की प्रेरणा–शक्ति बनकर संसार की जीवन–मात्रा में नर के साथ हमसफर बन कर सफर करती है। वह पति को दुःख में धैर्य प्रदान करती है तो सुख में उसे शांति प्रदान करने वाली हैं तो रोग में पत्नी, पति की जीवन–औषधि बनती है। कवि गुप्त ने नारी का नर के जीवन–क्षेत्र में प्रत्येक स्तर पर उसके योगदान को इस प्रकार मुखरित किया है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती — पृ. सं. 20
2. वहीं, — पृ. सं. 49

" संसार–यात्रा में स्वपति की वे अटल अश्रान्ति हैं,
है दुःख में वे धीरता, सुख में सदा वे शान्ति है।
शुभ सान्त्वना हैं शोक में वे और औषधि रोग में,
संयोग में सम्पत्ति हैं बस, हैं विपत्ति वियोग में। " 1

समाज में नारी को समर्पण एवं सहनशीलता की प्रतिमूर्ति माना जाता है। नारी के अलावा संसार में कोई भी मंगलमय समर्पण नहीं कर सकता है। लेकिन नर के द्वारा नारी के इस त्याग एवं समर्पण का नाजायज फायदा उठाया जाता है। उसके द्वारा अपने अपराध को नारी के सिर मढ़ दिया जाता है। कवि गुप्त ने भी 'भारत भारती' मुक्तक काव्य में नारी के प्रति समाज की धारणा को इस प्रकार उद्घाटित किया है–

" ऐसी उपेक्षा नारियों की जब स्वयं हम कर रहे,
अपना किया अपराध उनके शीश पर हैं धर रहे।
भागें न क्यों हमसे भला फिर दूर सारी सिद्धियाँ,
पातीं स्त्रियाँ आदर जहाँ रहती वहीं सब ऋद्धियाँ। " 2

वर्तमान समय में नारी चेतना को पंख लगाने में सर्वाधिक योगदान शिक्षा का है। आज आवश्यकता इस बात की है कि नारी को शिक्षित करने में नर अपना योगदान दे तभी, 'एक बेटी पढ़ेगी, सात पीढ़ी तरेगी' वाली कहावत सच्चे अर्थों में चरितार्थ होगी। कवि गुप्त का इस संबंध में मानना है कि पुरुष का उच्च शिक्षित होना तभी सार्थक होगा जब वह नारी को शिक्षित करने हेतु अपना योगदान दें। कवि ने आधी आबादी नारी के शिक्षा प्राप्ति के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए है –

" विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आएगी–
अर्द्धांगियों को भी सु–शिक्षा दी न जब तक जाएगी।
सर्वांग के बदले हुई यदि व्याधि पक्षाधात की–
तो भी ने क्या दुर्बल तथा व्याकुल रहेगा वातकी। " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती — पृ. सं. 56
2. वहीं, — पृ. सं. 124
3. वहीं, — पृ. सं. 160

कवि गुप्त के मुक्तक काव्य 'भारत भारती ' की आर्य–नारियों में नारी चेतना विद्यमान हैं। प्रस्तुत काव्य में नारी की दयनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार सुप्त और कायर नर को जगाने की क्षमता एवं जोश का परिचय दिया है। उनके काव्य में नारी के प्रति असमानता, भेदभाव अनमेल विवाह एवं शोषण के खिलाफ रणभेरी बजती हैं। कवि ने विधवाओं की दशा पर विचलित होकर नारी के विधवा होने का एक कारण अनमेल विवाह को माना है। कवि विधवाओं की दशा पर विचलित होकर इस कलुष सामाजिक परम्परा पर प्रहार करते हैं, उन्होंने पुरुषों से बेमेल विवाह छोड़ने की अपील इस प्रकार की है –

" प्रतिवर्ष विधवा–वृन्द की संख्या निरन्तर बढ़ रही,
रोता कभी आकाश है, फटती कभी हिलकर मही।
हा! देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को ?
फिर भी नहीं हम छोड़ते हैं बाल्य–वृद्ध विवाह को।" 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने भारतीय संस्कृति में आस्था एवं नारी के प्रति श्रद्धा रखने के कारण उन्होनें अपने मुक्तक काव्य 'भारत भारती' में स्थान–स्थान पर नारी की गरिमा, त्याग एवं समर्पण को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है।

'स्वदेश–संगीत' में नारी चेतना –

'स्वदेश–संगीत' राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा विरचित 65 कविताओं का एक मुक्तक काव्य संग्रह हैं। इन कविताओं की विषयवस्तु नारी चेतना एवं राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन है। 'भारत भारती' मुक्तक काव्य की भॉति 'स्वदेश–संगीत' काव्य संग्रह का उद्देश्य भी भारतवासियों को नवजागरण का संदेश देना है। आज समाज में छल, कपट तथा स्वार्थ का वातावरण चारों ओर पैर पसार रहा है। कवि गुप्त ने नारी–शक्ति को देश में व्याप्त शोक द्वेष, अधर्म, अकर्मण्य,भय आदि के निवारण हेतु शक्ति–पूंज महाशक्ति को उसके विविध रूपों में आशावादी कवि ने इस प्रकार स्मरण किया है –

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती पृ. सं. 127

" ओ शोकहारिणी, लोकतारिणी, आ जा,
ओ धर्म्मधारिणी, कर्म्मकारिणी, आ जा।
ओ भय निवारिणी, विजयसारिणी, आ जा,
ओ भव विहारिणी, विभवचारिणी, आ जा,
आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ आ जा। " 1

माता के समान पालन–पोषण करने के कारण इस पृथ्वीतल पर मातृभूमि ही मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने की अधिकारी हैं। यह मातृभूमि, वह भूमी है, जिस पर मानव ने ऋजुता, उदारता, शुचिता एवं शांति का चरमशिखर र्स्पश किया है। कवि गुप्त ने मानव को जन्म से लेकर एक श्रेष्ठ नागरिक बनकर, उसके जीवन के अंत होने तक के मातृभूमि के योगदान को इस प्रकार लिपिबद्ध किया है–

" जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक सरक कर खड़े हुए हैं।
परमहंस–सम बाल्यकाल में सब सुख पाये,
जिसके कारण 'धूल भरे हीरे' कहलाये। " 2

भारतभूमि की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह अन्तर्दृष्टि एवं आध्यात्मिकता का निकेतन है। कवि गुप्त के अनुसार "जब हम मातृभूमि की रज में सनकर एकाकार हो जायेंगे तब हम सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर पवित्र आत्मा की भाँति दिव्य हो जायेंगे। " 3

लेकिन मानव ने अपनी छद्म–प्रगति के आधार पर हमारे प्राचीन मूल्यों का ह्रास कर लिया है। जिसके कारण देश में लोभ, मोह से प्रेरित सौन्दर्यतृष्णा के आकर्षण से नारी के सम्मान को झटका लगा। जो नारी प्राचीन भारत में शील तथा सन्मार्ग–द्रष्टा थी और मानव के मन में जिनके प्रति कुविचारों का लेशमात्र स्थान नहीं था। उस प्राचीन भारत के गौरव को याद कर कवि गुप्त ने 'स्वदेश–संगीत' मुक्तक काव्य में अपना दुःख एवं क्षोभ इस प्रकार प्रकट किया है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश – संगीत — पृ. सं. 17
2. वहीं, — पृ. सं. 28
3. उस मातृभूमि की धूल में जब पूरे सन जायँगे।
   होकर भव–बन्धन–मुक्त हम आत्मरूप बन जायँगे।
   वहीं, — पृ. सं. 31

" सुगुण शीलवती कुलकामिनी,
सहज थीं सब सत्पथगामिनी!
तनिक भी कुविचार न था जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ ? " 1

मानव मन में मोह, ईर्ष्या, द्वेष एवं कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है। यह केवल नीति और सद्वृत्ति का ही नाश नहीं करता, अपितु बुद्धि का क्षय भी करता है। कवि गुप्त ने मानव–जाति के उद्धार में इस रोग–रूपी बहुशीश रावण का वध अनिवार्य माना है। क्योंकि नारी सीता मानव की कलुषित–वृत्तियों के सागर से घिरी हुई है।उन्होंने 'स्वदेश–संगीत' में मुक्तक काव्य में नारी के उद्धार के लिए रावण के वध को इस प्रकार अनिवार्य माना है –

"यह दशा है इस तुम्हारी कर्म्मलीला भूमि की,
हाय! कैसी गति हुई इस धर्म्म–शीला भूमि की।
जा घिरी सौभाग्य–सीता दैन्य–सागर–पार है,
राग–रावण–वध विना सम्भव कहाँ उद्धार है। " 2

कवि गुप्त ने 'स्वदेश–संगीत' मुक्तक काव्य में सांस्कृतिक दृष्टि से भी नारी को प्रमुख स्थान प्रदान किया है। भारतीय नारी शक्ति–स्वरूपा देवी के समान है। जिसके कारण हमारे घर मंदिर की भाँति पवित्र और निर्मल बनें हुए है। हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब–जब नर द्वारा नारी के सतीत्व पर संदेह प्रकट किया है, तब–तब नारी ने अग्नि के समक्ष अपने सतीत्व की परीक्षा दी है। भारतीय नारियों की करुण कहानी पर क्षोभ व्यक्त करते हुए कहते है–

" हे देवि, हमारे घर मंदिर बने तुझी से,
सब दुख दूर करती सन्तोष पूर्ण वाणी।
शुचि–अग्निदेव साक्षी तेरे सतीत्व का है,
इतिहास कह रहा तेरी करुण कहानी।" 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश – संगीत पृ. सं. 38
2. वहीं, पृ. सं. 64
3. वहीं, पृ. सं. 75

जो नारी समाज में आध्यात्मिक एवं दैवीय गुणों से विभूषित है, जिस नारी को त्यागकर भगवान शिव भी 'शव' के समान हो जाए, उस नारी को अर्द्धांगिनी बनाने में कौन मूर्ख पीछे रहेगा। कवि गुप्त ने नारी के योगदान को इस प्रकार स्वीकार किया है –

" ममतामयी, कहीं भी समता मिली न तेरी,
भारत हुआ तुझी से भूस्वर्ग लोकमानी।
अर्द्धांगिनी बनाते कैसे तुझे न हिन्दू ?
शिव शक्ति–हीन शव हों जो छोड़ दे भवानी। " 1

नर के द्वारा नारी को अबला माना जाता हैं। परन्तु कवि गुप्त के 'स्वदेश–संगीत' मुक्तक काव्य में नारी सबल एवं सशक्त होने के साथ मानव का लालन–पालन करने वाली, घर को स्वर्ग बनाने वाली लक्ष्मी के समान है। कवि ने अपने 'स्वदेश–संगीत' मुक्तक काव्य में नारी को भारत माता के दुःख, शोक, संताप आदि को हरने वाली एक माता के रूप में इस प्रकार उठ खड़े होने का आह्वान किया है–

" घर की लक्ष्मी तुम्हीं हमारी, लालन पालन करो, उठो,
पुण्य भूमि भारत के सारे दुःख शोक तुम हरो, उठो।
उसे न और भुलाओं हे माताओं तुम शीघ्र उठों।" 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने माता के रूप में नारी के उस सहज रूप को अवधारित किया है, जो दायित्व पूर्ण एवं समभाव से अपनी संतान का पालन–पोषण तथा संवर्द्धन करती है। अतः पुत्र का दायित्व है कि अपनी माता एवं समस्त नारी के योगदान को आत्मसात् करें, तभी नारी चेतना का पथ आलोकित होगा।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश – संगीत पृ. सं. 75
2. वहीं, पृ. सं. 76

'हिन्दू' में नारी चेतना –

भारत और भारतीयता में विश्वास रखने वाले, देशोंद्वार के प्रबल समर्थक, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'हिन्दू' मुक्तक काव्य में प्राचीन भारतीय आदर्शों की आधुनिक संदर्भ में व्याख्या की है। कवि गुप्त के अनुसार भारतीय स्त्रियों में ज्ञान एवं विद्वता का पूंज हैं। जिसने भारत की नीतिमत्ता और आध्यात्मिक उन्नति को सर्वोच्च स्थान दिया है। इस संदर्भ में कवि गुप्त ने 'हिन्दू' काव्य की भूमिका में माना है कि "अपवाद तो सभी विषयों में पाये जाते हैं, परन्तु फूलों में स्वभावतः सुगन्धि ही होती है, दुर्गन्धि नहीं।" 1

भारतीय आर्य–नारी का पुण्यभूमि भारत देश में गौरवशाली अतीत रहा है। उसके समर्पणमय–उत्कर्ष ने वीर–'नारियों में उत्साहमय बलिदान का संचार किया है। कवि गुप्त की नारियों ने परमुखोपेक्षिता तथा हीनताबोध से ग्रस्त पुरुषों में भी अपने बलिदान एवं त्याग के आधार पर पौरुष–शक्ति का संचार किया है। पद्मिनी जैसी नारियों ने अपने स्वाभिमान की रक्षार्थ स्वयं को अग्नि में समर्पित कर दिया। कवि ने इन नारियों के उत्कर्ष को इस प्रकार वाणी दी है–

> किसके लिए मिटा चित्तौर ?
> जूझे राजपूत सिरमौर ?
> रही पद्मिनी रूपी साख,
> पाई बस रिपुओं ने राख।" 2

प्राचीन भारत के इतिहास में पुरुषों के द्वारा नारियों की रक्षार्थ सम्पूर्ण राजकाज एवं जीवन उत्सर्ग का भाव रहा है। लेकिन आज नारी का जीवन परिस्थितियों के भीषण झंझावतों से जूझ रहा है। ऐसे में यदि एक विधवा नारी के जीवन की कल्पना की जाय तो उसके दुःखों का अनुमान लगाना आसान नहीं होगा। कवि गुप्त का इस संबंध में मानना है कि जिस प्रकार एक विधुर पुरुष द्वारा दूसरा विवाह कर लिया जाता है, ठीक उसी प्रकार एक विधवा स्त्री द्वारा भी दूसरा विवाह किया जाना चाहिए। तभी उसके साथ सच्चे अर्थो में समाज में न्याय होगा–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू (भूमिका) पृ. सं. 05
2. वहीं, पृ. सं. 49

" किस पर है इसका दायित्व ?
यही तुम्हारा है न्यायित्व
कि तुम करो ब्याहों पर ब्हाय,
पर विधवाएँ भरे न आह! " 1

भारतीय नारी आचार–विचार से पवित्र एवं पुण्य होती है। विधवा के रूप में भी वह नारी विराग, सहनशीलता त्याग, संयम, सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति होती है। कवि गुप्त ने 'हिन्दू' मुक्तक काव्य में एक विधवा नारी के आन–वान–शान की रक्षार्थ ईश्वर से प्रार्थना करते है–

" वह विराग की सूरत एक,
महात्याग की मूरत एक।
संयम, सहिष्णुता की खान
ईश्वर रखे उसकी आन। " 2

संसार में प्रत्येक पुरुष को चाहिए की वह नारी का सम्मान एवं आदर करें। "जब तक स्त्री–पुरुष के भेद को भूलकर प्रत्येक व्यक्ति मानवता का दर्शन नहीं करते तब तक इस देश की स्त्रियों की यथार्थ उन्नति नहीं हो सकती। क्योंकि यह वहीं भूमि है जिस पर रमणी–रत्न की ज्योति जगमग हुई है। " 3

नारी वह प्रकाश–पुंज है जो विपत्ति रूपी अंधकार में पुरुषों का पथ आलोकित करती है। भारतीय समाज में नारी पुरुष की उच्च पथ–द्रष्टा रही है। नारी को शक्ति, ज्ञान और सम्पत्ति का प्रतीक माना गया है। इसी कारण हिन्दू समाज में दुर्गा, सरस्वती एवं लक्ष्मी के रूप में उसका योगदान अविस्मरणीय है। कवि गुप्त ने नारी–शक्ति को स्थान–स्थान पर अपनी शक्ति के साथ इस प्रकार प्रकट किया है –

" गृह में गृह–लक्ष्मी की पूर्ति,
वन में सावित्री की मूर्ति।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू पृ. सं. 56
2. वहीं, पृ. सं. 57
3. भूमि वही है करो प्रयत्न / हुए जहाँ वे रमणी रत्न।
जिनकी जगमग ज्योति विलोक / चौंकी स्वयं नियति गति रोक।
वहीं, पृ. सं. 58

रण में असुर–नाशिनी शक्ति,
आविर्भूत करें निज भक्ति। " 1

इस प्रकार नारी समाज की वह सामाजिक एवं मानवीय विरासत है। जिसकी बुनियाद पर पुरुष रूपी प्रासाद खड़ा हैं। अतः आज उस बुनियाद को खोंखला करने की बजाय सहेजने का संकल्प लेना होगा।

'अंजलि और अर्ध्य' में नारी चेतना –

'अंजलि और अर्ध्य' राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का एक शोकगीति मुक्तक–काव्य हैं। इस मुक्तक काव्य में कवि गुप्त ने गांधी जी की मृत्यु से शोक–विह्वल होकर बापू के जीवन की प्रमुख घटनाओं को निर्देशित करते हुए उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। जिस महापुरुष ने सत्य, अहिंसा, परदुःखकातरता एवं नारी सम्मान का जो महान संदेश विश्व को दिया, उसी की पशुतापूर्वक मानव द्वारा हत्या करने से मानव–जाति कलंकित हो गयी। कवि गुप्त ने राष्ट्रपिता के परलोक जाने पर अपनी लज्जा एवं शोक को कातर वाणी में इस प्रकार प्रकट किया है–

" अरे राम! कैसे हम झेलें
अपनी लज्जा, उसका शोक ?
गया हमारे ही पापों से
अपना राष्ट्रपिता परलोक। " 2

माता के समान पालन–पोषण करने के कारण भूमि मातृभूमि कहलाती है। मातृभूमि की भारतवर्ष पर विशेष कृपा रही है। यहाँ समय–समय पर अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया है। उन महापुरुषों ने अपने सद्कार्यों के द्वारा मानव–समाज को कृतार्थ किया है। मातृ भूमि ने एक ऐसा ही रत्न गांधी जी के रूप में देश को प्रदान किया था। कवि गुप्त ने गांधी जी के जन्म पर मातृभूमि के प्रति अपनी कृतज्ञता इस प्रकार प्रकट की है–

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू — पृ. सं. 58

2. मैथिलीशरण गुप्त : अंजलि और अर्ध्य — पृ. सं. 05

" शतियों सहीं प्रसव की पीड़ा
जब तूने अयि मातृमही,
तब यह एक लाल पाया था
हाँ, अपना–सा आप यही।" 1

यह सत्य है कि यशोदा रूपी भारत–माता को जब–जब कंस रूपी दुष्टों ने बेड़ियों में जकड़ा है, तब–तब कृष्ण के रूप में किसी न किसी महापुरुष ने भारतभूमि पर जन्म लिया है। गांधी जी ने भी भारत माता के सच्चे सपूत के रूप में उनकी परतंत्रता–बेड़ियों को काटने में अपना जीवनोत्सर्ग किया है। कवि गुप्त ने अपने 'अंजलि और अर्ध्य' मुक्तक काव्य में कृष्ण की भाँति गांधी जी के योगदान को इस प्रकार अवतरित किया है–

" हुआ देवकी का मोहन–सा
तू भारत जननी का जात,
उसके बंधन कटे और हा !
व्याध–बधिक ने किया कुघात। " 2

भारत माता के सपूतों की चरित्रगाथा हमेशा उत्कर्षमय रही है। किसी मुग्ध–नारी के रूप में कोई स्त्री इनकी ओर आकर्षित भी हो जाती है तो इन सपूतों ने उन्हें बहिन–बेटियों की भाँति मानकर उन्हें इस हेतु समझाया है। गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि नारी–सम्मान ही सर्वोपरि है। उनके यौवनकाल में यदि कोई उपपत्नी का भाव लेकर उनकी ओर आकर्षित हुई तो वह उनकी बहिन बनकर ही लौटती है–

" नव यौवन की भोग–लालसा,
पर वह भी थी घर घेरी।
आई जो उपपत्नी होकर,
गई बहन बनकर तेरी। " 3

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : अंजलि और अर्ध्य पृ. सं. 02

2. वहीं, पृ. सं. 20

3. वहीं, पृ. सं. 15

भारत देश की आजादी के आन्दोलन में नर के साथ नारी का योगदान भी अविस्मरणीय है। नारियों में मातृ–भक्ति का भाव सर्वोपरि एवं उत्कृष्ट है। गांधीजी की प्रेरणा एवं संकल्प से भारतीय नारी घर से निकल कर स्वतंत्रता–संग्राम में अपने योगदान हेतु आगे आई। कवि गुप्त ने अपने 'अंजलि और अर्ध्य' मुक्तक काव्य में स्वाधीनता–संग्राम में मातृ–शक्ति के योगदान को इस प्रकार उकेरा है –

" अबलाएँ भी तेरे बल से,
बाहर आ आकर जूझीं।
कुछ न समझ कर भी वे अपनी,
मातृ–भक्ति समझी बूझीं। " 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने अपने 'अंजलि और अर्ध्य' मुक्तक काव्य में गांधीजी के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान का स्मरण करके क्षत्राणी के रूप में नारी के योगदान का वर्णन करना कवि का अभीष्ट प्रयोजन रहा है।

'राजा–प्रजा' में नारी चेतना –

कवि गुप्त द्वारा रचित 'राजा–प्रजा' मुक्तक काव्य दो खण्डों में विभक्त है। 'राजा' शीर्षक में राजा अपनी प्रजा को संबोधित करता है। 'प्रजा' शीर्षक में प्रजा अपने राजा को संबोधित करती है। इस मुक्तक काव्य में राजा (राजतंत्र) की स्थापना के बाद राजतंत्र में उत्पन्न विकृति के उपरांत देश में लोकतंत्र की स्थापना करना ही कवि गुप्त का मुख्य प्रयोजन है। कवि ने लोकतंत्र की स्थापना में प्रजा की सर्तकता को इस प्रकार बतलाया है–

लो, कटा युगों का पाश,
बजाओ बाजा, ले लो अब कोई राज्य, चला मैं राजा
पर सावधान हे सब समान बड़भागी,
अब तक मैं ही था पाप–दोष का भागी।" 2

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : अंजलि और अर्ध्य पृ. सं. 16

2. मैथिलीशरण गुप्त :राजा–प्रजा पृ. सं. 07

देश में आधी–आबादी का नेतृत्व करने वाली भारतीय नारियों ने स्वतंत्रता–संग्राम में अपना अमूल्य योगदान दिया है। डॉ.सुमन शुक्ला ने इन नारियों के योगदान के विषय में लिखा है कि "गढ़मंडल की रानी दुर्गावती, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, लखनऊ की बेगम हजरतमहल, बिहार के राजा मानाराव की बेटी मैना आदि वीर–नारियों ने देश के स्वाधीनता संग्राम में अपना प्रमुख योगदान दिया था। " 1

कवि गुप्त ने भी अपने 'राजा–प्रजा' मुक्तक काव्य में इन ललनाओं के स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान के विषय में बताया है कि जिन्हें पुरुष अबलाएँ समझते हैं उन्होंने रणक्षेत्र में अपने आत्मिक बल से शक्ति–रूपिणी क्षत्राणी सिद्ध कर वीरांगना होने का परिचय दिया है। कवि ने ऐसी ललनाओं के आत्मबल को सहज ही अनुभूत कर सम्मान दिया –

" छल पाया क्या हमें कूट छलनाओं ने भी,
स्वतंत्रता का युद्ध लड़ा ललनाओं ने भी।
अबलाएँ हैं शक्ति रूपिणी आत्मिक बल में,
इसे सिद्ध कर दिया उन्होंने समरस्थल में। " 2

इस प्रकार भारत देश की वीरांगनाओं की कथाओं का जितना वर्णन कवि गुप्त के काव्य में हुआ है, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। भारतीय नारी ने अपने शक्ति–स्वरूप से पुरुष द्वारा उन्हें अबला समझे जाने की भावना को मिटाने का भरसक प्रयास किया है। 'राजा–प्रजा' मुक्तक काव्य में प्रजा के माध्यम से नारी त्याग की सराहना की गई है, जो देश की प्रजा का नैतिक–धर्म भी है।

गीतिकाव्यों में नारी चेतना –

'पत्रावली' में नारी चेतना–

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का विराट व्यक्तित्व व उनका समस्त काव्य राष्ट्र के साथ भारत की आधी आबादी मानव–जननी नारी को समर्पित है। राष्ट्र निर्माण में नारी के योगदान को कैसे भुलाया जा सकता है ? नारी के राष्ट्रीय योगदान को कवि गुप्त ने अपने

1 डॉ. सुमन शुक्ला : ऐतिहासिक महिलाएं पृ. सं. 66

2. मैथिलीशरण गुप्त : राजा–प्रजा पृ. सं. 66

'पत्रावली' गीतिकाव्य में सात पद्यात्मक पत्रों का संग्रह करके वर्णित किया है। ये पत्र विभिन्न नारी एवं पुरुष पात्रों द्वारा विभिन्न ऐतिहासिक संदर्भो में लिखें हैं। इतिहास में ये सभी पत्र किसी न किसी सत्प्रेरणा की ओर संकेत करने के उद्देश्य से लिखे गये है। इन पत्रों में वर्णित विभिन्न नारियों द्वारा नारी चेतना इस प्रकार व्यक्त हुई है–

महारानी सिसोदिनी–

वीर–प्रसूता मरुभूमि को वीर–योद्धाओं के साथ वीरांगनाओं ने भी अपने त्याग एवं बलिदान की स्वर्ण–आभा से चमकाया है। इस संबंध में डॉ. आशारानी व्होरा का मानना है कि "राजस्थानी की वीर नारियों अपने वीरता के नारे को बुलंद करने में कभी पीछे नहीं रहीं वे अग्रणी होकर ही चली है।" 1 इन नारियों में ऐसी ही अग्रणी वीर नारी महारानी सिसोदिनी है।

'पत्रावली' गीतिकाव्य में कवि गुप्त का पाँचवा पत्र भी युद्ध में पराजित होकर लौटे अपने पति महाराज जसवन्तसिंह के नाम लिखा महारानी सिसोदियी का पत्र है। उनके इस पत्र में उनकी उत्कृष्ट वीर–भावना व्यक्त हुई है, जो राजपूत क्षत्रियों के रक्त से संचरित होकर उन्हें युद्ध में विजय–श्री का वरण करने की प्रेरणा देती है। महारानी सिसोदिनी क्षत्राणी वीर नारी होने के नाते अपने पति का युद्ध से भाग कर वापस आना एक वीरांगना को क्षोभ एवं ग्लानि से भर देता है। पति के इस कायरतापूर्ण कृत्य पर एक वीर क्षत्राणी नारी को 'नाथ'(स्वामी) कहने में भी लज्जा आ रही है। महारानी सिसोदिनी अपनी लज्जा एवं ग्लानि को मार्मिक व्यथा के साथ इस प्रकार प्रकट करती है–

" हे ना ....नहीं, नाथ नहीं कहूँगी,
अनाथिनी होकर ही रहूँगी।
होते जो कहीं तुम नाथ मेरे,
तो भागते क्या फिर पीठ फेरे। " 2

---

1 डॉ. आशारानी व्होरा : भारत की प्रथम महिलाएँ पृ. सं. 46

2. मैथिलीशरण गुप्त : पत्रावली पृ. सं. 21

पुरुष प्रधान समाज में नारी के द्वारा ही नर के यशोंगान में हमेशा योगदान दिया गया है। कुल एवं वंश के मान–सम्मान की रक्षा नारी के द्वारा ही की गई है। राजस्थान की इन वीर–नारियों ने तो अपने मान–सम्मान एवं सतीत्व की रक्षार्थ स्वयं को अग्नि में समर्पित करके की है। महाराजा जसवन्तसिंह को पराजित क्षत्रिय के रूप में जोधपुर लौटना महारानी सिसोदिनी जैसी वीरांगना के लिए दुस्सह होकर क्रोधित हो उठना स्वभाविक ही था। जिस राजपूती आन–वान को वह अपने सुख–वैभवपूर्ण दाम्पत्य जीवन से भी बहुत ऊँचा समझती है, उसके पति ने रणक्षेत्र से पराजित होकर लौटकर उसका अनादर किया है। वह अपने पति के अपयश से दुःखी होकर संग्राम में अमरत्व की अभिलाषा प्रकट करती हुई कहती है–

" क्या देह से है यश हाय! छोटा,
या मृत्यु से है अमरत्व खोटा।
संग्राम में जो तुम काम आते,
तो लोक में निश्चय नाम पाते। " 1

सद्प्रेरणा वह मानव–मूल्य है जो व्यक्ति को संसार में ऊँचाइयों की ओर ले जाता है। लेकिन नारी को त्यागने वाला, भोग की वस्तु मानने वाला मनुष्य उसकी इन प्रेरणाओं को अपराध समझने लगा है। 'पत्रावली' गीतिकाव्य में भी महारानी सिसोदिनी अपने पति को युद्ध क्षेत्र में आने पर मातृभूमि की वेदी पर मर मिटने की प्रेरणा देती है और पति के वापस आने पर अवज्ञा करती है। महारानी सिसोदिनी पति के अवज्ञा–अपराध में भी अपने वीर–क्षत्राणी धर्म को ही श्रेष्ठ एवं ऊँचा मानती है–

" चाहे अवज्ञा करके तुम्हारी,
मैंने किया हो अपराध भारी।
परन्तु मैं होकर क्षत्राणी,
कैसे कहूँ हा न यथार्थ वाणी ? " 2

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : पत्रावली पृ. सं. 02

2. वहीं, पृ. सं. 24

इस प्रकार कवि गुप्त ने महारानी सिसोदिनी को एक वीर–क्षत्राणी नारी के रूप में अंकित कर पुरातन भारत के राष्ट्र–प्रेम को सर्वोपरि रखते हुए भारतीय नारी के उच्च आदर्श की स्थापना करते हुए नव चेतना का संचार किया है।

अहिल्याबाई–

अपनी रक्षार्थ शरण में आये शत्रु को भी गले लगाने का भाव भारतीय आर्य–संस्कृति का आधारभूत–स्तम्भ रहा है। कवि गुप्त के 'पत्रावली' गीतिकाव्य का छठा पत्र महारानी अहिल्याबाई द्वारा राघोवा के दादा पेशवा के नाम लिखा गया है। महारानी अहिल्याबाई के दीवान ने स्वार्थवश मंत्री राघोवा को भड़काकर रानी के खिलाफ युद्ध हेतु तैयार कर दिया। महारानी अहिल्याबाई ने राघोवा से यह युद्ध लड़ा और विजय प्राप्त की। अहिल्याबाई वह वीर नारी है जो शक्ति एवं शासन में राघोवा की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होने पर भी उसने मन में कहीं भी दम्भ अथवा अहं का लेशमात्र भी स्थान नहीं है। अहिल्याबाई मानवीय–मूल्यों से युक्त वह नारी है जो राघोवा के शत्रु होने पर भी सम्मान की भावना व्यक्त करती है।

" जो आप आकर यहाँ करने लड़ाई,
देने चले समर में मुझको बड़ाई।
मैं धन्यभाग अपना यह मानती हूँ,
मैं भी कुछ नहीं हूँ यह मानती हूँ। " 1

महारानी अहिल्याबाई शिष्टाचार एवं सम्मान की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। शरण में आए शत्रु के प्रति सम्मान की भावना को प्रकट करने में कवि गुप्त के 'पत्रावली' गीतिकाव्य में निहित उच्च सांस्कृतिक मूल्य है। अपनी विजयश्री के प्रति आश्वस्त होकर भी उनके मन में राघोवा के प्रति अपना पूर्व मंत्री होने के कारण अंत तक सम्मान बना रहता है–

" पर मैं करूँगी गर्व कैसे,
तेरी उस विजय का जैसे। " 2

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : पत्रावली पृ. सं. 23

2. वहीं, पृ. सं. 26

इस प्रकार महारानी अहिल्याबाई का शिष्टाचार एवं सम्मान राघोवा के साथ सामान्य–जन के प्रति भी वर्तमान भौतिक–युग में नारी की उदार भावना का परिचायक है।

राजकुमारी रूपवती–

समाज में नारी–मुक्ति और नारी चेतना को वर्तमान सामाजिक स्तर पर लाने के साथ नारी के जीवन एवं चेतना की पगडंडी को नवीन राह में बदलने वाले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'पत्रावली' गीतिकाव्य में सातवाँ पत्र राजकुमारी रूपवती द्वारा महाराणा राजसिंह के नाम लिखा गया है। रूपनगर की राजकुमारी रूपवती महाराज राजसिंह की कीर्ति सुनकर मन ही मन उनका 'वर' रूप में वरण कर लेती है। किन्तु संकोचवश अपनी अभिलाषा प्रकट नहीं कर पाती है। उसी समय औरंगजेब रूपवती के रूप एवं गुणों की प्रशंसा सुनकर उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता है। तब अत्यन्त विवश होकर रूपवती महाराजा राजसिंह को नारी सतीत्व की रक्षार्थ पत्र लिखती है।

राजकुमारी रूपवती समाज में नारी को अपना योग्य वर के चयन करने की आजादी की समर्थक बनकर उभरी है। वह स्वयं तत्कालीन समय में समाज की परिस्थितियों में स्वयं को ढ़ालकर एक योग्य वर का चयन करती है। महाराजा राजसिंह भी राजकुमारी रूपवती की संकल्प–साधना एवं दृढ़ता से प्रभावित होकर औरंगजेब को युद्ध में परास्त करके रूपवती के साथ पाणिग्रहण करता है और स्वयं को कृतकृत्य समझता है। रूपवती वह वीर क्षत्राणी नारी है जो औरंगजेब द्वारा अपने पिता को अपमानित करने पर अपने क्षत्रिय–धर्म का पालन एवं संकल्प को आक्रोश के साथ इस प्रकार व्यक्त करती है–

" डोले का फरमान पाकर पिता उन्मत्त से हो रहे,
ज्वाला से अपमान की जल रहे, वे धैर्य हैं खो रहे।
शाही फौज कि जो सगर्व मुझको लेने यहाँ आ रही,
देंगे ये असि–नीर अर्घ्य उसको हैं ठान बैठे यहीं।" 1

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : पत्रावली पृ. सं. 29

भारतीय आर्य–नारी सतीत्व एवं संकल्प में विश्व में अग्रणी रही है। दुनिया का कोई भी भय एवं लोभ भारतीय नारी के सतीत्व एवं संकल्प को डिगा नहीं पाया है। रूपवती भी औरंगजेब द्वारा भय एवं लोभ दिखाये जाने पर स्वयं को पतिव्रता सीता की भाँति मानकर तथा औरंगजेब को दुष्ट रावण की भाँति मानकर नारी–आदर्श सीता का दृष्टान्त प्रस्तुत करती हुई कह उठती है–

" क्षत्राणी भय से कि लोभवश हो जो धर्म को छोड़ती,
तो सम्बन्ध अवश्य ही जनकजा लंकेश से जोड़ती। " 1

नारी के सम्मान को जब–जब नर ने शिशुपाल जैसा आततायी राक्षस बनकर रुक्मिणी के रूप में नारी को ठेंस पहुँचाई ,तब–तब कृष्ण जैसे महापुरुष ने उसके सम्मान की रक्षा की है। महारानी रूपवती के भी सम्मान एवं सतीधर्म पर प्रहार करने वाले औरंगजेब से रक्षार्थ महारणा राजसिंह से कृष्ण की भाँति वरण हेतु अपनी मार्मिक अभिलाषा इस प्रकार प्रकट करती है–

" पापात्मा शिशुपाल–सा यवन है,
मैं रुकमणि–सी फँसी।
कृष्ण, तुम्हीं सवेग सुध लो,
होने न पावे हँसी। " 2

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवि गुप्त ने अपने 'पत्रावली' गीतिकाव्य में उल्लेखित महारानी सिसोदिनी, अहिल्याबाई तथा रूपवती के माध्यम से नारी–जीवन संघर्ष के उच्चादर्शों की सफल प्रतिष्ठा की है। कवि ने जिन मानवीय–मूल्यों और आदर्शों की प्रतिष्ठा की है, उनकी सार्थकता केवल तत्कालीन युग में ही न होकर आज के विषमताओं से परिपूर्ण समाज में भी प्रासंगिक है।

'झंकार' में नारी चेतना –

कविवर गुप्त द्वारा छायावादी शैली में सृजित 'झंकार' गीतिकाव्य रहस्यवादी प्रगीतों का संकलन है। कवि गुप्त का मानना है कि "इन गीतों में स्वर व ताल के

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : पत्रावली पृ. सं. 30

2. वहीं, पृ. सं. 32

न होने पर भी ये गीत पाठक के मन को झंकृत करके, अलौकिक शून्य में मन को विहार कराते हैं। "1 कवि गुप्त असाम्प्रदायिक सामाजिक मनोवृत्ति को धारण करने वाले राष्ट्रकवि हैं। भगवान राम के सखी भाव की उपासना उनकी पारिवारिक भक्ति पद्धति हैं। उन्होंने जीव और परमात्मा की एकात्मकता पर बल दिया है। स्वयं पर नारी भावना का आरोप करके उन्होंने रहस्यमयी माधुर्यानुभूति की व्यंजना अपने 'झंकार' गीतिकाव्य में इस प्रकार की है–

" थे, हो और रहोंगे जब तुम,
थी, हूँ और सदैव रहूँगी।
कल निर्मल जल की धारा–सी,
आज यहाँ, कल वहाँ बहूँगी।" 2

दाम्पत्य जीवन में वियोग को नर–नारी के जीवन का कठोरतम समय माना गया है। इसके विपरीत मिलन को मधुरतम समय माना है। कवि गुप्त ने 'झंकार' गीतिकाव्य में मांसल–मिलन से ऊपर उठकर आध्यात्मिक मिलन को ही श्रेष्ठ मानकर उसका चित्र खिंचते है–

" सुनो खोजता है जो मुझको, कहीं नहीं पाता है।
यह पुकारना किन्तु आप ही, मुझे खींच लाता है। " 3

कवि गुप्त ने अपने काव्य में आध्यात्मिक उन्नति के साथ भारतवर्ष की उन्नति एवं प्रगति का सपना भी सँजोया है। कवि की अभिलाषा है कि हमारा देश दुष्ट, कपटी एवं चालवाजों से रहित रहें तथा कोई भी नागरिक ऐसा कार्य न करें जिससे हमारी राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को आँच आए। कवि गुप्त ऐसे राष्ट्रविरोधी तत्वों से सावधान रहने की सलाह देते हैं। वे आगाह करते है कि

" दुष्ट–दलन, कपटी कुटिलों की,
गले न अब यह दाल हरे!
अक्रूरप्रिय, क्रूर कंस की
चले न कोई चाल हरे। " 4

---

1. स्वर न ताल केवल झंकार,
   किसी शून्य में करे विहार
   मैथिलीशरण गुप्त : झंकार — पृ.सं. 05
2. वहीं, — पृ.सं. 97
3. वहीं, — पृ.सं. 87
4. वहीं, — पृ.सं. 33

इस प्रकार कवि गुप्त ने 'झंकार' गीतिकाव्य के माध्यम से मानव–मन को भावी जीवन के प्रति सावचेत् रहने के साथ झंकृत करने का सफल प्रयास किया है।

'कुणाल गीत' में नारी चेतना –

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'कुणाल गीत' गीतिकाव्य में नारी के त्याग, समर्पण एवं तितिक्षा को उच्च धरातल प्रदान किया है। कवि गुप्त ने 'कुणाल गीत' गीतिकाव्य की सृजना में अपनी मनःस्थिति की ओर संकेत करते हुए 'कुणाल गीत' की भूमिका में लिखा है "भारतरक्षा–विधान के अन्तर्गत बंदी–जीवन की मनःस्थिति ही इस गीतिकाव्य की रचना–भूमि के मूल में है। " 1 'कुणाल गीत' गीतिकाव्य के नारी–पात्रों की नारियों की चेतना इस प्रकार है–

कांचनमाला–

'कुणाल गीत' की कथानुसार सम्राट अशोक के पुत्र कुणाल को अपनी विमाता तिष्यरक्षिता की असफल कामासक्ति के कारण उनके क्रोध तथा प्रतिहिंसा का लक्ष्य बनना पड़ता है। कुणाल को अपनी विमाता द्वारा अंधा करके पत्नी कांचनमाला के साथ देश से निष्कासित कर दिया जाता है। कांचनमाला अंधे पति के साथ तीर्थाटन करती हुई, पतिव्रता सीता के आदर्शों का पालन करती है। वह अंधे पति के साथ रहते हुए भी गौरव का अनुभव करती है। कांचनमाला आदर्श नारी के रूप में अपने निराश्रित पति को निराशा एवं अंधकार से मुक्ति देने का प्रयास करती हुई, पथ–दृष्टा के रूप में अग्रगामी होकर भी अनुगामिनी बनी रहती है। कुणाल के लिए कांचनमाला का समर्पण एवं त्याग देखते ही बनता है–

" देखोगी सम्मुख तुम सब कुछ,
अपने लिए किन्तु अब कब कुछ।" 2

नारी के पतिधर्म एवं सतीत्व की पहचान पति के संकट व विपत्ति में होती है। 'कुणाल गीत' गीतिकाव्य में कुणाल की जीवन प्रेरणा कांचनमाला का यह व्रत इसलिए श्रेष्ठ है क्योंकि वह

1. मैथिलीशरण गुप्त : कुणाल गीत (भूमिका) पृ. सं. 04
2. वहीं, पृ. सं. 13

राज्य और शासन से दूर है। कुणाल कांचनमाला के गौरव को गान्धारी से भी बड़ा मानता है। क्योंकि कुणाल को धृतराष्ट्र की भांति शासन–सत्ता की चाह नही है–

" यह व्रत तो उससे भी भारी,
बनो न हा! गान्धारी।" 1

भारतीय–आर्य–शक्तिस्वरूपा नारी में अपराजेय जीवन–शक्ति है, स्वावलंबन है, आत्मविश्वास है और विषम परिस्थितियों में भी शान से जीने की क्षमता है। वह समान–भाव से सभी परिस्थितियों को स्वीकार करने का माद्दा रखती है। कवि गुप्त ने कांचनमाला में सामान्य नारी के इन गुणों का स्मरण एवं रौंपण करते हुए, नारी के महत्व को रेखांकित किया है। अपने पति का विश्वास पाकर वह कृतकृत्य है। कांचनमाला राज्य तथा वैभव से निष्कासित होकर भी अपने नेत्रहीन पति के साथ नूतन जगत् की सृष्टि करने में समर्थ है। कुणाल अपनी पत्नी के पथ–दृष्टा तथा अग्रगामिनी रूप को प्रेरणा–शक्ति मानकर कृतार्थ–भाव से कह उठता है–

" मेरी कांचन–कामिनी,
हो जा अब तो अग्र गामिनी।
तुझमें मेरा सारा जग है,
मेरे पग हैं, तेरा मग है। " 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने 'कुणाल गीत' गीतिकाव्य में कांचनमाला को गृहस्थ–परिवेश में दाम्पत्य जीवन की मधुरतम् अनुभूतियों के मध्य सतीत्व रूप में चित्रित किया है। नारी की नर के जीवन में एक रचनात्मक भूमिका होती है जो नर को आपातकाल, निराशा और दुःखो से दूर करने और अधीरता में धैर्य देने में अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर देती है। 'कुणालगीत' गीति काव्य की नारी कांचनमाला का समाज को यही आशावादी संदेश है।

'अनघ' में नारी चेतना –

तत्कालीन देश की युगीन समस्याओं के प्रति सावचेत् राष्ट्रकवि

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : कुणाल गीत पृ. सं. 13
2. वहीं, पृ. सं. 42

मैथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ' गीतिकाव्य में इस काव्य के नायक 'मघ' के रूप में एक ऐसे निस्पृह और लोक–सेवा के प्रति समर्पित पुरुष के साथ सात्विक नारियों का भी चित्रण किया है। मघ बौद्धकालीन समाज का प्रतिनिधि होते हुए भी गांधीवादी आदर्शों के प्रति समर्पित है। 'अनघ' गीतिकाव्य की नारियों में मघ की माता, उनकी आदर्श प्रेमिका सुरभि, ग्राम–भोजक की भार्या आदि प्रमुख हैं। इन नारियों की नारी चेतना इस प्रकार है–

मघ की माता–

राष्ट्रधर्म में पन्नाधाय से बराबरी करने वाली मघ की माता अपने पुत्र की राष्ट्र–सेवा को सम्बल, समर्थन और सहयोग प्रदान करती है। एक साधारण माता की भाँति वह अपने पुत्र को हमेशा अपने सानिध्य में रखकर पालन–पोषण करती हैं। एक माता को अपने बालक की जो चिन्ता होती है, वही चिन्ता मघ की माता की भी है। वह मघ के आहार और भोजन के लिए चिन्तित होकर मघ पर अपना वात्सल्य भाव इन शब्दों में प्रकट करती हुई कहती है कि –

" खान–पान का ध्यान नहीं,
निज तनु तक का ध्यान नहीं।
जब तक खिला न लूं तुझको,
भूख नहीं लगती मुझको। " 1

भारतीय आदर्श–नारी के अनुसार एक माता का आदर्श एवं वात्सल्य अपनी संतान के पालन–पोषण तक ही सीमित न होकर अपनी संतान में राष्ट्र–सेवा और देश सेवा का भाव जाग्रत करने तक विस्तृत है। मघ की माता के वात्सल्य एवं अनुशासन में भी पुत्र के लिए राष्ट्र सेवा एवं देश सेवा का भाव समाहित है। उनका मातृत्व–औंदार्य राष्ट्र की गरिमा में प्रतिष्ठित हैं। एक वीर क्षत्राणी–माता की भांति वह भी अपने पुत्र को मानव–धर्म एवं राष्ट्र की रक्षार्थ प्राणोंत्सर्ग करने बाल पुत्र को जन्म दे गौरवान्वित महसूस करती हुई कहती है कि –

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ पृ. सं. 26

" मेरे कोख कृतार्थ हुई जनकर तुम्हें,
मुझको तो गर्व है तुम्हारे कर्म पर,
मेरा सुत बलिदान हुआ है धर्म्म पर। " 1

इस प्रकार मघ की माता के रूप में कवि गुप्त ने एक ऐसी मातृ–शक्ति को स्थापित किया हैं, जिसने अपने जीवन की समस्त आस्थाओं और आकांक्षाओं को अपने पुत्र तथा उसकी उपलब्धियों पर केन्द्रित कर दिया है। वह एक ऐसी माता है जो अपना सर्वस्व राष्ट्र तथा समाज के हित–संरक्षण में विसर्जित कर देना चाहती है।

सुरभि –

कवि गुप्त की लेखनी से नारी–पात्रों के रूप में वर्णित माँ, पत्नी बहिन तथा प्रेमिका आदि नारी–रूपों को भारतीय आर्य–संस्कृति, मर्यादा एवं नारी–आदर्श के अनुरूप सजीव करने की अद्‌भुत क्षमता है। उनके काव्य में ऐसा लगता है मानो उनका प्रत्येक पात्र वास्तविक जीवन जी रहा हो। 'अनघ' गीतिकाव्य में मघ की प्रेमिका सुरभि भी अपने आदर्श प्रेमी मघ के कर्तव्य–मार्ग में सहयोगिनी होने में ही अपनी सार्थकता मानती है। "वह ऐसी नारी है जो मानवतावादी विचारों की पोषक होने के साथ ही जीवनादर्शों के प्रति समर्पित है। मघ के प्रति उसके हृदय में अपार आसक्ति, भक्ति एवं श्रद्धा का ज्वार हैं।" 2

सुरभि दाम्पत्य–जीवन के सुनहरे स्वप्नों में निमग्न रहते हुए भी मानवीयता से विमुख न होकर शारीरिक आकर्षण से युक्त प्रेम का उपभोग नहीं करना चाहती है। वह वर्तमान शारीरिक आकर्षण से युक्त प्रेम की तुलना में त्याग और समर्पण की नींव पर खड़े प्रेम को ही सार्थक मानती है। प्रेम के संदर्भ में सुरभि की आदर्श अवधारणा त्याग में निहित है वह कह उठती है–

" प्रेम करना है तो त्याग कर, नहीं वह कोरा राग है।
प्रकट कर न मित्र अपनी चाह, भमर खो दे न मरम की आह।" 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ पृ. सं. 89
2. ओ मेरी आसक्ति, भक्ति हो उनकी,
   इस तुच्छ देह में प्राण–शक्ति हो उनकी।
   वहीं, पृ. सं. 37
3. वहीं, पृ. सं. 92

साहस एवं धैर्य वे मानवीय गुण है जो न केवल नर को अपितु नारी को भी अपने संघर्ष–पथ पर अडिग रखते हैं। साहस एवं धैर्य ही मानव की संकट में पग–पग पर रक्षा करते हैं। 'अनघ' गीतिकाव्य में सुरभि भी साहस एवं धैर्य की प्रतिमूर्ति बनकर उभरी हैं। मघ की अनुपस्थिति में विरोधी एवं दुष्ट लोग उनका घर जला देते हैं। मघ की माता घबरा उठती है, लेकिन सुरभि अत्यन्त धीरता के साथ ईश्वर में श्रद्धा और विश्वास रखती हुई अपनी सास को धैर्य धारण करने की ओजस्वी सलाह इस प्रकार देती है –

" माँ पत्थर का हृदय करो कातर न हो,
जो कुछ दे भगवान धैर्यपूर्वक सहो।
जब हो कर्म सकाम, फलाफल तभी,
डिगते हैं क्या धीर मुत्यृ से कभी। " 1

सम्पूर्ण सृष्टि में नर का समस्त जीवन नारी के सहयोग से ओत–प्रोत है। वास्तव में यह सत्य है कि प्रेम ही मनुष्य को सेवा और त्याग की ओर अग्रसर करता है। जहाँ सेवा और त्याग नहीं, वहाँ प्रेम भी नहीं, वहाँ वासना का प्राबल्य होता है। सच्चा प्रेम सेवा और त्याग में अभिव्यक्ति पाता है। सुरभि का प्रेम भी ऐसा ही आदर्श प्रेम है। मनुष्यता के हरण करने वाले सुख एवं प्रेम को सुरभि एक क्षण के लिए भी स्वीकार नहीं कर वह तिलांजलि देते हुए कहती है कि –

" मनुष्यत्व से हमें गिरा दे जो कभी,
ऐसे सुख को लात मारती हूँ अभी।" 2

इस प्रकार 'अनघ' गीतिकाव्य की नारी सुरभि एक अविवाहित नारी होकर भी त्याग समर्पण एवं सेवा भावना में असीम सुख का अनुभव करती है। वह आदर्श तेजस्विता से युक्त नारी है जो अन्याय तथा दुराचार के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त कर नवीन आशावादी नारी चेतना का संचार करती है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ पृ. सं. 114
2. वहीं, पृ. सं. 118

चम्पूकाव्यों में नारी चेतना –

साहित्य में पति–परित्यक्ता नारियों की करुण स्थिति का चित्रण करने वाले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कविता, नाटक व गीतों के साथ गद्य–पद्य की दोनों विधाओं से युक्त समन्वित रूप में 'यशोधरा' चम्पूकाव्य की सृजना की है। 'यशोधरा' चम्पूकाव्य की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। इस काव्य में यशोधरा को सोते हुए छोड़कर शान्ति एवं मुक्ति–संधान के लिए गौतम का प्रयाण ऐतिहासिक प्रसंग हैं। कवि गुप्त ने 'यशोधरा' चम्पूकाव्य में उन वैष्णव–सिद्धान्तों की स्थापना की है, जिनमें साहित्य एवं सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित नारियों का करुण चित्रण है। 'यशोधरा' वह नारी है जिसका विरह परम्परागत श्रृंगार–बोध प्रेरित वियोग–उत्ताप से समन्वित न होकर धर्म और कर्त्तव्य की भावना से सम्बद्ध है। 'यशोधरा' चम्पूकाव्य में वर्णित नारी–पात्रों की नारी चेतना इस प्रकार है –

यशोधरा –

कविवर गुप्त का विराट व्यक्तित्व व उनका नारी व राष्ट्र को समर्पित काव्य संसार की आधी आबादी मानव की जननी नारी–शक्ति को समर्पित है। राष्ट्रप्रेम व राष्ट्र–निर्माण में नारी के योगदान को राष्ट्रकवि कैसे भुला सकता है। इस विषय में डॉ.रामेश्वर प्रसाद मीना की अवधारणा इस प्रकार है "पुरुष प्रधान समाज में पुरुष के यश का गान आदिकाल से ही साहित्य में गाया गया, लेकिन नारी को त्यागने वाला, भोग की वस्तु मानने वाला मनुष्य उसके महत्व को भूल गया है। " 1

कवि गुप्त ने अपने काव्य में जब उपेक्षित ललनाओं की आत्म–पीड़ा को वाणी देने का प्रयत्न किया तो उनकी विरह–व्यथाजन्य संवेदनशील उदारता समस्त समदु:ख–भोगिनी पोषितपतिकाओं को निमंत्रण दे बैठी । इस संदर्भ में उनका ध्यान कपिलवस्तु के राजोपवन में बैठी प्रिय–परित्यक्ता, राजवधू यशोधरा की ओर गया। कवि ने यशोधरा की वेदना एवं आशंका को उस विश्वास में परिवर्तित किया है, जिसका यशोधरा को भय था कि 'प्राणवल्लभ' एक दिन 'स्वामी' में बदल सकते है। यशोधरा अपनी सखी गौतमी से मन की आशंका को इस प्रकार व्यक्त करती है–

---

1. डॉ.रामेश्वर प्रसाद मीना : राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पृ. सं. 01

"आली, वही बात हुई भय जिसका था मुझे,
मानती हूँ उनको गहन–वन गामी मैं
ध्यान मग्न देख उन्हें एक दिन मैंने कहा–
क्यों जी, प्राणवल्लभ कहूँ या तुम्हें स्वामी मैं। " 1

मानव के सामाजिक जीवन में परिवार त्याग एवं समर्पण का दूसरा नाम है। लेकिन यह त्याग–भावना पति तथा पत्नी दोनों की ओर से होनी चाहिए। पति अपनी पत्नी को अकेला छोड़कर घर से निष्क्रमण कर जाए तो स्थिति अत्यंत पीड़ादायक हो जाती है, और जब प्रिय के दर्शन किसी कारण से दुर्लभ हो जाते हैं, तो स्थिति ओर भी कारुणिक हो उठती है। यशोधरा भी ऐसी ही कारुणिक ऊहापोह में अपना जीवन–यापन करती है। कवि गुप्त के अनुसार "तब यशोधरा जैसी नारी के पास समाज के प्रश्नों का कोई जवाब नहीं होता है। वह मौन–गर्विता होकर भी अंत में इस दुःखद् वेदना को मौन रहकर ही सहती हैं। " 2

यशोधरा वह नारी है, जो अपने व्यक्तित्व में केन्द्रित न होकर सार्वजनिक रूप से अपने जीवन का निर्वाहन करती है। वह एक ऐसी भारतीय नारी का प्रतीक बन जाती है जो अपने अस्तित्व को नगण्य बनाकर लोक–जीवन द्वारा समाज को प्रेरणा एवं चेतना प्रदान करती है। यशोधरा अपनी अस्मिता एवं गौरव का उद्घोष करती हुई करुणा–जल में कमलिनी के समान महकती रहती है। वह अपनी करुण–कहानी को गौंण करके अपने प्रियतन की गुण–गाथा को महत्व देती है। वह प्रियतम को अमृतत्व लाने हेतु अपना आशावाद इस प्रकार प्रकट करती है।

" जाओ नाथ! अमृत लाओ तुम, मुझमें मेरा पानी,
चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी, मुक्ति तुम्हारी रानी।
प्रिय तुम तपो, सहूँ मैं भरसक, देखूँ बस हे दानी–
कहाँ तुम्हारी गुण–गाथा में, मेरी करुण–कहानी ?" 3

कवि गुप्त को पुरुष नामधारी नर गौतम के निवृत्तिपरक चिन्तन में एकांगिकता तथा अस्वाभाविकता

---

1. मैथिलीशरण गुप्तः यशोधरा — पृ. सं. 19
2. सास–ससुर पूछेंगे तो उनके क्या अभी कहूँगी मैं ?
   हा! गर्विता तुम्हारी मौन रहूँगी, सहूँगी मैं।
   वहीं, — पृ. सं. 22
3. वहीं , — पृ. सं. 34

का आभास होता है। इसी पुरुष की प्रतिक्रियास्वरूप कवि ने यशोधरा के चरित्र को पूर्ण गौरव के साथ स्थापित कर प्रवृत्ति–मार्ग की सार्थकता प्रतिष्ठित की है। यशोधरा मानवीय, पारिवारिक तथा नारी आदर्शों से प्रेरित तथा सम्पोषित है। गौतम की निवृत्ति की जो पीड़ा यशोधरा के मन में हैं उसकी नींव वह चोरी–चोरी स्वामी के जाने पर नारीत्व के अपमान में इस प्रकार समझती है–

"सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी–चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या वे मुझको,
वे अपनी पथ–बॉधा ही पाते ?" 1

भारतीय नारी आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव के लिए अपना सर्वस्व–न्यौछावर करने वाली है। 'यशोधरा' चम्पूकाव्य में वर्णित नारी यशोधरा के हृदय में आत्मसम्मान अपनी चरम सीमा पर है। यशोधरा को इस बात का दुःख नहीं है कि उसके पति मुक्ति के लिए तपस्या करने चले गए, वास्तव में उनकी वेदना तो इस बात में है कि " उन्होंने विश्वास के साथ उन्हें पहचाना नहीं और इस योग्य नहीं समझा की अपने मन की बात उनसे कहकर ही निर्णय ले। " 2

भारतीय नारी मार्यादा, स्त्री–धर्म और अपने कर्त्तव्य के कारण क्षत्राणी भी है। वह पति के साथ सामाजिक–बंधनों में रह कर भी धर्म एवं देश की रक्षार्थ त्याग और समर्पण का परिचय देती है। यशोधरा की मानसिक मुख्य वेदना का संताप यह है कि वह एक क्षत्राणी है जो स्वयं सुसज्जित करके रण में पति को भेजने में समर्थ है। भारतीय वीर क्षत्राणी नारी के रूप में यशोधरा भी अपने पति गौतम के निष्क्रमण पर अपनी वीर क्षत्राणी हुंकार में वह समाज से पुनः पुनः यह प्रश्न करती है –

" स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में।

---

1. मैथिलीशरण गुप्तः यशोधरा पृ. सं. 20
2. मुझको बहुत उन्होंने माना / फिर भी क्या पूरा पहचाना ?
मैंने मुख्य उसी को जाना / जो वे मन में लाते।
वहीं, पृ. सं. 20

हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र–धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।" 1

सामान्यतः यह माना जाता है कि लज्जा वीर–नारी का आभूषण है, उसका सौन्दर्यवर्धक है। जब स्त्री लजाती है तो बड़ी सुन्दर दिखाई देती है। पुरुष समाज ने ऐसी कल्पनाएँ कर नारी को मोह लिया हैं। यशोधरा भी अपने रूप रंग के विषय में कहती है कि सौन्दर्य ने पुरुष के झूठे गौरव का भार ही वहन किया है। गौतम द्वारा रूप सौन्दर्य को तुच्छ एवं परिवर्तनशील बताने पर यशोधरा सौन्दर्य को अंधकार की कालिमा में डूबा हुआ मानकर इस प्रकार कोसती है–

" मेरे रूप–रंग, यदि तुझको अपना गर्व रहा है,
तो उसके झूठे गौरव का तूने भार सहा है।
तू परिवर्तनशील उन्होंने कितनी बार कहा है –
फूला दिन किस अंधकार में डूबा और बहा हैं ?" 2

नारी का सुखद संसार उसका घर आंगन होता है, जहाँ पर वह परिवार में अपने पति के साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के सपने संजोये रहती है, पति के साथ उसका एकात्मक–भाव नारी भावना की जिन ऊँचाइयों का स्पर्श करता है। उसे पुरुष–समाज द्वारा भावनात्मक एवं सामाजिक दृष्टि से अपमानित करने पर वह पलभर में धूमिल हो जाता है। यशोधरा का भी ऐसे ही दंभी पुरुष–समाज से यही सवाल है कि यदि नारी भक्ति–मार्ग की बॉधा है,तो विश्व की उस आधी आबादी की क्या गति है। इस विषय में यशोधरा पुरुषों के समक्ष यही प्रश्न रखती है–

" सिद्धी–मार्ग की बाधा नारी! फिर उसकी क्या गति है ?
उनसे पूछूँ क्या, जिनको मुझसे आज विरति है !
अर्द्धविश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है।
मैं भी नहीं अनाथ जगत् में, मेरा भी प्रभु पति है ? " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्तः यशोधरा पृ. सं. 20
2. वहीं, पृ. सं. 33
3. वहीं, पृ. सं. 33

यशोधरा को एक ओर अपने पति के त्याग एवं संसार–कल्याण की भावना में संतोष और गौरव प्राप्त होता है, तो दूसरी ओर उनके त्याग एवं समर्पण में समस्त सृष्टि का योगदान दृष्टिगोचर होता है। गौतम के सिद्धि उद्देश्य में वह स्वयं को सम्मिलित करके भी अंत में मानव–कल्याण ही देखती है। यशोधरा मन के चंचल कम्पन को त्याग कर संसार–कल्याण की कामना इस प्रकार करती है–

" पेड़ों ने पत्ते तक, उनका त्याग देखकर त्यागे,
मेरा धुँधलापन कुहरा बन छाया सबके आगे।
उनके तप के अग्नि–कुण्ड से घर–घर में हैं जागे,
मेरे कम्प, हाय! फिर भी तुम नहीं कहीं से भागे। " 1

कवि गुप्त के काव्य की नारी यशोधरा लोक–संग्रह और नव–निर्माण की उपेक्षा नहीं करती, अपितु मानव के द्वारा निर्वाण प्राप्ति में ही जीवन की सार्थकता मानती है। वह आर्य–संस्कृति के अनुरूप कर्म तथा प्रवृत्ति–मार्ग को मानव जीवन की चरम सिद्धि एवं परम् उपलब्धि मानते हुए, लोक–कल्याण, लोक–सेवा आदि के परिप्रेक्ष्य में ही गौतम का महाभिनिष्क्रमण से संबंधित जिज्ञासाओं के प्रति अपना निजी समाधान तथा विकल्प प्रस्तुत करती है–

" यदि हममें अपना नियम और शम–दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहें स्वस्थता सम है।
वह जरा एक विश्रान्ति वहाँ संयम है,
नवजीवन–दाता मरण कहाँ निर्मम हैं।" 2

'संसार में पति ही पत्नी की गति है। यशोधरा भी अपने पति गौतम के साथ कर्मयोगिनी की भांति अपने परिवार, परिवेश और आदर्शों के प्रति सामान्य रूप से व्यावहारिक होकर सबला जीवनयापन करती है। लेकिन पति के द्वारा सिद्धि हेतु छोड़कर चले जाने पर वह अचानक अबला हो जाती है। जो यशोधरा रानी थी, वह अब दासी भी नहीं रहती है। इस प्रकार अबला नारी जीवन की

1. मैथिलीशरण गुप्तः यशोधरा पृ. सं. 37
2. वहीं, पृ. सं. 80

कहानी आँचल में दूध और आँखों में पानी तक सिमटकर रह जाती है। यशोधरा एक अबला नारी की कहानी की कथाकार इस प्रकार बनती है–

"अबला–जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी–
आँचल में है दूध और आँखों में पानी !" 1

यशोधरा चम्पूकाव्य में यशोधरा में मातृत्व–गौरव को विशेष रूप से उभारा है। गौतम बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण के बाद " पुत्र राहुल ही माता यशोधरा का आलम्बन बनता है, लेकिन वह राहुल को अपने पिता को ही बार–बार स्मरण रखने की प्रेरणा देती है।" 2

वात्सल्य और मातृत्व नारी के वे मानव–मूल्य है, जिन पर समस्त माता–संसार खड़ा है। यशोधरा भी अपने पुत्र राहुल पर कभी खींजती, रींझती है और पति के ध्यान में समाहित हो जाती है। वह पुत्र राहुल को कर्त्तव्य–भावना की प्रेरणा में अपने दुःख भूलकर नैतिक शिक्षा का उपदेश देती हुई पुत्र राहुल को आदर्श–पुत्र व सद्–नागरिक बनाने में संलग्न रहती है। यशोधरा पुत्र राहुल को पति गौतम के निष्क्रमण का कारण सृष्टि से नाता जोड़कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा से युक्त विश्व को एक परिवार बनाना बतलाती है। तब यशोधरा एक विशाल ह्दया माता के समान अपनी विराट सोच का परिचय इस प्रकार देती है–

" बेटा घर छोड़ वे गये हैं अन्य दृष्टि से,
जोड़ लिया नाता हैं उन्होंने सब सृष्टि से।
ह्दय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहते जो परिवार हैं।" 3

संसार में एक माता के जीवन का विषाद यह है कि वह संतान को अपने सुख में तो शामिल करती है, लेकिन दुःख में कोसों दूर रखती है। यशोधरा भी राहुल की क्रियाओं में रस लेने की असफल चेष्टा करती हुई उसे खुश रखती हैं। वह भाग्य द्वारा दिए गए दुःख को निरीहभाव से सहन करती हैं किंतु राहुल के जीवन को

---

1. मैथिलीशरण गुप्तः यशोधरा — पृ. सं. 40
2. आ, मेरे अवलम्ब, बता क्यों अम्ब अम्ब कहता है ?
   पिता पिता कह बेटा जिनसे घर सूना रहता है।
   वहीं, — पृ. सं. 42
3. वहीं, — पृ. सं. 79

विषादग्रस्त होने से बचाना चाहती है। राहुल की पिता के आगमन संबंधी जिज्ञासाओं का उत्तर देती हुई वह यही कहती है कि –

" धीरज धर बेटा, अवश्य हम उन्हें एक दिन पायेंगे।
मुझे भले ही भूल जाएं वे तुझे क्यों न अपनायेंगे।
कोई पिता न लाया होगा, वह पदार्थ वे लायेंगे। " 1

कवि गुप्त ने यशोधरा की नारीत्व–गौरव से युक्त भारतीय आर्य–नारी के रूप में प्रतिस्थापना की है। वह गौतम के सिद्धि प्राप्त कर लौटने पर मिलने को आतुर तथा व्यग्र न होकर जीवन और जगत् के आदर भाव को धारण करती है। यशोधरा का मानना है कि संसार में नारी का तप और त्याग पुरुष से कम नहीं है। लेकिन वह गौतम द्वारा की गई उपेक्षा तथा अविश्वास के कारण स्वयं आगे बढ़कर उनसे मिलने नहीं जाती है। वह पुरुष के उस दंभ पर भी प्रहार करती है घर के अंदर बैठी नारी से मिलने में दूरी महसूस करता है। तब यशोधरा पुरुष समाज के समक्ष यह प्रश्न सहसा कर पूछ बैठती है –

" यदि वे चल कर आये है इतना,
तो दो पद उनको है कितना ?
क्या भारी वह मुझको जितना ?
पीठ उन्होंने फिर क्यों फेरी ?
रे मन, आज परीक्षा तेरी। " 2

इस प्रकार कवि गुप्त के काव्य की नारी यशोधरा ने युग–युग से पीड़ित नारी–जाति का प्रतिनिधित्व करते हुए विरहिणी एवं स्वाभिमानी नारी के रूप में नारी–भावनाओं का सुन्दर मूल्यवान एवं समन्वयक चित्रण किया हैं। उन्होंने नर–नारी के संबंधों में नवीन चेतना के साथ अंतरंग भावनात्मक धरातल भी स्थापित किया है,जो आधुनिक समय में सभी के लिए अनुकरणीय है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्तः यशोधरा पृ. सं. 84
2. वहीं, पृ. सं. 106

महाप्रजावती–

कवि गुप्त के काव्य–साहित्य में वर्णित नारी पात्रों में चेतना हमेशा रही है। इन नारी पात्रों की चेतना में राष्ट्रीय भावना मूल तत्व है।' यशोधरा' चम्पूकाव्य में महाप्रजावती शुद्धोधन की दूसरी रानी, नंद की माता और सिद्धार्थ की धात्री माता है। महाप्रजावती को गौतम के स्नेह और सुकुमारता का विस्मरण किसी भी क्षण नहीं होता है, लेकिन सिद्धार्थ के गृह–त्यागकर जाने पर वह एक वेदना–विह्वल माँ बन जाती है। सिद्धार्थ के गमन पर उसे भावी जीवन–पथ अनिष्ठ आशंका एवं काँटों से भरा हुआ नजर आता है। माता महाप्रजावती अपनी आशंका को इस प्रकार उद्घाटित करती है।

" मैंने दूध पिलाकर पाला।
कहाँ न जाने वह भटकेगा,
किस झाड़ी में जा अटकेगा।
हाय! उसे काँटा खटकेगा, " 1

समाज में नर के गृह–त्याग का सारा दोष नारी के सिर मढ़ दिया जाता है। नर के रूप में चाहें राम हो या गौतम दोनों के गृह–त्याग का कारण समाज नारी को मानता हैं। महाप्रजावती भी गौतम के महानिष्क्रमण पर स्वयं को कैकेयी की भाँति मानकर गौतम से अपना क्षोभ एवं ग्लानि को वेदनाम्य होकर इस प्रकार प्रकट करती है–

" निकले भाग्य हमारे सूने, वत्स दे गया तू दुख दूने।
किया मुझे कैकेयी तूने, हा कलंक यह काला।" 2

'यशोधरा' चम्पूकाव्य के अंत में महाप्रजावती यशोधरा को सान्त्वना देकर पति गौतम के आगमन पर वह उनसे मिलने की प्रेरणा देती है। वह नारी की सहनशीलता तथा दैन्य भाव की पैरवी करती है। इस प्रकार वह माननी यशोधरा को समझते हुए कहती है–

" गोपे, हम अबलाजनों के लिए इतना
तेज नहीं दर्प–नहीं, साहस हैं ?" 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्तः यशोधरा पृ. सं. 24
2. वहीं, पृ. सं. 24
3. वहीं, पृ. सं. 26

इस प्रकार महाप्रजावती में गृह–त्यागकर जाने वाले पुरुषों का कारण नारी को मानने वाले लोगों की धारणा पर जमीं धूल को साफ करने की क्षमता का परिचय देती है।

गौतमी–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। नर एवं नारी दोनों के सामाजिक–जीवन में हितैषी–मित्र का स्थान जीवन–संबंधों में सबसे बढ़कर होता है। 'यशोधरा' चम्पूकाव्य में भी गौतमी यशोधरा की परम्–हितैषी सखी है। गौतमी संवेदना, सहृदयता तथा मित्र–वत्सल्ता की प्रतिमूर्ति है। वह हमेशा सखी यशोधरा के सुख–दुःख में भागीदार बनती है। गौतमी यशोधरा की आंखों में आँसू देखकर आशावादी भाव से कहती है कि एक दिन आपकी वेदना संसार में गुंजायमान होगी और आपके त्याग एवं समर्पण से समस्त सृष्टि पुलकित हो उठेगी–

" मैंने आज देखे अहा! अश्रु ऐसे होते हैं–
रूद्ध भी तुम्हारी गिरा जगती में गूँजी हैं,
देखो, यह सारी सृष्टि पुलकित हो गई है। " 1

नारी का पति–धर्म वह मानव मूल्य है जो नर को मजबूत करता है, तो पुरुष का शील, संयम नारी को शक्ति देता है। पुरुष की अर्द्धांगिनी नारी–शक्ति नर की शक्ति से शक्ति–पुंज बनती है। यशोधरा को सामान्य नारी की भांति यह शंका है कि अप्सराएँ पति की साधना को भंग न कर दें। तब गौतमी यशोधरा की इस शंका का समाधान आत्मविश्वास के साथ इस प्रकार करती है–

" अप्सरायें उनको भला क्या लुभा सकती हैं,
जिनकी यशोधरा–सी साध्वी यहाँ बैठी हैं।
और उन्हें कौन भय व्याप सकता था, जो
ऐसा घर छोड़ घोर निशि में चले गये जो। " 2

---

1. मैथिलीशरण गुप्तः यशोधरा — पृ. सं. 90
2. वहीं, — पृ. सं. 91

इस प्रकार कवि मैथिलीशरण गुप्त ने गौतमी के रूप में ऐसी नारी की सृष्टि की है जो नारी के अधिकारों की सजग–प्रहरी बनकर नारी समाज में नवीन अशावादी चेतना का संचार करती है। यह चेतना नारी व्यक्तित्व की अमूल्य निधि है।

अनुदित काव्यों में नारी चेतना

भारत–भूमि ऋषि, महर्षियों की भूमि रही है। इस भूमि पर अनेक वीर, ऋषि, मुनि, दानी और चिंतकों के साथ काव्यकारों ने जन्म लिया है। इस पुण्य भूमि में कला–कौशल के साथ नारी चेतना के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य–साहित्य से संसार को आलोकित किया। एक कवि के विराट व्यक्तित्व की बानगी यह है कि उन्होंने अपनी काव्य–भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा–रचनाओं का अनुवाद अपनी सरल शैली में किया है। कवि गुप्त की इन अनुदित रचनाओं में उनकी नारी चेतना को इस प्रकार प्रवाहमान है –

'शकुन्तला' में नारी चेतना–

'शाकुन्तला' अनुदित काव्य की कथा का मूल स्रोत 'महाभारत' का कथा भंडार है। महाकवि कालिदास ने उसी कथा को मौलिक परिबोध से ग्रहण किया है। उनका 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक काव्य–गौरव की विशिष्ट परिधियों का स्पर्श करता है। "कवि गुप्त का कवि हृदय कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक को पढ़कर उसके लालित्य और रसबोध को व्यक्त किए बिना न रह सका और 'शकुन्तला' नामक अनुदित काव्य की सृजना कर दी। "1 'शकुन्तला' काव्य नारी चेतना के आदर्श की ऊँचाइयों को ग्रहण करता है। इस अनुदित काव्य में वर्णित 'शकुन्तला' की नारी चेतना इस प्रकार है–

'शकुन्तला'–

कविवर गुप्त के अनुदित काव्य 'शकुन्तला' में शकुन्तला एक ऐसी नारी है जो 'दैवीय–शक्ति' से युक्त होकर भी समाज एवं परिवार से दूर ऋषि–आश्रम में रहती है। शकुन्तला जीवन और जगत् के क्रिया–कलापों से दूर रहकर भी अपनी प्रखर बुद्धि के बल

---

1. मृग के बदले मृगनयनी को वहाँ महीपति ने पाया–
   और यहाँ श्री कालिदास ने, श्रवण–सुधा–रस बरसाया।
   मैथिलीशरण गुप्तः शकुन्तला पृ. सं. 08

से एक गृहस्थ के कार्यों को निपुणता से अपनाती है और समाज को नूतन दिशाबोध प्रदान करती है। शकुन्तला के व्यवहार से आश्रम के निवासी तो क्या पशु–पक्षी भी आनंद एवं सुख का अनुभव इस प्रकार करते हैं–

" रखती थी प्रेमार्द्र सभी को,
वह अपने व्यवहार से।
पशु–पक्षी भी सुख पाते थे,
वह शुद्धाचारों से।" 1

भारतीय समाज नारी के श्रेष्ठ कार्यों से ओत–प्रोत है। वास्तव में यह सत्य है कि समाज एवं देश में नारी के द्वारा जो कार्य किए जाते है वहाँ उनकी अमिट छाप रहती है। कवि गुप्त के काव्य की नारी शकुन्तला भी वनचारी ऋषि–बालिका होकर भी सद्गृहस्थी के आदर्श गुणों की छाप आश्रम में आने वाले प्रत्येक अतिथि के मन में छोड़ती है। शकुन्तला के आतिथ्य का ही परिणाम है कि आश्रम में आने वाला प्रत्येक अतिथि किस प्रकार उनका गुणगान करता हुआ जाता है–

" आते थे जो अतिथि वहाँ पर,
अतिशय आदर पाते थे।
मुक्त कण्ठ से उसके सद्गुण।
गाते गाते जाते थे। " 2

कवि गुप्त ने शकुन्तला के माध्यम से देश की उस जड़ीभूत भावी पीढ़ी को जाग्रत किया है जो पर्यावरण एवं वन्य जीवों के प्रति उदासीन है। शकुन्तला मानव को पर्यावरण के प्रति जागरुक करने में नवजीवन–स्फूर्ति प्रदान करती है। कवि ने शकुन्तला को स्वयं पेड़–पौधों का रौंपण तथा सींचन के रूप में वर्णित करके नारी को प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति सजग कर भावी पीढ़ी में पर्यावरण चेतना की संजीवनी–शक्ति भरने का प्रयास किया। शकुन्तला का प्रकृति एवं पशु–पक्षी संरक्षण प्रेम देखते ही बनता है –

---

1. मैथिलीशरण गुप्तः शकुन्तला पृ. सं. 10
2. वहीं, पृ. सं. 12

" कभी घड़ों में भर भर कर वह
पौधों को जल देती थी,
कभी खगों के कभी मृगों के
बच्चों की सुध लेती थी। "1

भारतीय आर्य–संस्कृति एवं समाज में नर–नारी के आचरण एवं व्यवहार की पवित्रता पर बल दिया गया है। नारी का आचरण तो दो परिवारों के साथ समाज में प्रमुख स्थान निर्धारित करता है। कवि गुप्त ने शकुन्तला के जीवन को ऋषि कन्या से युक्त मानकर भी सद्कार्य एवं आचरण की अनिवार्य सार्थकता माना है। कवि ने नारी को सुगृहिणी का महत्वपूर्ण अंग स्वीकार किया है। कण्व ऋषि ऐसी ही जीवन–शिक्षा शकुन्तला की विदाई पर इस प्रकार देते है–

" परिजनों को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूलकर भी बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी–पद पाती है।
उलटी चलकर वंश–व्याधियाँ कहलाती है। " 2

नारी जीवन की जिन सहज दुर्बल वृत्तियों के कारण नारी को अबला समझा जाता है। वही नारी उचित समय आने पर नारी को अबला समझने की पुरुष–धारणा का दम्भी नर को बोध करा देती है। शकुन्तला ने भी दुष्यन्त द्वारा त्यागने और अंत में मिलने पर वह अपनी ऊर्जवित वाणी में दुष्यंत द्वारा नहीं पहचानने पर कहती है –

" शकुन्तला–सी एक सती सहधर्मिणी–
त्यागी जिसने व्यर्थ, जो कि थी गर्भिणी
उसका श्रुत भी नाम जाय कैसे लिया ?
साफ–साफ उस तपस्विनी ने कह दिया।" 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्तः शकुन्तला — पृ. सं. 11
2. वहीं, — पृ. सं. 26
3. वहीं, — पृ. सं. 40

इस प्रकार कवि गुप्त ने शकुन्तला के माध्यम से नारी के प्रति श्रद्धा–भाव रखते हुए नारी चेतना का संचार किया है। यह नारी चेतना प्राचीन भारतीय आश्रम–व्यवस्था से आरंभ होकर आधुनिक समय के गान्धर्व विवाह (प्रेम–विवाह) तक समान रूप से प्रवाहित हुई हैं।

'विरहिणी व्रजांगना' में नारी चेतना–

बहु–भाषा–विज्ञ, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी में बंगला–भाषा की अनेंकानेंक रचनाओं का अनुवाद किया था। कवि गुप्त ने अपनी काव्यानुवाद की श्रृंखला में बंगाल के विख्यात कवि 'माइकेल मधुसूदन दत्त' के 'व्रजांगना' नामक काव्य का पद्यानुवाद 'विरहिणी व्रजांगना' के नाम से किया है। कवि का मानना है कि " विरहिणी व्रजांगना' का करुण क्रन्दन पाठक को एक बार अवश्य ही द्रवित कर देगा।" 1 'विरहिणी व्रजांगना' की करुण पुकार में भी नारी चेतना इस प्रकार प्रवाहमान है–

विरहिणी व्रजांगना (राधा) –

कृष्ण–प्रिया राधा को कृष्ण–चिंतकों ने कृष्ण की रागिनी–शक्ति और उसके प्रेरक तत्व के रूप में स्वीकार किया है। लेकिन नारी चिंतक कवि मैथिलीशरण गुप्त ने राधा को कृष्ण की विरहिणी के रूप में एक व्रजांगना–नारी रूप में अवतरित किया है। कवि ने पुरातन राधा–संदर्भों का उल्लेख न करके उसे समर्पण, त्याग, प्रेम और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति के रूप में अंकित किया है राधा रानी कृष्ण पर अपना तन–मन–धन समर्पित करती हुई बारी–बारी जाती है, वह अपनी सखी से अपने मन की बात कहती है कि –

"श्री व्रजरत्न प्राणयन हरि को, चल सखि चल देखें सत्वर,
हैं कदम्ब के तले नाचते, वेणु बजाते हैं राधावर।
घनश्याम की ध्वनि सुन क्यों कर मैं चातकी धर्म्म धारूँ,
क्यों ने प्राण प्यारे के ऊपर अपना तन, मन, धन वारूँ।" 2

---

1. मैथिलीशरण गुप्तः विरहिणी व्रजांगना पृ. सं. 05
2. वहीं, पृ. सं. 07

'विरहिणी व्रजांगना' राधा में न तो अन्य–काव्यों में वर्णित राधा की बोझिलता है, और न प्रेमिका की भाँति मांसलता की प्रधानता है। उसमें तो अपने प्रियतम के प्रति एकात्मक समर्पण है। "व्रजांगना" राधा किसी भी भोग–वस्तु की अपने मन में साध नहीं रखती अपितु विरहिणी की भाँति तन पर भस्म लेप की इच्छा रखती है।" 1

राधा को कवि ने विरहिणी व्रजांगना का रूप देकर भारतीय नारी के उस रूप का चित्रण किया है जो अपने आदर्श, धर्म और कर्त्तव्य का कष्ट एवं विपत्ति में भी पालन करती है। राधा भी धरती की भाँति विरही जीवन यापन करती है। लेकिन वह धरती से अपने विरही जीवन में सहयोग की अपेक्षा रखकर उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करने की इच्छुक है। राधा धरती से विरही जीवन जीने की शिक्षा देने की अपेक्षा रखती हुई कहती है–

" हे महि, इन अबोध प्राणों को बतलाओं, रक्खूँ कैसे ?
सिखलाओं तुम मुझे, मधु बिना जीवित रहती हो जैसे।
मधु कवि कहता है हे सुन्दरि धर्म्म धरो है यत्न यही,
आता है मधु स्वयं समय पर पाती है मधु–दान मही।" 2

विरह में मिलन हेतु मन की तीव्र उत्कण्ठा होती है। राधा भी अपने निकट आने वाली प्रत्येक वस्तु से अपने मिलन की अभिलाषा प्रकट करती है। इस अभिलाषा में राधा के समानान्तर अन्य विरहिणी का तो प्रिय से मिलन हो जाता है। लेकिन राधा विरह के कारण अंध–अवस्था तक पहुँच जाती है।

" तुम्हीं दिखाकर पथ कोकी को पहुँचाती हो पति के पास,
कृपया मुझे मिला दो हरि से मार्ग दिखा कर बिना प्रयास।
अन्धी–सी हो गई श्याम की राधा मैं रो रो कर हाय!
मेटो शीघ्र अँधेरा मेरा हेमवती सति! करो उपाय।" 3

विरह एवं दुःख में डूबे व्यक्ति का ईश्वर ही दुःखहरता होता है। राधा प्रकृति के विराट सौन्दर्य में विरह से पीड़ित होकर ईश्वर–संस्पर्श में ही उनके विरह हरण रूप का अनुभव करती है।

---

1. इन सबकी अब और साध क्या रखती है राधा मन में
   करती हूँ बस, भस्म–लेप अब चन्दनचर्चित इस तन में।
   मैथिलीशरण गुप्तः विरहिणी व्रजांगना पृ. सं. 10
2. वहीं, पृ. सं. 12
3. वहीं, पृ. सं. 14

संसार में विरहिणी नारी को निर्लज्ज मानकर मान–मर्यादाओं की हंता कहा जाता है। नारियों के आभूषण लज्जा का मजाक उड़ाया जाता है। लेकिन कवि ने इन सब व्याधियों का निवारण राधा को ईश्वर (श्याम) का स्मरण ही बतलाया है। कृष्ण की स्तुति से ही दुखों का निवारण होगा–

" तुम मुझको निर्लज्ज न समझो, कैसे मैं यह दुःख सहूँ ?
बतला दो, इस विरह सिन्धु में पड़कर कैसे मौन रहूँ ?
सतियों का भूषण लज्जा है, सकती हूँ अब क्या यह सोच,
मधु कहता है, हे व्रजांगने ! भजो श्याम को निस्संकोच।" 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने विरहिणी व्रजांगना के माध्यम से नारी में उस साहस एवं चेतना का संचार किया है जो विकट से विकट परिस्थितियों में भी अपने अस्तित्व की रक्षार्थ स्वयं उद्धत रहती है। अतः विरहिणी राधा ने स्वयं को सशक्त बनाकर नवीन चेतना स्थापित की है।

'मेघनाद वध' में नारी चेतना–

भारतीय संस्कृति के आख्याता राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा अनुदित काव्य 'मेघनाद वध' में कवि ने मेघनाद का वर्णन लक्ष्मण–शक्ति प्रसंग में प्रमुखतः किया है। मेघनाद के चरित्र को कवि गुप्त ने मानवीय उत्कर्ष प्रदान करने का प्रयास किया है। 'मेघनाद वध' अनुदित काव्य की नारियों में नारी चेतना इस प्रकार है–

सुलोचना–

रावण पुत्र मेघनाद की पत्नी सुलोचना सुन्दर–लोचन वाली एक धर्म–निष्ठ नारी है। सुलोचना वासुकि नाग की पुत्री तथा राक्षस–कुल में आदर्श वधू है। वह एक ऐसी नारी है , जिसके पति का राम द्वारा वध किए जाने पर भी अंत में राक्षस–वृत्ति को त्याग कर राम एवं सीता की शरण में जाने को ही अपना भाग्य समझती है। वह रावण से अपने पति का मृत शरीर मांगते हुए राम एवं सीता के अनुशरण में ही विश्वास व्यक्त करते हुए कहती है–

1. मैथिलीशरण गुप्तः विरहिणी व्रजांगना पृ. सं. 18

अनुमोदक तो नहीं किन्तु इस
अग्रजा की अनगत हूँ मैं,
निद्रा और कलह दोनों में ही
राघव सीता रत हूँ मैं।" 1

इस प्रकार ' मेघनाद वध' अनुदित काव्य में सुलोचना को कवि गुप्त ने असुरी–संस्कृति में भी नारी के जाति गौरव को रूपायित किया है। जो राष्ट्र–प्रेम और मातृभूमि के प्रति भक्ति–भाव की अभिव्यक्ति के साथ पुरातन भारतीय आदर्शो का अनुशरण करती है।

निष्कर्ष–

निष्कर्षतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि गुप्त ने अपने अनुदित, मुक्तक, गीति तथा चम्पूकाव्यों के प्रमुख नारी–पात्रों ने अपनी अस्मिता को बनाने और बचाए रखते हुए नारी में नवीन संजीवनी शक्ति का संचार किया है। इन काव्यों की नारियों की नारी चेतना अपनी समग्रता के साथ भारतीयता तथा नैतिकता के प्रति समर्पित होकर समाज में मानव मूल्यों की रक्षक बनी हैं।

नारी जीवन का मूल उत्स गृहस्थ–जीवन हैं। कवि गुप्त ने अपने अनुदित काव्यों की नारियों में नवीन सहृदयता, संवेदना, त्याग तथा सहिष्णुता की भावना का प्रबल संचार किया है। कवि गुप्त की इन नारियों ने नवीन चेतना के साथ सहज सार्थक तथा मर्यादाबद्ध पारिवारिक जीवन–परिवेश को ग्रहण करके उदार–प्रवृत्ति का परिचय दिया है। इस प्रकार कवि गुप्त ने इन उपेक्षित तथा तिरस्कृत नारी पात्रों के चिंतन और आचरण में उत्साह तथा सहृदयता का संचार किया है। अंतः निःसंदेह कहा जा सकता है कि कवि गुप्त के मुक्तक काव्यों, गीति काव्यों, और अनुदित काव्यों के नारी पात्र समकालीन संदर्भों के जीवन्त दस्तावेज है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : मेघनाद वध पृ. सं. 13

षष्ठ – अध्याय

प्रमुख पुरुष पात्रों में नारी चेतना

षष्ठ अध्याय

प्रमुख पुरुष पात्रों में नारी चेतना

सृष्टि की अभूतपूर्व रचना मानव का निर्माण नर एवं नारी दोनों के संयोग से हुआ है। नर एवं नारी दोनों एक दूसरे के पूरक एवं सम्पोषित है। नारी के बिना पुरुष का कोई अस्तित्व नहीं तो, पुरुष के अभाव में नारी अपूर्ण हैं। दोनों का संबंध अभिन्न, अखण्ड और अनादि है। आरंभ से लेकर आज तक भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि नारी किस प्रकार जीवन क्षेत्र में पुरुष की अभिन्न सहयोगिनी के रूप में अपने नारीत्व से नर को दीपित करती आयी है। नारी के सहयोग के अभाव में पुरुष ने सदा एकाकीपन अनुभव किया है। इस प्रकार जहाँ भी नारी सहयोगिनी के रूप में प्राप्त हुई वहाँ उसने अभिनव से अभिनव संसार–सृष्टि की है।

जब नारी का पुरुष के जीवन में विराट योगदान हैं तो पुरुष द्वारा भी नारी के योगदान को धूमिल न करके ध्रुव की भाँति चमकाना चाहिए, ताकि उसके हौंसलों को पंख लग सके। नारी की प्रतिभा को पुरुष द्वारा उसकी चेतना को जीवंत करके पहचाना जा सकता है। नारी की इस प्रतिभा से प्रभावित होकर कवि जयशंकर प्रसाद की कामायनी में मनु श्रद्धा से कह उठते है –

" नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में। " 1

साहित्य समाज का दर्पण होता है अतः सारा भारतीय साहित्य नारी के विविध चित्रों से ओतप्रोत है। वास्तव में यह सत्य है कि जिस युग में पुरुष एवं नारी के जो संबंध रहे, उस युग के साहित्य में नर–नारी उसी रूप में चित्रित किए गए है। समाज की सारी मान्यताएँ, मर्यादाएँ उस युग में

---

1. जयशंकर प्रसाद : कामायनी पृ. सं. 38

स्त्री–पुरुष के आपसी सहयोग एवं कार्यों से उभर उठती है। इस संबंध में डॉ.अंशुमान मिश्र का 'मधुमती' पत्रिका में प्रकाशित दिसम्बर–2007 के लेख 'हिन्दी साहित्य में नारी के बदलते रूप' में मानना है कि " आदिकाल से लेकर आज तक साहित्य में चित्रित नारी के विविध रूप अपने युग की नारी विषयक मान्यताओं के ही प्रतिरूप है। " 1

प्राचीन काल से ही संसार में भारतीय आर्य संस्कृतिक का उज्ज्वल युग रहा। उस युग में नारी का समाज में बहुत आदर था। स्त्री तथा पुरुष दोनों जीवन क्षेत्र में कन्धें से कंधा मिलाकर कार्य करते थे। अतः पौराणिक युग में स्त्री एवं पुरुष के संबंधों में प्रगाढ़ता एवं मधुरता थी। कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपने काव्य–साहित्य में पौराणिक काल में स्त्री–पुरुष संबंधों को उद्घाटित करके नारी को नवीन धरातल प्रदान किया है। कवि गुप्त के पौराणिक पुरुष–पात्रों की नारी–विषयक चेतना को इस प्रकार जाना जा सकता है–

पौराणिक पुरुष पात्रों में नारी चेतना –

भारतीय आर्य–संस्कृतिक के रक्षक, पुरातन मानव–मूल्यों के वाहक, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य–साहित्य में चित्रित पौराणिक–पुरुष पात्रों का क्षेत्र सबसे अधिक व्यापक एवं विस्तृत है। वेद, पुराण, रामायण तथा महाभारत की अगणित कथाएँ और बहुविध–चरित्र उनकी रचना के अक्षय–स्रोत रहे हैं। भारतीय संस्कृति और साहित्य की चिन्तन–निधि, इन पौराणिक ग्रंथों में कवि गुप्त ने चित्रित पुरुषों की दिव्यता, वीरता, त्याग, धर्मपरायणता तथा आदर्श प्रेम द्वारा नारी की चेतना को चैतन्य किया है। इस संदर्भ में डॉ. सुषमा शुक्ला का मानना है कि "भारतीय मनीषा के विविधोन्मुखी चिंतन और चेतना की जितनी सुन्दर, सुव्यवस्थित, सम्पूर्ण और सर्वग्राह्य अभिव्यक्ति, पुराण साहित्य में प्राप्त है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है।" 2 इस प्रकार जिन महापुरुषों द्वारा नारी चेतना की प्रतिस्थापना कवि गुप्त करना चाहते है। वे सभी इसी साहित्य में सुलभ है।

---

1. डॉ. अंशुमान मिश्र : 'हिन्दी साहित्य में नारी के बदलते रूप' (लेख)
   मधुमती , दिसम्बर–2007 पृ. सं. 24
2. डॉ.सुषमा शुक्ला : वैदिक वाङ्मय में नारी पृ. सं. 46

कविवर गुप्त ने लोकमानस की आस्था एवं विश्वास की भावना को पहचानकर पौराणिक पुरुष–पात्रों को अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनके पौराणिक पुरुष–पात्रों को प्रमुखतः वैदिक पुरुष–पात्र, रामायण–प्रतिष्ठित पुरुष–पात्र, महाभारत–प्रतिष्ठित पुरुष–पात्र आदि तीन संदर्भो में वर्णित किया जा सकता है। वह इस प्रकार है –

वैदिककालीन पुरुष पात्रों में नारी चेतना –

दिवोदास–

कविवर मैथिलीशरण गुप्त के वैदिक–पात्र व्यापक न होकर भी सर्वग्राह्य है। काव्य–रचना श्रृंखला में वैदिक संदर्भ के अन्तर्गत उनका 'दिवोदास' महत्वपूर्ण पुरुष पात्र है जो उनके 'पृथ्वीपुत्र' खण्डकाव्य में वर्णित है। यह काव्य कवि की वैदिक पुरुष पात्र अवधारणा में पूर्ण उत्कर्ष का ज्ञापक है। "वैदिक परिवेश में प्रकट करते हुए दिवोदास मानव के पुरुषार्थ, दृढ संकल्प और मानवता को छोड़कर न केवल तप करने अपितु आत्मचिंतन में दिन–रात रत् रहने वाला है। " 1

मानव जीवन संसार में तभी सार्थक है जब वह परमार्थ के कार्य करें। 'पृथ्वीपुत्र' खण्डकाव्य में कवि गुप्त ने दिवोदास को लोक–धर्म–प्रतिष्ठा, पृथ्वीपालन और जनकल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत सच्चा पृथ्वीपुत्र माना है। वह अपने तप–बल से पुरुषत्व की कीर्ति पताका तो फहराता है, परन्तु 'नर सेवा, नारायण सेवा' की भावना के विपरीत वह जन सेवा न कर पाने के कारण स्वयं को धरती पर भार मानता हुआ कहता है–

" इधर मुझे स्वर्गाधिकार भी सुलभ आज निज हेतु,
फहराया है मैंने अपना पुरुष–कीर्ति का केतु।
पर अपनों के लिए क्या किया, यह है एक विचार,
क्या पाया मेरी धरती ने धर कर मेरा भार ?" 2

---

1. मनुष्यत्व को छोड़ और क्या चाहूँ मैं मनुजात ?
तप में नहीं आत्मचिंतन में रत् अवश्य दिन रात।
मैथिलीशरण गुप्त : पृथ्वीपुत्र पृ. सं. 10
2. मैथिलीशरण गुप्त : पृथ्वीपुत्र पृ. सं. 09

समाज, विचारों को आदान–प्रदान करने की सर्वोच्च संस्था है। दिवोदास सृष्टि के संस्थापक ब्रह्मा से किसी अलौकिक अथवा स्वकेन्द्रित–वृत्ति को तृप्त करने का वरदान नहीं मांगता,अपितु मानवीय व्यवस्थाओं से देवताओं का निष्कासन चाहता है। उसे मानव–पौरुष पर पूर्ण विश्वास है और वह जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए देव–शक्ति की अनुकम्पा की अनिवार्यता स्वीकार नहीं करता है। दिवोदास मानव–देह को पाकर आत्मविश्वास से परिपूर्ण होकर कह उठता है–

" किंतु आत्मविश्वासी हूँ मैं पाकर दुर्लभ देह,
सहे सुरो का भी शासन क्यों मेरा अपना गेह ,
फिर भी नहीं किया जा सकता विग्रह देव–विरुद्ध
अपदेवों से हम अवश्य ही कर सकते हैं युद्ध। " 1

मानव जीवन में परिश्रम ही सफलता का मूलमंत्र होता है। दिवोदास को मनुष्य की आत्मशक्ति के साथ दैहिक, बौद्धिक बल पर पूर्ण विश्वास है। उसके इस विश्वास में दिवोदास की पत्नी रंगिणी साक्षी बनती है। रंगिणी का मानना है कि कर्तव्य बल से मानव जीवन की अनेकानेक अपेक्षाओं को पूर्ण कर सकता है। दिवोदास नारी के रूप में रंगिणी के योगदान को अपने जीवन में इस प्रकार आत्मसात् करता है–

" हम दयनीय नहीं, भागी हैं देवों के ही साथ।
हृदय नहीं, वा बुद्धि नहीं, वा नहीं हमारे हाथ ?
कल तक नाम जपा है हमने, आज करेंगे काम,
यथा समय सब समझोगी तुम, लो थोड़ा विश्राम।" 2

दिवोदास स्त्री–पुरुषों के मधुर संबंधों में विश्वास रखने वाला सद्–गृहस्थ पुरुष की भूमिका भी अदा करता है। ब्रह्मा द्वारा प्रेरित किए जाने पर दिवोदास ब्रह्मचर्य से मुक्त होकर गृहस्थ–जीवन की ओर उन्मुख होता है और अंगमोहिनी के प्रति प्रेमाकर्षित होकर नारी–शक्ति के साथ समाज और राष्ट्र के हित–सम्पादन में तत्पर होता है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : पृथ्वीपुत्र पृ. सं. 09
2. वहीं, पृ. सं. 18

इस प्रकार कवि गुप्त ने देवोदास के रूप में जिस वैदिककालीन पुरुष–पात्र की कल्पना की है, वह धार्मिक परिवेश में स्थापित होकर भी नारी के अधिकारों और कर्त्तव्यों की नई व्याख्या करता है। "उनकी नारी पुरुष की प्रेरक शक्ति होने के साथ ही शक्ति रूप में कार्यों को निमत्त करने वाली है।" 1 अतः नारी अर्द्धांगिनी–रूप में पुरुष की अनुचरी भी है और प्रेरणा–स्रोत भी है।

रामायणकालीन पुरुष पात्रों में नारी चेतना

भारतीय आर्य–जीवन और आर्य–संस्कृति, रामकाव्य एवं रामचरित से प्रभावित ही नहीं, उत्प्रेरित भी हुई है। मानव–जीवन के विकास में राम जगत् के ऐसे पुरुष है जो परदुखःकातर एवं समाज में व्याप्त विषमताओं को समाप्त करने में अवतरित है। वाल्मीकि 'रामायण' में वर्णित पुरुष–पात्रों में नैतिक पक्ष को विशेष प्रबुद्ध किया है, तो तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में रामायणकालीन पुरुष–पात्रों में आध्यात्मिकता के साथ लोकाचरण का विशेष आकर्षण रहा है।

रामभक्त वैष्णव कवि मैथिलीशरण गुप्त ने आस्था और आदर्श के स्तर पर वाल्मीकि एवं तुलसी दोनों को ही स्वीकार कर भगवान राम के साथ सभी पुरुष–पात्रों को नवीन नारी चेतना के उद्‌घोषक के रूप में अवतरित किया हैं। नैतिकता, जीवन–व्यवहार तथा विशेषतः गृहस्थ–जीवन के आदर्शों की स्थापना अपने रामकाव्य में वर्णित पुरुष–पात्रों के द्वारा की है। कवि गुप्त 'साकेत' महाकाव्य में राम के जीवन में आदर्श की स्थापना करते हुए लिखते है। "वह स्वयं तथा अनुज भरत में भेद न मानकर वन में भी धर्म–पालन के आर्य–आदर्श को जीवंत रखते हैं। " 2

इस प्रकार रामायणकालीन पुरुष–पात्रों में कवि गुप्त ने सामान्य, मध्यमवर्गीय, आभिजात्य और मर्यादा से प्रेरित गृहस्थ–जीवन की उपलब्धियों तथा नारी–वर्जनाओं को नारी चेतना के संदर्भ में जाग्रत किया है। उनके प्रमुख रामायण कालीन पुरुष–पात्रों में नारी चेतना इस प्रकार है–

---

1. जागो तुम निज शक्ति–रूप में मेरे कार्य–निमित।
   मैथिलीशरण गुप्त : पृथ्वीपुत्र पृ. सं. 22

2 अरे यह बात है तो खेद क्या है,/भरत और मुझ में भेद क्या है ?
   करें वे प्रिय यहाँ निज कर्म पालन /करूँगा मैं विपन्न में धर्म–पालन।
   मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 38

राम –

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने रामायणकालीन पुरुष–पात्रों में भगवान राम को अत्यन्त मौलिक तथा नये मानव–मूल्यों के प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित किया है। कवि सामाजिक जीवनबोध की गरिमा और क्षमता से युक्त वर्तमान जीवन की संवेदनशीलता से परिचित है। जिनमें मातृभूमि तथा राष्ट्र के प्रति निस्पृह समर्पण की भावना एवं लोकहित–साधना प्रधान है। कवि गुप्त के राम की अवधारणा यह है कि एक राष्ट्र सूर्य के समान अंधकारनाशक होता है, जबकि बिखरा राष्ट्र तारों की भाँति होता है जो कभी अंधकार का नाश नहीं करते है। भगवान राम एक राष्ट्र, एक देश का विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं–

" एक राज्य न हो, बहुत से हों जहाँ,
राष्ट्र का बल विखर जाता है वहाँ।
बहुत तारे थे, अँधेरा कब मिटा,
सूर्य का आना सुना जब, तब मिटा।" 1

कवि गुप्त के राम जीवनोपयोगी स्वाभाविकता, सहजता और सजीवता से परिपूर्ण है। वे धर्म की रक्षा करने में प्रहरी की भाँति अपने कर्तव्य का निर्वहन करते है। नर व नारी के रूप में, राम और सीता दोनों ही कवि गुप्त के आराध्य रहे हैं। उनकी आस्था में राम के मर्यादा–पुरुषोत्तम रूप और उनके ईशवरत्व दोनों का ही समन्वय हैं। जिस प्रकार दीपक स्वयं अपने अस्तित्व को मिटाता हुआ लोक–व्याप्त अंधकार को निरस्त करता है, उसी प्रकार प्रभू राम मानव के आद्योपांत कण्टकाकीर्ण तथा अवसाद–राशियों का हनन करते हैं।

विश्व–साहित्य में भगवान राम ही ऐसे पात्र है, जो मर्यादा पालक रहे है। वे पिता दशरथ की आज्ञा का पालन करते हुए सहर्ष वनागमन करते है साथ ही कैकेयी को जैविक माता कौशल्या से बढ़कर मानने वाले नारी सम्मान के समर्थक राम उनके साथ न्याय की पैरवी करते हुए कह उठते है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 06

" तुम्हारा पुत्र मैं आज्ञा तुम्हारी,
न मानूँ, तो कहे क्या सृष्टि सारी ?
प्रकट होगा कपट ही हाय! इससे
न माँ के साथ होगा न्याय इससे।" 1

राम का मर्यादा रूप आदिकवि वाल्मीकि के काव्य में स्थापित हुआ है तो उनका भगवद् स्वरूप तुलसी के मानस में प्रतिष्ठित हुआ। लेकिन कवि गुप्त के काव्य में उनका सामान्य लोक मर्यादा एवं हित–साधक रूप ही उदघाटित हुआ है। "प्रभू राम न केवल पुरुष को मानवीयता के रूप में दिव्यता प्रदान करते है अपितु नारी को भी धर्म धारण करने हेतु आवश्वस्त करते है। " 2

प्रभु राम सच्चे अर्थों में नारी के प्रति पूर्णतः विश्वस्त पुरुष हैं। एक सच्चे कर्मयोगी के समान मानवीय चेतना के अनुरूप प्रत्यक्ष रूप से नारी का आदर करते हुए सपत्नीक सद्–गृहस्थ की भाँति परनारी से पूर्णतः विराग रखते है। पर–नारी के रूप में पंचवटी में आयी हुई शूर्पणखा से वे यही कहते है–

" निश्चय अद्भुत गुण हैं तुममें,
फिर भी मैं यह कहता हूँ–
गृहत्याग करके भी वन में
सपत्नीक मैं रहता हूँ।" 3

भारत भूमि में ऐसे नर सिंह भी उत्पन्न हुए है, जिन्होंने धर्म की रक्षार्थ अपना सब कुछ अर्पित कर दिया और मानव–लोक में सामान्य मनुष्य के समान आचरण किया हैं। प्रभू राम ने भी भौतिक, सामाजिक और लौकिक स्तर पर अपने ब्रह्मत्व का संवरण करते हुए मानवोचित चरित्र का ही प्रकाशन किया है। उनके विराट चरित्र में वह सामाजिकता है जो प्रत्यक्ष व्यावहारिक जीवन में भी मानवीय स्तर को ग्रहण करता है। वे अपनी पत्नी सीता को विधाता के विपरीत आचरण न करके धर्म के पालनार्थ अपना समस्त–त्याग करने के लिये उर्जामय वाणी में कहते हैं–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 45
2. प्रभु बोले माँ भय न करो/एक अवधि तक धैर्य धरो।
   मैं फिर घर आऊँगा/वन में सुख पाऊँगा।
   वहीं, — पृ. सं. 54
3. मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी — पृ. सं. 52

" अबल तुम्हारा राम नहीं,
विधि भी उस पर वाम नहीं।
वृथा क्षोभ का काम नहीं,
धर्म बड़ा धन–धाम नहीं।" 1

कवि गुप्त के प्रभु राम अपने दिव्य संदर्भों में प्रकट न होकर एक सद्गृहस्थ तथा प्रजातांत्रिक–मूल्यों के वाहक है। वे वर्तमान में विश्रृंखलित होती राजनीति–व्यवस्था को संयोजित करते हुए शासक तथा प्रजा के मध्य मधुर संबंधों की स्थापना पर बल देते है।

कवि गुप्त के राम संयुक्त पारिवारिक जीवन और मध्यवर्ग के गृहस्थ परिवेश से संबंधित है। राम भारतीय संयुक्त परिवार के पोषक एवं संरक्षक के साथ गृहस्वामिनी व गृहस्थ–संचालिका नारी के योगदान के समर्थक है। परम्परागत कथ्य के आधार पर यह स्वतः प्रमाणित है कि जहाँ कैकेयी संयुक्त परिवार का विखण्डन करना चाहती है, वहीं राम अपने महान त्याग द्वारा बिखरते हुए परिवार को संगठित ही नहीं करते, उसे सुदृढ़ भी करते है। परिवार के संगठन की आधारशिला स्त्रियों के योगदान में उर्मिला जैसी त्यागमयी नारियों भी प्रमुख है। इस संबंध में वे सीता को संबोधित करते हुए कहते है–

" अपनी सुध ये कुलस्त्रियाँ लेती नहीं,
पुरुष न ले तो उपालम्भ देती नहीं।
कर देती हैं दान ये अपने आपको,
कैसे अनुभव करें स्वात्य सन्ताप को। " 2

कवि गुप्त की आस्था, मानव–संकल्प, आचरण और कर्मशक्ति के प्रति है, दैवीय आश्वासनों के प्रति नहीं है। कवि का विश्वास है कि मनुष्य अपने कृतित्व से असंभव को भी संभव बना सकता है। मानव–कर्म अपराजेय और अप्रतिहत है तथा वह स्वबल से इस धरती को ही स्वर्ग में परिणत कर सकता है। ' 'साकेत' महाकाव्य में प्रभु राम इस अवधारणा को प्रत्यक्ष चरितार्थ करते हुए स्वयं कहते है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 57
2. वहीं, — पृ. सं. 88

" भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया!
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया। " 1

इस प्रकार कवि गुप्त के राम आदर्श पुरुष और आराध्य ईश्वर दोनों हैं। उनका चरित्र जीवन–व्यवहार तथा सहज मानवीयता से परिवेष्टित है जो नारी चेतना के नवीन आयाम स्थापित करने में सहायक है।

लक्ष्मण –

कविवर मैथिलीशरण गुप्त के रामकाव्य में लक्ष्मण का संस्थापन हिन्दी रामकाव्य जगत् में अभूतपूर्व घटना है 'साकेत', 'पंचवटी', 'लीला', 'प्रदक्षिणा' आदि काव्यों मे राम–सीता के साथ कवि ने लक्ष्मण को मौलिक संदर्भों में प्रस्तुत किया है। 'लीला' गीतिकाव्य में लक्ष्मण के बाल–रूप एवं किशोर–रूप की संक्षिप्त प्रस्तुति कवि गुप्त ने की है। परन्तु 'साकेत' और 'पंचवटी' काव्य में कवि ने लक्ष्मण को व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया है। कैकेयी द्वारा भरत का राज्याभिषेक माँगने पर लक्ष्मण की व्यापकता इतनी बढ़ जाती है कि "वह माता कैकेयी को कह देता है कि यह आपका कुचक्र है, इसमें भरत को शामिल क्यों करती हो, सूर्यवंशी भरत ऐसा कार्य करके पाप में नहीं पड़ सकता है।" 2

कवि गुप्त के लक्ष्मण राम के सहचर, सचिव एवं सेवक होते हुए केवल तपस्पृही ही नहीं, उर्मिला के प्रणयी–पति भी हैं। लक्ष्मण का उर्मिला के प्रति प्रणय–भाव परम्परागत रामकाव्य से बहुत ऊपर उठकर यथार्थ जीवन समाज तथा परिवार की स्वाभाविक अनुभूतियों का प्रकाशक और उपकारक है। उनका दाम्पत्य भाव दैहिक श्रृंगार अथवा मांसल सौन्दर्य के सम्मोहन से बहुत ऊपर उठकर गृहस्थ–जीवन की शालीनता, शिष्टता तथा मर्यादा के चरम को स्पर्श करता है। लक्ष्मण एक सद्–गृहस्थ की योग्यता में उत्तीर्ण होकर, दूसरे पुरुषों के समान सेवक–सेविका के रूप में दाम्पत्य जीवन को धारण करते है। लक्ष्मण उर्मिला से प्रमोद पूर्वक कहता है –

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 146
2. सभी सौमित्र का बल आ देखें/कुचक्री चक्र का फल आज देखें।
   भरत को सानति है आपमें क्यों,/पड़ेंगे सूर्यवंशी पाप में क्यों।
   वहीं, पृ. सं. 40

" धन्य जो इस योग्यता के पास हूँ,
किन्तु मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ।
देव होकर तुम सदा मेरे रहो,
और देवी ही मुझे रक्खो रहो। " 1

लक्ष्मण के आचरण, व्यवहार और चिंतन में राम का सत्य, शील तथा भ्रातृत्व–भाव ही प्रेरक है। उर्मिला के साथ अंतरंग अनुभूतियों और नारी को सम्मान देने वाले लक्ष्मण के मन में राज्याभिषेक के समय कैकेयी का मोहजनित आचरण सर्वथा भिन्न परिस्थितियों का सृजन करते हुए उनके चिंतन एवं आचरण में विरोधी भावों के आविर्भाव का कारण बनता है। लक्ष्मण का विरोध सामान्य परिवार की गृहस्थ कलह का परिचय देते हुए उनकी मानसिक उग्रता और अन्याय के प्रति असहिष्णुता को अत्यन्त स्वाभाविक रूप में प्रकट किया है। वे कैकेयी के प्रति क्रोधित होकर राम से कहते है –

" इधर मैं दास लक्ष्मण हूँ तुम्हारा,
उधर हो जाय चाहे लोक सारा।
नहीं अधिकार अपना वीर खोते,
उचित आदेश ही है मान्य होते। " 2

लक्ष्मण की यह उग्रता क्षणिक, एवं एक नौजवान के मनोभावों से परिपूर्ण है, शीघ्र ही वे राम द्वारा स्वस्थ्य और आदर्श मनोभावों में परिनिष्ठित किए जाते है। पंचवटी में रहते हुए प्राकृतिक परिवेशगत अनुभूतियों के मध्य लक्ष्मण में गृहस्थ तथा पारिवारिक जीवन की स्वाभाविकता व्यापक हो जाती है। रात्रि के एकांत में वे पत्नी उर्मिला, मंझली माँ तथा अयोध्या के परिजनों को याद करते है। लक्ष्मण उर्मिला के प्रति प्रेम–भाव का स्मरण करते हुए सोच उठते है–

" बेचारी उर्मिला हमारे लिए व्यर्थ रोती होगी,
क्या जाने वह, हम सब वन में होंगे इतने सुख–भोगी। " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 10
2. वहीं, पृ. सं. 41
3. मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी पृ. सं. 18

'पंचवटी' खण्डकाव्य में कवि गुप्त ने लक्ष्मण को शूर्पणखा के साथ संवादों में उनके आर्य–मर्यादापोषित अभिजात्य रूप को उभारा है। शूपर्णखा की काम–वासना युक्त बातों से अप्रभावी–लक्ष्मण स्वयं के जीवन को सन्तुष्ट मानते है। शूर्पणखा के ममतामयी रूप को देखकर, वे ममता को नारी का आभूषण एवं आवश्यक मानवीय–मूल्य मानकर कह उठते है–

" एकान्त किन्तु इन बातों से क्या,
फिर भी हूँ में परम सुखी।
ममता तो महिलाओं में ही,
होती है है मंजुमुखी।" 1

कवि गुप्त ने अपने रामकाव्य में लक्ष्मण के शौर्य, वीरता एवं क्षत्रियोचित तेजस्वी रूप की संक्षिप्त प्रस्तुति मेघनाद–वध प्रसंग में की है। मेघनाद के शक्ति प्रहार से हुई मूर्च्छा से स्वस्थ्य होने पर वे शीघ्र ही माता सीता की रावण–कैद का स्मरण करते है। राष्ट्रकवि गुप्त का यह स्मरण भारत माता की परतंत्रता का स्मरण है। नारी के प्रति लक्ष्मण का सम्मान उनके संकट के समय में भी इस प्रकार फूट पड़ता है–

" हाय! नाथ विश्राम! शत्रु अब भी जीता,
कारागृह में पड़ी हमारी देवी सीता।
यदि वैरी का मार न कुल– लक्ष्मी को लाऊँ।
तो मेरा यह शाप मुझे–मैं सुगति न पाऊँ। " 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने लक्ष्मण को राम के प्रति भक्ति–भाव और उर्मिला के साथ नारी समाज के प्रति अनन्य श्रद्धा एवं प्रेम के साथ उनके चरित्र को उद्घाटित किया है। उनका चरित्र आधुनिक संदर्भ में अनुकूल ही नहीं प्रासंगिक भी है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी पृ. सं. 22
2. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 278

भरत –

रामभक्त वैष्णव कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने रामकाव्य के पात्रों में राम–भ्राता भरत की साधना और तपश्चर्या का महत्व राम एवं लक्ष्मण से किन्हीं अंशों में कहीं कम नहीं है। उनके 'साकेत', 'लीला', 'प्रदक्षिणा' इत्यादि काव्यों में भरत की उपस्थिति नूतन वैशिष्ट्य के साथ संयोजित है। 'लीला' गीतिकाव्य में उनके बाल–रूप की संक्षिप्त स्तुति है।

कवि गुप्त के 'साकेत' महाकाव्य में भरत, तुलसी के भरत के अधिक निकट हैं। राम–वनगमन का कारण स्वयं को मानकर वे आजीवन अपराध–बोध से संत्रस्त रहते है। इस कलंक का प्रक्षालन ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। "राम को घर पर नहीं देखकर वे भाव विभोर हो उठते है और अपने आप को भ्राता राम के लिए काल से संग्राम हेतु प्रस्तुत करते है। वे राम के बिना स्वयं को अनाश्रित पाते है। " 1

भरत में भ्रातृत्व की व्यापकता के साथ–साथ राम के प्रति शरणागति का भाव सर्वोपरि है। वे अपने कर्तव्य–निष्ठा, पुरुषार्थ और जीवन के सभी पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक दायित्वों का बड़ी सजगता से निर्वहन करते है। राम का राज्याभिषेक न होने पर असली हकदार वे भ्राता राम को ही मानते है और कैकेयी के प्रति वितृष्णा, तिरस्कार और आत्मग्लानि से भर जाते है। भरत ऐसे शासन को राजभक्ति नहीं विरक्ति कहते है। वे राम के स्थान पर मिले शासन को अस्वीकार करते हुए कहते है –

" मैं तुम्हारा राज्य–शासन–भार,
कर नहीं सकता यथा स्वीकार।
मानते थे सब जिसे निज शक्ति,
बन गई अब राजभक्ति विरक्ति। " 2

कवि गुप्त के भरत माता के रूप में कैकेयी की भर्त्सना नहीं करते, अपितु उस स्वार्थी–वृत्ति की निन्दा करते है जो एक पुत्र का हित तथा उसके समान ही दूसरे पुत्र का अहित करती हैं। भरत कैकेयी के उस कुकृत्य को कोंसते है जो परिवार के विघटन, पिता की मृत्यु का कारण बनता है। वे कैकेयी से क्षुद्र वात्सल्य को कोसतें हुए कह उठते है –

---

1. हम करेंगे काल से संग्राम / है कहाँ अग्रज हमारे राम ?
तो संभालेगा हमें अब कौन / यों अनाश्रित रह सका अब कौन।
मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 119
2. वहीं, — पृ. सं. 124

" धन्य तेरा क्षुधित पुत्र–स्नेह,
खा गया जो भूनकर पति–देह।
ग्रास करके अब मुझे हो तृप्त।
और नाचे निज दुराशय–दृप्त। " 1

राम के वनवास में रहने का समाचार सुनकर भरत ननिहाल से आकर सर्वप्रथम माता कौशल्या से मिलते है। वह माता कौशल्या के समक्ष अपनी सफाई नहीं देते अपितु अपनी भर्त्सना करते हुए ग्लानि और क्षोभ–मिश्रित उत्तेजना में दण्ड की याचना करते है। भरत माता कौशल्या के समक्ष स्वयं को षड़यंत्रकारी चोर जैसे अधम शब्दों में अपना क्षोभ इस प्रकार प्रकट करते हैं–

" आज माँ, मुझ–सा अधम है कौन ?
मुँह न देखों, पर न हो तुम मौन।
प्राप्त है यह राज्यहारी चोर,
दूर से षड़यंत्रकारी घोर।" 2

मानव–जीवन कर्म और पुरुषार्थ के अभाव में निस्सार है। कर्म ही मानव को सामान्य जन से ऊपर उठाकर देवत्व प्रदान करता है। यही प्रेरणा भरत में भी है। इसी का प्रतिफलन सीता–हरण का वृत्तान्त जानकर उनमें युद्धोत्साह के रूप में होता है। वह 'भारत–लक्ष्मी',सीता को रक्षसों के बंधन से मुक्त कराने में तत्पर होकर रण–सज्जा में रत् हो जाते हैं। भरत अपनी माताओं को व्याकुल देखकर एक क्षत्राणी की भाँति पुत्र को युद्ध में जाते समय मंगल–गान करने को प्रेरित करते है–

" भरतखण्ड के पुरुष अभी मर नहीं गये है,
कट उनके वे कोटि कोटि कर नहीं गये हैं।
रोना–धोना छोड़ उठो सब मंगल गाओ,
जाते है हम विजय–हेतु, तुम दर्प जगाओ।" 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत — पृ. सं. 121
2. वहीं, — पृ. सं. 125
3. वहीं, — पृ. सं. 306

इस प्रकार कवि गुप्त ने भरत को भ्रातृ–प्रेम के साथ कर्तव्य के प्रति सजग, भावना के साथ तर्कशील तथा तप के साथ पुरुषार्थ से परिपूर्ण मानकर दाम्पत्य भाव के उच्च शिखर पर प्रतिस्थापित किया है।

महाभारतकालीन पुरुष पात्रों में नारी चेतना

भारतीय जीवन में महर्षि वेदव्यास द्वारा विरचित 'महाभारत' तथा उससे सम्बद्ध विभिन्न कथाएँ बहुत लोकप्रिय होकर जनजीवन में समादृत हुई हैं। भारतीय आर्य–संस्कृति एवं सत्यनिष्ठा के वाहक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य–साहित्य में 'महाभारत' को उपजीव्य–ग्रंथ मानकर अनके रचनाओं की सृजना की है। इन रचनाओं के पात्रों में कवि ने 'महाभारत' के पात्रों को युगीन मानवीयता की अनिवार्यता, प्रत्यक्ष जीवन व्यवहार की सापेक्षता को प्रस्तुत किया है।

इन पात्रों के चिंतन में समाज के साथ समाज की आधारशिला नारी को भी गरिमामय धरातल प्रदान करने का हरसंभव प्रयास किया है। कवि गुप्त के महाभारतकालीन पुरुष–पात्र उनके 'जयद्रथ वध', 'वन वैभव', 'वक संहार', 'सैरन्ध्री', 'हिडिम्बा', 'नहुष', 'जयभारत', आदि अनेकानेक काव्य–कृतियों में अवतरित हुए है। इन प्रमुख महाभारतकालीन पुरुष–पात्रों में नारी चेतना इस प्रकार है–

कृष्ण –

संसार में जब–जब पापाचार और अधर्म का आविर्भाव हुआ है, तब–तब ईश्वर ने किसी न किसी रूप में सृष्टि में पापाचार एवं अधर्म के प्रक्षालन हेतु जन्म लिया है। लोक–मानस में ऐसे ही पापनाशक कृष्ण की अवतारणा संसार में हुई है। कृष्ण अपने आदर्श चरित्र द्वारा जन–जीवन में चेतना का आलोक विकीर्ण करते रहे और अपने महान व्यक्तित्व तथा कृतित्व द्वारा अत्याचार पीड़ित मानवता का उद्धार करते रहें है।

आधुनिककाल में द्विवेदी–युग के कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने आशावादी

एवं आस्थावादी कृष्ण को अपने 'जयद्रथ वध', 'जयभारत', और 'द्वापर' काव्य में परम्परागत अलौकिक ब्रह्मा–रूप में स्वीकार कर इनके स्वरूप की नवीन व्याख्या भी प्रस्तुत की है। उन्होंने आधुनिक राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जागरण के युग में कृष्ण–चरित को राष्ट्रीय भावना व नारी चेतना का प्रतीक मानकर सामाजिक उत्थान का आधार बनाया है। कवि गुप्त के अनुसार "श्रीकृष्ण संसार के समस्त पापों का निवारण करने के साथ उनकी शरण में आने वाले प्रत्येक प्राणी को भी भव सागर से पार करने वाले हैं।" 1

कवि गुप्त के काव्य में कृष्ण पांडवों के अग्रणी नेतृत्वकर्त्ता हैं, किंतु उनमें वे लिप्त नहीं है। वे पूर्ण तटस्थता से पक्ष–विपक्ष के संबंध में अपना मत प्रकट करते हुए राजनीतिज्ञ की भूमिका में प्रतीत होते हैं। कृष्ण और द्रौपदी के संबंधों में भक्त और भगवान के प्रेम की वत्सल–भावना प्रकट है, नारी अपमान से क्षुब्ध हो कृष्ण कह उठते हैं–

" पर मैं उनको कर न सकूंगा कभी सहन,
यों अपमानित किया जिन्होंने तुझे बहन।" 2

भगवान की उद्भावना संसार के कष्टों के निवारण हेतु होती है। कृष्ण का ईश–स्वरूप मानवी परिवेश के अधिक निकट है। जिससे उनका अलौकिक स्वरूप गौण हो गया है। एक रूप में वे दिव्य स्वरूप के प्रतिनिधि अवश्य है, किंतु अपने अलौकिकत्व का संवरण करके मानवोचित आचरण और व्यवहार करते है। नारी की पीड़ा को कृष्ण एक अबला के साथ पुरुष के अन्याय के रूप में जानते है। गान्धारी उनके समक्ष अपनी वेदना एवं विवशता को इस प्रकार प्रकट करती है–

" बोली इसी प्रकार वहाँ आकर गांधारी,
मैं भी हे गोविंद, अन्ततः अबला नारी।
दुर्योधन में विकसित हुई घनीभूत वह डाह ही,
क्या कर सकती हूँ मैं भला, भर सकती हूँ आह ही।"3

कवि गुप्त ने कृष्ण के चरित्र का चित्रण करते हुए विशेष सजगता के साथ उनके ईश्वरीय रूप की दिव्यता में मानवीय रूप की स्थापना की है। आधुनिक युद्ध की

---

1. स्वर ये मेरे भाव भरे/आ बस मेरी शरण धरे,
डर मत, कौन पाप वह जिसे/मेरे हाथों तू न तरें ?
मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर — पृ. सं. 12
2. वहीं, — पृ. सं. 218
3. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत — पृ. सं. 233

विभीषिका को रोकने में उनकी प्रेरणा बलवती भूमिका प्रदान करती है। आज विश्व में शान्ति–स्थापना में नारी की भूमिका प्रमुख है, क्योंकि नारी ही भावी पीढ़ी में मानवीय गुणों की स्थापना करती है। कृष्ण गान्धारी से अपने पुत्रों को क्रान्ति रोकने एवं शांति अपनाने की सलाह दे बैठते है –

" हो सकती है शान्ति, आप चाहें तो अब भी,
रुक सकती है क्रान्ति, आप चाहें तो अब भी।
भ्रान्त सुतों को शान्त कीजिए आप यहाँ पर,
शान्त करूँ विक्रान्त पाण्ड़वों को मैं जाकर।" 1

इस प्रकार कवि गुप्त की नारी चेतना में कृष्ण का योगदान सद्नागरिकों का निर्माण कर विश्व में शान्ति स्थापना में नारी की भूमिका प्रमुख रही। कवि ने उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ को एक चेतनाशील दिव्य पुरुष के रूप में उभारा है।

युधिष्ठिर –

समाज में धर्म एवं मर्यादा को स्थिर स्थायित्व प्रदान करने वाले धर्मराज युधिष्ठिर कवि गुप्त के महाभारतकालीन पुरुष–पात्र है। महाभारतकालीन पात्रों में कवि की निजी निष्ठा, आस्था और आदर्शोन्मुख वैचारिकता का प्रतिफलन जिन संदर्भो में युधिष्ठिर में हुआ है, उतना और अन्य किसी पुरुष–पात्र में नहीं हुआ। 'जयद्रथ वध' काव्य में अभिमन्यु की मुत्यृ पर करुणा–द्रवित युधिष्ठिर सामान्य जीवन व्यावहार एवं वीरोचित मरण के वरण को ही प्राथमिकता देते है। कृष्ण द्रौपदी को एक क्षत्राणी की भाँति अभिमन्यु की मृत्यु पर गर्व तथा संसार की क्षणभंगुरता की शिक्षा इस प्रकार देते है –

" अभिमन्यु के दर्शन विना तुमको न रोना चाहिए,
उसकी परम पद–प्राप्ति सुनकर शान्त होना चाहिए।
ले जन्म क्षणभंगुर–जगत में कौन मरता हैं नहीं ?
पर है उचित मरना जहाँ पर वीर मरते हैं वहीं।" 2

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 233
2. मैथिलीशरण गुप्त : जयद्रथ वध पृ. सं. 48

एक अग्रज के रूप में युधिष्ठिर को सभी भाइयों का स्नेह एवं सम्मान सुलभ है। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण माता कुन्ती भी उनका सम्मान एवं सहमति की आवश्यकता समझती है। युधिष्ठिर संयुक्त–परिवार की अवधारणा में अधिक विश्वास रखने वाले व्यक्ति है, जिसमें प्रत्येक के सुख–दुख का ध्यान उन्हें अपने से अधिक रहता है। कीचक द्वारा अपमानित होने पर द्रौपदी न्याय हेतु राजा विराट की सभा में गुहार लगाती है। वहाँ न्याय नहीं मिलने पर अंत में 'पति ही पत्नी की गति है' के भाव से युधिष्ठिर का स्मरण करती हुई कहती है–

" जिस प्रकार है मुझे यहाँ कीचक ने घेरा
होता यदि वृतान्त विदित तुमको यह मेरा।
तो क्या दुर्जन, दुष्ट, दुराचारी यह कामी,
जीवित रहता कभी तुम्हारे कर से स्वामी। " 1

राज्य–लिप्सा और अधिकार–लिप्सा मानव–विरोधी प्रवृत्तियाँ है, जो मानव–जाति के स्वस्थ्य विकास को अवरुद्ध करती है। युधिष्ठिर में इसका अंश रंचमात्र भी नहीं है। माता कुन्ती और सभी गुरुजनों के प्रति वे नम्र, शिष्ट और श्रद्धानत रहते है। एक सामान्य नारी के रूप में द्रौपदी–वरण के संबंध में उनके माध्यम से जो अवधारणा कवि ने व्यक्त की है, वह नितान्त मौलिक है–

" वर पार्थ वधू है पांचाली,
दो वर ज्येष्ठ का पद पावें,
दो देवरत्व पर बलि जावें।
भोगें यों पांचों सुख इसका।" 2

युधिष्ठिर एक सहनशील व्यक्तित्व के धनी है। वे गान्धारी, धृतराष्ट्र तथा अन्य कौरवों के प्रति उदार हो स्नेहपूर्ण होकर बुरे समय को ही दोषी मानते है। भरी सभा में द्रौपदी का अपमान करने वाले कौरवों को युधिष्ठिर शीघ्र प्रताड़ित न करके द्रौपदी से धैर्य धारण करने तथा शासक के प्रति निष्ठुर–वाणी नहीं बोलने की अपील करते हए युधिष्ठिर द्रौपदी से कह उठते हैं–

" हे सैरन्ध्री व्यग्र न हो तुम, धीरज धरो,
नरपति के प्रति वचन न यों निष्ठुर उच्चारो।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : सैरन्ध्री — पृ. सं. 23
2. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत — पृ. सं. 120

न्याय मिलेगा तुम्हें लौट अन्तःपुर जाओ,
नृप हैं अश्रुतवृत्त, दोष उनको न लगाओ।" 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने युधिष्ठिर के माध्यम से द्विवेदीयुगीन परिवेश में नारी के प्रति नर के दृष्टिकोंण को उद्घाटित कर समाज में नवीन नारी चेतना का संचार कवि ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में किया है।

भीम –

संसार में मानव की अक्षय–कीर्ति का आधार–स्तम्भ उसके साहस, शौर्य एवं वीरता आदि मानवीय गुण होते हैं। इन गुणों के आधार पर ही भीम ने हिडिम्ब, वक, जरासंध, जटासुर, कीचक जैसे असुरों का संहार करके मानव तथा समाज में शांति स्थापित की है।

कवि गुप्त ने अपने काव्य में इन मानवीय गुणों के धारक पांडव भ्राता भीम का चित्रण निर्भीक, स्पष्टवादी, व्यवहारकुशल और स्थिति की गंभीरता को समझते हुए निःस्वार्थ एवं निरीह भाव से परिवार के दायित्वों को वहन करने वाले योद्धा के रूप में किया है। "भीम के बल एवं कौशल में कोई सीमा नही थीं, नारी के सम्मान हेतु व हिडिम्ब जैसे राक्षस से भी अपनी ताकत के बल पर टकरा जाता है। " 2

समस्त महाभारतकालीन पात्रों में कुछ पात्रों को छोड़कर स्वार्थ एवं कुप्रवृत्तियों का ही चित्रण है। लेकिन भीम को कवि गुप्त ने महाभारत के पारम्परिक रूप को छोड़ते हुए उनमें लोक–व्यवहार और नारी मर्यादा के अनरूप चरित–गरिमा का समावेश किया है।

सामान्य लोगों की राक्षसों के प्रति धारणा उनकी कृप्रवृत्ति एवं दुष्टाचार के कारण दुर्भावनापूर्ण रहती है। लेकिन भीम राक्षस कन्या हिडिम्बा के रूप–सौन्दर्य, आचरण एवं व्यवहार को देखकर अपने पूर्वानुगृह को स्वयं तोड़ता है। भीम राक्षस नारी हिडिम्ब के मानवीय गुणों को समस्त मानव समाज के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत करता है–

" फूटा जिसे देख यहाँ पत्थर से सोता है,
ऐसा रस–रूप यदि राक्षसी का होता है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 121
2. राक्षस बहन को हटा के भिड़ा भीम से,
कौशल में बल में वे दोनों थे असीम से।
मैथिलीशरण गुप्त : हिडिम्बा पृ. सं. 13

तो थी राक्षसों के प्रति मेरी भ्रान्त धारणा,
तन्वि, तुझे योग्य नहीं यह वन–धारणा।" 1

परिवार में अपनी जिम्मेदारी एवं कर्त्तव्य के कारण ज्येष्ठ व्यक्ति संरक्षक का पद प्राप्त करता है। भीम भी अपनी माता, भाइयों और पत्नी के प्रति एक संरक्षक की भूमिका के रूप में कर्त्तव्यशील, सेवा–तत्पर, निस्पृह आज्ञादाता आदि के रूप में तत्पर रहता है।

उनका परिवार–धर्म अन्याय एवं अनाचार का निषेध करता है। भीम द्रौपदी को वन में सैरन्ध्री के रूप में कष्ट दुःखी एवं अत्याचार पूर्ण देखकर स्वयं को धिक्कारते हुए द्रौपदी को सबल प्रदान करने को शीघ्रातिशीघ्र तत्पर हो उठता है। द्रौपदी भी एक सामान्य नारी की भाँति पति के अंक का आश्रय पाकर एक उद्यान लता की भाँति इस प्रकार प्रसारित हो उठती है–

" धिक् है हमको हाय! सहो तुम ऐसी ज्वाला,
कहते कहते उसे भीम ने शीघ्र संभाला।
दीखी वह यों अतुल अंक–आश्रय पा पति का,
विरट–काण्ड पर पड़ी ग्रीष्म–दग्धा ज्यों लतिका।" 2

समाज में अन्याय और अत्याचार का विरोध स्वाभिमानी व्यक्ति ही करता है। महाभारतकालीन पुरुष–पात्रों में इस प्रकार का विरोध करने की क्षमता एवं योग्यता केवल भीम में ही है। वह युधिष्ठिर के समान अन्यायी को क्षमा करने में विश्वास नहीं रखते, अपितु अन्यायी को उसके द्वारा किए गए कृत्य का दण्ड देते है।

कवि गुप्त के भीम जो महाभारतीय भीम के समान मौन नहीं रहतें, बल्कि अपने साहस, शौर्य और निर्भीकता द्वारा अपने कृत्य का औचित्य भी पूर्णतः प्रकट करते हैं। भीम ही वह पाण्डव है, जो द्रौपदी के अपमान को अनदेखा नहीं करता, अपितु अपने शारीरिक बल, शौर्य, तेज तथा प्रतिज्ञा से दुर्योधन एवं दुःशासन को खुली चुनौती भी देता है। भीम की यह क्रौधपूर्ण चुनौती उनकी नारी के प्रति आदर्श एवं मर्यादा की पराकाष्ठा है। 'जयभारत' में कवि गुप्त ने भीम के क्रोध और प्रतिशोधजनित प्रतिज्ञा को पूर्वजों तक इस प्रकार पहुंचाया है–

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : हिडिम्बा — पृ. सं. 10
2. मैथिलीशरण गुप्त : सैरन्ध्री — पृ. सं. 25

" दुःशासन का हृदय दीर्ण कर उसका रक्त न पी जाऊं,
तो साक्षी दिग्काल रहो तुम मैं न वीरगति पाऊं।
दुर्योधन की जांघ न तोडूं तो मैं अपना सिर फोडूं,
यदि मैं कभी प्रतिज्ञा छोडूं तो पितरों से मुंह मोडूं। " 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने भीम में उस शौर्य, साहस, उत्साह और अप्रितम बल का समाविष्ट किया है, जो अपने बल एवं साहस के द्वारा नारी आदर्श एवं मर्यादा की रक्षा करता है। वह पुरुष की हिडिम्बा जैसी नारी के प्रति परम्परागत धारणा को तोड़कर नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोंण की स्थापना भी करता हैं।

ऐतिहासिक पुरुष–पात्रों में नारी चेतना–

इतिहास मनुष्य के प्रत्यक्ष और व्यावहारिक जीवन का सच्चा और प्रमाणवद्ध विवरण होता है। कवि अथवा साहित्यकार जब किसी ऐतिहासिक–वृतांत को अपना वर्ण्य–विषय बनाता है तो उसके साथ तत्कालीन समाज में प्रचलित अवधारणा अथवा विशेषताएॅ भी जुड़ जाती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त काव्य में अपनी लेखनी से ऐतिहासिक तथ्यों को समाहित करते हुए मौलिक, अभूतपूर्व सामाजिक चेतना तथा नारी–शक्ति को ओज प्रदान किया है।

भारतीय आर्य–संस्कृति के आख्याता, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने ऐतिहासिक काव्यों में इतिहास और कल्पना का अद्‌भुत समन्वय किया है। कवि गुप्त ने अपने इन काव्यों के लिए इतिहास से तो सामग्री ली ही है साथ ही भारतीय आर्य–संस्कृति तथा नारी को महत्व भी दिया है। उनकी सजीव और सार्थक चित्रण–शक्ति से काव्य ने ऐसा स्वरूप तथा आकार धारण कर लिया की उनकी काल्पनिकता ने भी यथार्थ और सत्य का रूप ले लिया है। इस प्रकार कवि गुप्त का ऐतिहासिक काव्य व्यावहारिक यथार्थ तथा आधुनिक विसंगतियों से जुड़कर अधिक सक्षम, प्रेरक और शक्तिमान बन जाता है।

कवि गुप्त के ऐतिहासिक पुरुष–पात्र अपने इतिहासपरक रूप को सुरक्षित रखते हुए,

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 104

समाज में भाव–सम्प्रेषण–क्षमता का स्पर्श पाकर शुद्ध भारतीय गृहस्थ–जीवन एवं परिवार के मनोहारी अंग बन जाते है। ये पुरुष–पात्र भारत के अतीत आदर्श, इतिहास–पुरुष कर्मठ, वीर, बुद्धिमान, त्यागी, दूरदृष्टा और नारी सम्मान के वाहक तथा नारी चरित्र की ऊष्मा का संधान करते हैं। इन ऐतिहासिक पुरुष–पात्रों में नारी–चेतना इस प्रकार है–

कुणाल –

भारतीय इतिहास में बौद्धकालीन सम्राट अशोक के पुत्र कुणाल के प्रति राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने विशेष रूप से तन्मय हो अपने काव्य में गरिमा प्रदान की है। कुणाल को अपनी विमाता तिष्यरक्षिता की असफल कामासक्ति के कारण उनके क्रोध तथा प्रतिहिंसा का लक्ष्य बनना पड़ता है। उसे अपनी विमाता द्वारा अंधा करके पत्नी कांचनमाला के साथ देश से निष्कासित कर दिया जाता है।

उस अंध पात्र को कवि ने विशेष भाव–ज्योति प्रदान करते हुए एक ऐसे पात्र के रूप में स्थापित किया है, जो राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक तथा नारी चेतना आदि सभी अवधारणाओं का समेकित स्वरूप बन गया है। इस संबंध में डॉ, माधुरी खोंसला का मानना है कि "कुणाल भौतिक जीवन में सम्पदाओं से विपन्न होकर भी उसका संवेदनशील भाव–जगत् अत्याधिक समृद्ध हो जाता है, उसका बाह्य–जगत् जितना अंधकाराच्छन्न हो गया है, अन्तर्मन उतना ही अधिक ज्योतिर्मय हो उठता है।" 1 कुणाल की अंधता के कारण शारीरिक चेष्ठाएं एवं क्रियाएं अवश्य बॉधित हो जाती है, लेकिन अन्तर्जगत् एवं अन्तर्मन की भावानुभूतियाँ जागृत हो उठती है। पिता अशोक और माता तिष्यरक्षिता के प्रति उसका कर्तव्य, धर्म, श्रद्धा तथा विश्वास कहीं भी न्यून नहीं होता। कुणाल का व्यवहार उनके प्रति श्रद्धालु, विनयशील और सम्मानपरक ही रहता हैं । वह स्वयं से नारी के रूप में अपनी माता के प्रति विनय होकर यही कहता है–

" तनय, सदयता से ही मां का दिया दण्ड स्वीकार,
सिद्ध हुआ कैकेयी से भी उनका दान उदार।
मिला राम से तुझे अधिक ही बाह्य विषय–परिहार।" 2

---

1. डॉ. माधुरी खोंसला : मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में पात्रों की परिकल्पना पृ. सं. 281
2. मैथिलीशरण गुप्त : कुणाल गीत पृ. सं. 14

जीवन–रथ में पति–पत्नी दोनों दो पहियों के समान होते हैं। जिन पर जीवन–गाड़ी अनवरत् गति करती रहती है। कुणाल भी अपनी पतिपरायणता, साध्वी, त्यागशील, उदारचेता पत्नी कांचनमाला के सहयोग से कहीं भी स्वयं को निराश्रित और अकेला नहीं पाता है।

जीवन के प्रति अनुरक्त रहता हुआ वह प्रवृत्ति–मार्ग द्वारा नारी चेतना का उद्‌घोषक बन जाता है। वह अपनी पत्नी कांचनमाला के साथ तीर्थाटन करता हुआ, अपने अंधे नेत्रों से एक विराट विश्व का दर्शन करता है। कुणाल पत्नी कांचमाला को विश्वबन्धुत्व की स्थापना में करुणा एवं मैत्री को प्राथमिकता देता हुआ विभिन्न अलगाववादी–शाखाओं का विरोध इस प्रकार करता है–

" मैत्री–करुणा में कल्याण, विश्व–बंधुता में ही त्राण।
देश–काल–गुण–कर्म–स्वभाव, यें शाखाओं के अलगाव।" 1

कुणाल अपने जीवन में पत्नी कांचनमाला का आधारभूत आश्रय पाकर ऐसे जीवन और समाज की कल्पना करता है 'जहाँ सभी सुखी हो निरोगी हों' सब में विश्व–भ्रातृत्व का अपूर्व भाव–संबंध हो। अपने जीवन और व्यक्तित्व को 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' में समर्पित कर देने में वह अपने अस्तित्व की सार्थकता मानता है।

इस रूप में कुणाल मात्र बौद्धकालीन परिवेश तक ही सीमित न रहकर, गांधीजी के युग में प्रवेश करके उन्हीं के आदर्शों के साथ डॉ.अम्बेडकर के सिद्धांतों के अनुसार शोषित, दलित, निम्नवर्गीय तथा उत्पीड़ित मानवता के प्रति सच्चे ह्रदय से समर्पित होकर उस वर्ग को ही समाज का सच्चा अंग बताते हुए पत्नी कांचनमाला से कह उठता है –

" रूचि मूलक मानस के मंथ।
भिन्न–भिन्न अपने मत–पंथ,
जिन्हें शुद्र कहते हैं वे ही।
है समाज के सच्चे अंग।" 2

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : कुणाल गीत — पृ. सं. 112
2. वहीं, — पृ. सं. 93

इस प्रकार कवि गुप्त ने 'कुणाल गीत' में मानवता के साथ नारी चेतना के शाश्वत आदर्शों की स्थापना की है। कवि ने 'कुणाल गीत' में 'धम्मपद' गाथाओं के उपदेश, मनुष्य के क्रोध को अक्रोध से, असाधुता को साधुता से, कृपन को दान से और असत्यभाषी को सत्य से जीतनें के आदर्श की स्थापना की है।

मघ—

संसार में मानव—कल्याण तथा दुष्टों का संहार हेतु ईश्वर का अवतरण हुआ है। भगवान बुद्ध ने भी लोक—जीवन तथा समाज को किसी—न—किसी रूप में नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा के साथ नारी का उद्धार अनिवार्य माना है। इसी आदर्श के अनुरूप मघ के जीवन का आदर्श समाज के नैतिक स्तर को ऊँचा करते हुए सुख—शांति की स्थापना करना है। इस पात्र के माध्यम से कवि ने अपने युग के स्वतंत्रता—सेनानी गणेशशंकर विद्यार्थी के त्यागशील व्यक्तित्व का अंकन किया है।

मघ सत्यनिष्ठ और अहिंसक क्रिया—मार्ग का अनुशरण करते हुए करुणा तथा मानव—सेवाभाव से आप्लावित ऐसे आदर्श को स्थापति करता है, जिसमें असज्जन और क्रूर भी सज्जन, दयावान और क्षमाशील बन जाते है। मघ के इस कार्य में उनकी आदर्श—प्रेमिका सुरभि भी सहयोगिनी बनती है। मघ सुरभि से समाज हित के विषय में यहीं कहता है—

" जहाँ कुछ भी समाज का हित हो,
वहीं यह मेरा तनु अर्पित हो।" 1

'अनघ' गीतिकाव्य के मघ की नारी—चेतना के दो बिन्दु, उसकी माता और प्रिया सुरभि है। मघ प्रेमी—रूप में अत्यंत संयमशील और मर्यादित पात्र है। सुरभि के प्रति वह एकाग्र भाव से समर्पित है। वर्ग और वर्ण—वैषम्य की उपेक्षा करते हुए वह सुरभि को प्रिया रूप में स्वीकार करता है। उसका प्रेम केवल भावना तक ही सीमित न होकर जीवन—कर्त्तव्यों और आत्मनिष्ठा से सम्बद्ध है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ पृ. सं. 22

इस प्रकार मघ के चरित्र में कवि गुप्त ने प्रेम के उस मर्यादित पक्ष को रूपाहित किया है जो भावनात्मक स्तर पर अत्यन्त व्यापक और उच्च है। मघ गृहस्थ होने के साथ ही जनसेवा में रत् रहना चाहता है, लेकिन मघ जनसेवा और देशसेवा में नारी के योगदान को आनिवार्य मानता है –

" मुझे है इष्ट है जन सेवा,
न होगी वह पूर्ण वह जब तक
न हो सहधर्मिणी जब तक।" 1

कवि गुप्त के काव्य का मघ एक ऐसा पुरुष–पात्र है, जो नारी को अपने साथ लेकर दूसरों की सेवा में ही अपने जीवन की सार्थकता मानता है। भगवान बोधिसत्व के समान ही मघ के सृजना–मूल में अहिंसा, सत्य, शील, त्याग , औदार्य, करुणा, दूरदृष्टि आदि गुण प्रबल है।

कवि गुप्त ने मघ के इन गुणों को गणेशशंकर 'विद्यार्थी' के उदात्त गुणों में समाहित कर 'विद्यार्थी' के साहस, त्याग, बलिदान, निर्भयता और सहिष्णुता आदि गुणों को मानव समाज के समक्ष समर्पित किया है। इस प्रकार मघ नारी के प्रति आस्थावान और अहिंसक रूप में निष्काम कर्मयोगी की भांति अपनी प्रेमिका सुरभि को कर्म का संदेश इस प्रकार देता है–

" फल हो न हाथ मेरे,
कर्तव्य साथ मेरे।
वैफल्य का वृथा भय,
है कर्म–बीज अक्षय। " 2

प्रत्येक नागरिक के लिए राष्ट्रीय भावना सर्वोपरि होती है। मघ भी सहृदय, संवेदनशील तथा आत्मोत्सर्ग के साथ राष्ट्र के प्रति समर्पित पुरुष है। वह भारतीय इतिहास के राष्ट्रीय आन्दोलन के सजग कार्यकत्ताओं का सच्चा प्रतिनिधि है और सत्य अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए मातृभूमि की रक्षार्थ स्वयं को न्यौछावर करना चाहता है। प्रेमिका सुरभि

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ पृ. सं. 87
2. वहीं, पृ. सं. 94

द्वारा अपने आभूषण बेचकर प्रेमी मघ तथा उसके समान अन्य स्वतंत्रता प्रेमियों की सेवा करने की कहने पर मघ सुरभि को व्यक्ति और समाज की सेवा में तत्पर रहने का संदेश उत्साह पूर्वक इस प्रकार देता है –

" न तन–सेवा, न मन–सेवा, न जीवन और धन–सेवा।
मुझे है इष्ट जन–सेवा, सदा सच्ची भुवन–सेवा।" 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने मघ के रूप में एक ऐसे पुरुष पात्र की सृजना की है जो अधुनिक जीवन में नारी चेतना तथा भारतीय–संस्कृति , लोक–धर्म और नैतिक आदर्शो का अग्रदूत है–

सिद्धराज जयसिंह–

भारतीय इतिहास का मध्यकाल राजपूतों की आन–वान–शान वीरता तथा संकल्प–शक्ति के लिए प्रसिद्ध रहा है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी सिद्धराज जयसिंह द्वारा किए गए अनेंक युद्धों को चित्रण करते हुए राष्ट्रीय एकता और नारी के चरित्रोत्कर्ष की सुन्दर अभिव्यंजना की है। कवि गुप्त ने 'सिद्धराज' खण्डकाव्य में जयसिंह के चरित्रोदय के प्रारम्भिक पक्ष को एक मातृभक्त पुत्र के रूप में प्रकट किया है।

यद्यपि वह एक निरंकुश, अल्हड़ और महत्वाकांक्षी राजपूत है, किन्तु माता मीनलदे की आज्ञा और इच्छा–पालन में तत्पर वह विनम्र तथा कर्त्तव्यबोध से प्रेरित व्यक्तित्व का उत्कृष्ट रूप प्रकट करता है। जयसिंह अपनी माता मीनलदे के आदेश से शासकीय नियमों, शासन–व्यवस्थाओं में परिवर्तन करता है। एक आदर्श माता की शासन–सलाह, सुशासन के रूप में इस प्रकार फलित होती है–

" राजकोष रिक्त हो, तो चिन्ता नहीं मुझको,
राज्य में प्रजा की सुख–सिद्धि, निधि–वृद्धि हो,
पुष्ट प्रजा–जन ही है सच्चे धन राजा के। "2

कवि गुप्त ने सिद्धराज जयसिंह के चरित्र का एक महत्वपूर्ण पक्ष रानकदे के प्रति उनका प्रेमाकर्षण

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ पृ. सं. 76
2. मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज पृ. सं. 23

है। " वह रानकदे को खनन से प्राप्त मणि की भाँति मानकर स्वयं को उस पर एकाग्र भाव से न्यौछावर करता है।" 1 जयसिंह रानकदे की सौन्दर्य चर्चा मात्र से अभिभूत होकर रानकदे को खंगार के कारण प्राप्त नहीं कर पाता है, तब उसके मन में पशुभाव का उदय होता है, लेकिन अगले ही पल जयसिंह के मन में नारी सम्मान एवं चरित्रोत्कर्ष के कारण कह उठता है –

" औरों को गिराये बिना, उठकर आप ही,
हम क्या महान नहीं हो सकते लोक में ?
ऐसे शक्तिशाली तो निवृत्ति–मार्ग वाले ही,
संघर्ष और होड़ा–होड़ी की प्रवृत्ति में। " 2

'क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो' कहावत वीर–योद्धाओं पर भी सटीक होती है। एक योद्धा का गौरव केवल रक्तपात द्वारा विजय में नहीं है। लेकिन कभी–कभी युद्ध की अपेक्षा तटस्थता अथवा शत्रु से संधि में भी प्रत्यक्ष राजकीय उपलब्धि समाहित होती है।

जयसिंह केवल योद्धा ही नहीं, कूटनीतिज्ञ तथा दूरदर्शी राजा होनें के साथ ही उदार और गुणग्राही व्यक्ति भी है। इसलिए अपने विपक्षी नर वर्मा के गुणी मंत्री को महान मूल्य देकर भी प्राप्त करता है। जयसिंह नारी के प्रति अपनी उदार एवं व्यापक भावना का परिचय अर्णोराज को अपने बंधन से मुक्त करके अपनी पुत्री कांचनदे को उसे सौंप कर देता है। जो उसके सहज, मानवीय और संवेदनशील हृदय की बानगी है–

" राजवन्दी राजा पर आई उसे ममता,
चाहा राजनन्दिनी ने वह परितुष्ट हो।
सहज उपाय उनको सुझा झट से,
अपनी पुत्री प्रदान कर दी शीघ्रता से।" 3

व्यक्ति को प्रकृति अपने मन के भावों के अनुसार ही नज़र आती है। जयसिंह भी सम्पूर्ण प्रकृति में रानकदे के देवोपम सौन्दर्य का ही साक्षात् करता है। वह मैत्री, स्नेह,

---

1. खनि की महता, मणि से सिद्ध होती है,
   तुम पर आप जयसिंह निछावर है।
   मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज — पृ. सं. 48
2. वहीं, — पृ. सं. 68
3. वहीं, — पृ. सं. 67

सौहार्द संबंधों में युद्ध की अपेक्षा अधिक सुख अनुभव करने लगता है, तथा साम्राज्य–स्थापना का मोह छोड़कर सांस्कृतिक समन्वय एवं भ्रातृत्व–भावना का प्रतिनिधि पात्र बन जाता है।

इस पर जयसिंह अपने हृदय परिवर्तन में एक नारी के योगदान के रूप में रानकदे के योगदान का स्मरण करता है। जयसिंह को एक नारी में भारतभूमि के समान पवित्रता, तथा विश्व–तीर्थ भावना नजर आती है। वह देशभक्तिमयी आधुनिक सांस्कृति समन्वय की भावना को इस प्रकार अभिव्यक्ति देता है–

" आर्य–भूमि अंत में, रहेगी, आर्य–भूमि ही।
आकर मिलेंगी यही संस्कृतियाँ सबकी,
होगा एक विश्व–तीर्थ भारत की भूमि का। " 1

इस प्रकार कवि गुप्त ने जयसिंह को एक क्षत्रिय और विजेता राजा के साथ रानकदे के प्रेम–प्रसंग को मानवीय रूप प्रदान किया है। एक राजा का यह स्वरूप नारी के प्रति दया, उदारता नारी के महत्व एवं सम्मान को दर्शाता है।

प्रमुख पुरुष पात्रों में नारी चेतना

सिद्धार्थ –

साहित्य मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम है। संवेदनाओं का पुंज नारी को माना गया है। सृष्टि का विकास प्रकृति और पुरुष से माना गया हैं। इसमें मूल भूमिका प्रकृति की मानी जाती है। भारतीय आर्य–संस्कारों के संचालक कविवर मैथिलीशरण गुप्त के चम्पूकाव्य 'यशोधरा' में भी सिद्धार्थ को आरंभ में प्रकृति, जीवन तथा जगत् के नश्वर परिदृश्यों के प्रति जिज्ञासा प्रेरित दिखाया गया हैं।

सिद्धार्थ के चिंतन में जगत् एवं प्रकृति के प्रति वैराग्यजनक विकर्षण है। सिद्धार्थ को अपने पारिवारिक और व्यावहारिक संबंधों का पूर्ण बोध है। उनसे विमुख होने की कोई आकांक्षा उसके मन मे नहीं है। लेकिन सिद्धार्थ के अनुसार "वह अपने अन्तर्मन को परिपूर्ण

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज पृ. सं. 89

करना चाहता है, और अपने जीवन की सार्थकता संसार–सागर से सद्‌कर्मों द्वारा तरने में ही मानता है।" 1 कवि गुप्त के 'यशोधरा' खण्डकाव्य में वर्णित सिद्धार्थ अपनी पत्नी यशोधरा तथा पुत्र राहुल के प्रति दायित्व–बोध के साथ ही यह अनुभव करता है कि प्रत्येक क्रिया और उपलब्धि की एक समय सीमा होती है। यदि इस समय वह अपने लक्ष्य के प्रति उन्मुख नहीं हुआ तो उसकी प्राप्ति सहज नहीं होगी।

इस प्रकार सिद्धार्थ वैराग्य से आविष्ट अवश्य है किन्तु लोक व्यवहार के प्रति शून्य नहीं है। वह वीतारागत्व के आवेश में अस्वाभाविक न होते हुए पत्नी और पुत्र के प्रति संवेदनारहित नहीं है। यशोधरा के प्रति सहानुभूमि एवं संवेदना रखते हुए अपने को उचित समय में चेतनाशील रखते हुए कह उठता है–

" हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा ?
हाय! मिलेगा मिट्‌टी में वह सूवर्ण–सवर्ण खरा ?
सूख जावेगा मेरा उपवन जो हैं आज हरा,
सौ सौ रोग खड़े हो सम्मुख पशु ज्यों बॉध परा,
धिक्! जो मेरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा।" 2

सिद्धार्थ पत्नी यशोधरा को अपने 'महाभिनिष्क्रमण' से अवगत कराने की इच्छा होते हुए भी उसका निषेध इसलिए करते है, क्योंकि उन्हें यशोधरा की वर्जना से अभिभूत होने की आशंका है। इसलिए वे भौतिक जगत् की उपलब्धियों की अपेक्षा चिन्तन एवं सत्य के संधान को सर्वोपरि मानकर जगत्–बंधन में बंधे अल्पज्ञ प्राणियों को उनके उच्चतम लक्ष्यों तथा कर्तव्य का यथार्थबोध कराने के लिए कृत्संकल्प हो जाता है। इस प्रकार सिद्धार्थ का मन नारी के रूप में भौतिक–जगत् यशोधरा की ओर से निश्चिन्त होकर उनका व्यक्तित्व पूर्णतः चेतन हो जाता है। सिद्धार्थ अपने मन ही मन यशोधरा से यही पूछता है–

" कहॉ चला जाता है चेतन, जो मेरा मनचीता है ?
खोजूँगा मैं उसको, जिसके बिना यहाँ सब तीता है।" 3

---

1. रिक्त मात्र है क्या सब भीतर, बाहर भरा–भरा ?
   कुछ न किया यह सूना भव भी यदि मैंने न तरा।
   मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा — पृ. सं. 12
2. वहीं, — पृ. सं. 11
3. वहीं, — पृ. सं. 13

कवि गुप्त ने सिद्धार्थ की चिन्तन धारा में राष्ट्रीयता का समावेश कर अपनी मातृभूमि को उसकी उच्चशयता तथा गौरव का बोध कराया है। अपनी विचार–श्रृंखला में सिद्धार्थ जहाँ भौतिक तथा पारिवारिक दायित्वों के प्रति सजग है, वहीं पालन–पोषण करने वाली जन्मभूमि के प्रति भी उच्चतम सहृदयता के साथ समर्पित है। उसे गर्व है कि उसने भारत–जैसे महान देश में जन्म लिया है इसलिए वह स्वयं को मातृभूमि के प्रति कृतार्थ मानकर जन्मभूमि को कोटि–कोटि धन्यवाद देता है।

'यशोधरा' चम्पूकाव्य में सिद्धार्थ नारी सम्मान का साक्षी तथा नारी चेतना का उद्बोधक पात्र बनकर उभरा है। कवि गुप्त के पुरुष–पात्र सिद्धार्थ में यह नारी चेतना एवं नवीनता है कि सिद्धि प्राप्ति करके भी वे नारी के महत्व और गरिमा से अभिभूत हैं। वे अपनी पारलौकिक उपलब्धियों का पूर्ण श्रेय नारी के रूप में पत्नी यशोधरा को देते है और जीवन आधार नारी के महत्व को हृदय के अन्तःकरण तक स्वीकार करते हुए कहते है कि –

" दीन न हो गोपे, हीन नहीं नारी कभी,
भूत–दया–मूर्ति वह मन से, शरीर से।
क्षीण हुआ वन में क्षुधा से मैं विशेष जब,
मुझको बचाया मातृजाति ने ही खीर से।" 1

इस प्रकार सिद्धार्थ को नारी चेतना के संदर्भ में पत्नी के गौरव तथा सम्मान की रक्षा करते हुए सर्वथा मौलिक संदर्भो में स्थापित किया है। सिद्धार्थ गौतम का यशोधरा के प्रति उपर्युक्त कृतज्ञ–भाव उनके चरित्र की उदात्तता और सदाशयता को व्यक्त करता है।

चैतन्य महाप्रभु –

भारतीय संस्कृति में धार्मिक समन्वय के अधिष्ठाता राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'विष्णुप्रिया' खण्डकाव्य में बंगाल के अप्रितम साधक चैतन्य महाप्रभु को व्यापक परिकल्पना प्रदान कर नारी चेतना के समर्थक के रूप में स्थापित किया है। बंगाल

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा पृ. सं. 110

के धार्मिक सांस्कृतिक क्षेत्र में चैतन्य और उनकी पत्नी विष्णुप्रिया की लीलाओं का गुणगान एवं जीवन–चरित्र की व्यापक व्याख्या होती रही है। कवि गुप्त ने अपने इस काव्य–नायक को गंभीर विचारक और सच्चे साधक के रूप में माता के प्रति समर्पित तथा गृह दायित्वों के प्रति सजग आदर्शोन्मुख पात्र के रूप में स्थापित किया है। कवि के अनुसार "माता शची के घर चैतन्य भगवान कृष्ण की भॉति एक दिव्य ज्योति के रूप में अवतरित हुए है। ऐसे महान रूप को देखकर उनके सभी भक्त कृतकृत्य हो जाते है। " 1

कवि गुप्त ने विष्णुप्रिया के साथ चैतन्य महाप्रभु की दाम्पत्य–भाव प्रेरित उनकी छवि को दृढ़ता के साथ उस समय प्रस्तुत किया है जब वे विष्णुप्रिया से वैराग्य धारण करने की अनुमति लेना चाहते है। माता शची के प्रति भी चैतन्य महाप्रभु की वात्सल्याभिव्यक्तियाँ कर्तव्य–भावना तथा धर्मबोध में दब गयी है। वे विष्णुप्रिया के रूप में एक आदर्श नारी के आत्मबल पर मुग्ध है। चैतन्य का मानना है कि एक नारी अपने आत्मबल के सहारे काल पर भी विजय प्राप्त कर सकती हैं। चैतन्य महाप्रभु ने विष्णुप्रिया के आत्मबल को इस प्रकार संबल प्रदान किया है–

" बीत गये वर्ष पर वर्ष दुःख झेलते,
विष्णुप्रिया के ही योग्य ऐसा आत्मबल था " 2

भारतीय मध्यकालीन इतिहास में सिद्धार्थ गौतम और चैतन्य महाप्रभु भौतिक सिद्धियों की अपेक्षा आध्यात्मिक उपलब्धियों में जीवन की सार्थकता स्वीकार करते है। लेकिन चैतन्य महाप्रभु, सिद्धार्थ से अनेक स्तरों पर भिन्न है।

जीवन और जगत् के व्यापारों मे नश्वरता के आभास तथा संसार के प्रति विरक्ति की भावना से वह पत्नी तथा गृह–त्याग करने के लिए विवश नहीं होते हैं। बल्कि गृह–त्याग करते समय नारी के प्रति उनकी आस्था अन्य गृह–त्यागी पुरुषों की तुलना में सबसे प्रबल है। जिस गौरव के लिए यशोधरा जैसी नारी आधोपांत आकुल रहीं वही सम्मान चैतन्य महाप्रभु विष्णुप्रिया को पूरी आस्था से देते हुए कहते है–

---

1. जागी फिर एक बार दिव्य ज्योति जग में
संकर्षण–तुल्य पहले ही विश्वरूप थे।
ध्यान करते थे जिन मोहन के रूप का
मानों उन्हे व्यक्त देख भक्त कृतकृत्य थे।
मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया पृ. सं. 02

2. वहीं, पृ. सं. 64

" जैसे एक सैनिक समर–हेतु जाता है ,
भेजती है सजाकर उसे है उसकी वधु ,
वैसे तुम्हीं एक भेज सकती हो मुझको।
नर क्या करेगा त्याग करती है नारी। " 1

पुरुष, समाज एवं हृदय में नारी के महत्व को अवश्य स्वीकार करता है। गौतम ने नारी के जिस महत्व को सिद्धि प्राप्त करके हृदयंगम किया, चैतन्य को उसका बोध पहले से ही है। पत्नी और माता के प्रति दायित्वों के प्रति विमुख होना उनकी विवशता है। चैतन्य पण्डितों की शुष्क तर्क–जड़ता, समाज में श्रद्धा–भक्ति का लोप, नास्तिकता, ब्राह्मणों का धर्म–व्यवसाय यह सब देखकर उन्हें लगा कि लाखों आर्तजन उनका आह्वान कर रहे है।

इस प्रकार चैतन्य महाप्रभु का चिंतन जीवन एवं नारी से पृथक नहीं है। वे अपने शिष्य नित्यानंद को विवाह करने का आदेश देते है और साधु बनने के इच्छुक एक अतिथि को नारी के साथ गृहस्थ–जीवन अपनाने और उसकी श्रेष्ठता बतलाते हुए कहते हैं–

" तात, गृहत्याग में ही साधुता समाई हो।
वनचर मात्र तब साधु हुए समझो।
करके सुकर्म गृहधर्म पालो अपना। " 2

अतः कवि गुप्त के खण्डकाव्य 'विष्णुप्रिया' में वर्णित चैतन्य महाप्रभु आचरण और व्यवहार की दृष्टि से बाह्य स्वरूप में जहाँ वे पत्नी को त्यागकर निवृत्ति–मार्गी अवश्य प्रतीत होते है, वही चिंतन तथा विचारधारा की दृष्टि से वे गृहस्थ–जीवन तथा नारी के प्रति कभी भी कहीं भी अनास्था भाव प्रकट नहीं करते हैं।

राहुल–

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'यशोधरा' चम्पूकाव्य में वर्णित सिद्धार्थ गौतम एवं यशोधरा पुत्र राहुल काव्य का प्रमुख बाल–पुरुष पात्र है। कवि गुप्त ने उसमें

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया — पृ. सं. 41
2. वहीं, — पृ. सं. 87

वय–विकास के तीन चरणों को प्रस्तुत किया है। प्रारिम्भक अवस्था में 'राहुल मातृ–अनुकम्पा की अपेक्षा रखता हुआ अबोध शिशु है। "वियोगिनी यशोधरा के लिए वह संजीवनी के समान है, उसके लिए राहुल भव–सागर से पार लगाने वाली नाव के समान है। " 1

काव्य के द्वितीय चरण में राहुल चपल–चेष्टाओं से युक्त बालक के रूप में विकसित द्रष्टिगत होता है। वय–विकास के तृतीय चरण में राहुल को अपने पिता के गृह–त्याग तथा माता के उदासीन वीतरागी व्यवहार के सभी रहस्य स्पष्ट हो जाते हैं। इस रूप में एक ओर उसे अपनी मां के प्रति संवेदना और सहानुभूति है तो दूसरी ओर पिता के आगमन और मिलन की प्रतीक्षा है। वह अपने स्वदेश से और अपने लोगों से नाता तोड़कर जाने वाले पिता के विषय में यही तर्क करता है–

" अम्ब, क्या पिता ने यहीं जन्म नहीं पाया है ?
क्यों स्वदेश छोड़ परदेश उन्हें भाया है।
लाभ इससे क्या अम्ब अपनों को छोड़ के ?
बैठ जायें दूसरों से वे संबंध जोड़ के।" 2

संसार में माता के आंचल में ही बालक को उसकी समस्त दुनिया नज़र आती है। माता की गोद से बढ़कर बालक का कोई सहारा नहीं होता है। लेकिन जब बालक को अपनी माता दुःख में दिखाई दे तो सारा संसार उसे वीरान नज़र आता है। बालक राहुल भी अपनी माता के दुख को देखकर पिता सिद्धार्थ से मिलने की उत्सुकता में उन्हें पत्र भी लिखना चाहता है। वह किसी भी प्रकार उनका सामीप्य पाने का इच्छुक है परन्तु साथ ही माँ के वात्सल्य से पूर्ण तुष्ट हुआ वह यही कामना करता है कि –

" तेरी गोद में अम्ब, मैंने सब पाया है,
ब्रह्मा भी मिलेगा कल, आज मिली माया है। " 3

माता, नारी के उस रूप का नाम है जो स्वयं दुःख भोगकर अपनी संतान को सुख में देखना चाहती हैं। वह स्वयं गीले वस्त्रों में सोकर अपनी संतान को सुखें वस्त्रों में सुलाने वाली है। कवि गुप्त की यशोधरा भी हर कष्ट एवं विपत्ति को सहन करके पुत्र राहुल को सुखमय रखती है।

---

1. तू ही एक खिवैया, मेरी पड़ी भंवर में नैया।
   आ मेरी गोदी में आ जा, मैं हूँ दुखिया मैया।
   मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा — पृ. सं. 44
2. वहीं, — पृ. सं. 79
3. वहीं, — पृ. सं. 107

राहुल अपनी माता के इस व्यवहार से उसके दुःख का अनुमान नहीं लगा पाता हैं। वह अपने पिता तथागत–बुद्ध के आगमन की सूचना से उसकी बौद्धिकताभरी चिंतनपरक मानसिकता में क्षणिक उल्लास की निष्पत्ति होती है। पितृ–वात्सल्य–प्रेरित राहुल अपने पिता से मिलने को आकुल है, साथ ही माँ के व्यवहार के प्रति हतप्रभ–सा हो माँ से प्रश्न कर बैठता कहता है कि –

" भूलती है मुझको भी तू जिनके ध्यान में,
पाकर उन्हीं को छोड़ बैठी किस मान में।
कैसी यह आन–बान भीतर है मरती,
बाहर से फिर भी तू मिथ्या मान करती।" 1

प्रत्येक माता–पिता का सपना होता है कि उनकी संतान कर्तव्य–पथ पर अग्रसर हो। राहुल भी बड़ा होकर अपने माता–पिता की भावनाओं पर खरा उतरता है। कवि गुप्त ने राहुल में भावुकता तथा बौद्धिकता, आस्था एवं तर्क, संवदेना तथा चिंतन के विविध आयामों को यथा स्थान प्रकट किया है। इस प्रकार अपने माता–पिता का आज्ञाकारी पुत्र राहुल अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ अपने पिता तथागत के आदर्शों के लिए समर्पित यही कहता है –

" तात, पैतृक दाय दो, निज शील, सिखलाओं मुझे।
प्रणत हूँ मैं इन पदों में, मार्ग दिखलाओं मुझे,
असत् से सत् में, तिमिर से ज्योति में लाओं मुझे।
मृत्यु से तुम अमृत में हे पूज्य, पहुँचाओं मुझे। " 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने राहुल को एक सामान्य बालक के रूप में प्रकट करके उसमें नारी के स्वाभिमान, स्वत्व और आत्मबल को नव–स्फूर्ति देने वाले आदर्श बालक के रूप में मूर्तिमंत किया है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा पृ. सं. 104
2. वहीं, पृ. सं. 111

गौण पुरुष पात्रों में नारी चेतना

दशरथ –

समाज को व्यक्ति के सामाजिक–जीवन की पहली पाठशाला परिवार को माना जाता है। भारतीय सामाजिक–संस्कृति के आख्याता, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त सामाजिक–जीवन, गृहस्थ तथा परिवार के प्रति सजग कवि है। इसलिए उनके काव्यों में वर्णित गौण पात्रों में भी मानवीय संबंधों की ऊर्जा के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। यह स्थिति उनके सभी रामकाव्यगत पात्रों में है।

कवि गुप्त ने सूर्यकुल के राजा दशरथ का चित्रण एक मध्यवर्गीय परिवार में पिता के रूप में किया है। दशरथ का पितृ–वात्सल्य राम के साथ उनके चारों पुत्रों पर है। वे अपने रानी कैकेयी के प्रति अतिरिक्त प्रेम के व्यामोह में बंधे है। अपने दो वरदानों को याद करने पर "कैकेयी को निसंकोच मांगने एवं अपने वरदान के विषय में समस्त मांगने की कहकर अपने हृदय की निष्पक्षता का परिचय देते है। "1

राजा दशरथ द्वारा कैकेयी को वरदान देने एवं कैकेयी के कोप के अवसर पर उनकी निरीहता ही अधिक प्रकट होती है। वे नारी हृदय के सुकोमल, स्नेहपूर्ण, कोमल एवं सहज भावों को तो समझते हैं, लेकिन इन भावों के रूप में छिपे कैकेयी के कुटिल–व्यवहार को समझ नहीं पाते हैं और राज्य, प्राण, परिवार सब कुछ सत्य पर न्यौछावर करने को प्रस्तुत होकर अंत में कैकेयी की कुटिलता से घिरकर अपने को धिक्कारते हुए यहीं कहते हैं–

" जिसे चिन्तामणि–माला जान,
हृदय पर दिया प्रधान स्थान।
अन्त में लेकर यों विष–दन्त,
नागिनी निकली वह हा हन्त।" 2

नारी की मर्यादा एक शांत सरल बहती नदी की भॉति होती है। इसके विपरीत मर्यादाविहीन नारी उस नदी के भॉति होती है जो अपने किनारों को तोड़ती हुई विनाश

---

1. भूप ने कहा– ' न मारो बोल,
दिखाऊँ कहो हृदय को खोल ?
मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 31
2. वहीं, पृ. सं. 33

करके स्वयं का पानी गंदा करती है। कैकेयी के आचरण के प्रति भी राजा दशरथ का एक दमित आक्रोश सक्रिय हो उठता है लेकिन कैकेयी को अपनी अनुशासन रेखा में लाने का सामर्थ्य उनमें नहीं हैं। तब दशरथ कैकेयी को कोसते हुए किसी सहारे की आशा में यही कह उठते है।

" यदि मन्थरा न पहचान सकी,
तो क्यों कैकेयी जान सकी ?
कोई उससे जा कहे अभी–
ले तेरे कण्टक टले सभी। " 1

कवि गुप्त के राजा दशरथ स्वयं सत्य अथवा प्रतिज्ञा से विमुख नहीं होते, अपितु उनका सारा ध्यान राम को वन जाने से रोकने में हैं। दशरथ एक सामान्य गृहस्थ–परिवार के मुखिया की भांति सीता, उर्मिला, कौशल्या आदि नारियों के प्रति अपने कर्तव्य एवं सहानुभूति को समर्पित करने में भी पीछे नहीं रहना चाहते है। दशरथ अपनी ज्येष्ठ–वधू सीता के समक्ष अपने हृदय की वेदना एवं कठोरता के साथ सीता के मन की निर्मलता को इस प्रकार प्रकट करते हैं–

" नृप रोने लगे–'हाय! सीते, हम हैं कठोर अब भी जीते।
सहकर भी घोर कष्ट तन पर, आया न मैल तेरे मन पर।" 2

परिवार के मुखिया का प्रथम दायित्व यह होता है कि वह अपने सम्पूर्ण परिवार को संगठन में रखता है। दशरथ के चरित्र की एक परिवार–मुखिया के रूप में विशिष्ट उपलिब्ध यह है कि वे अपने संयुक्त परिवार को बिखरते हुए नहीं देख सकते और परिवार के सभी सदस्यों को अपने दायित्व का समुचित एवं न्यायोचित स्थान देना चाहते हैं। दशरथ कौशल्या की वेदना और उर्मिला के एकाकी जीवन के प्रति द्रवीभूत है। दशरथ एक ओर कौशल्या के प्रति अपराध–बोध से ग्रस्त है, तो दूसरी ओर उर्मिला के प्रति अपनी संवेदना को व्यक्त करते हुए कहते है –

" उर्मिला कहाँ हैं, हाय बहू, तू रघुकुल की असहाय बहू,
मैं ही अनर्थ का हेतु हुआ, रविकुल में सचमुच 'केतु' हुआ। " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ. सं. 107
2. वहीं, पृ. सं. 108
3. वहीं, पृ. सं. 101

इस प्रकार कवि गुप्त ने दशरथ को एक आदर्श राजा, नैतिक शासक, सत्यपथिक के साथ ही उनके शोकाकुल रूप में कवि ने वीरता, आदर्श, सत्य एवं धर्म–रक्षक के रूप में जीवन–व्यवहार की स्वाभाविक एवं सहज मानवीय संवेदनाओं को प्रमुखता से उद्‌घाटित किया है।

युयुत्सु –

कविवर मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में वर्णित पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सामाजिक एवं साहित्यिक दृष्टि से उपेक्षित पात्रों को साहित्यिक ध ारातल प्रदान किया है। कवि गुप्त ने 'जयभारत' महाकाव्य के पात्र युयुत्सु को नूतन जन्म दिया हैं। उन्होंने एक उपेक्षित पात्र को वाणी देते हुए असीम महत्व प्रदान किया हैं। कवि ने युयुत्सु के रूप में दलित और उपेक्षित वर्ग का बिम्ब प्रस्तुत करते हुए यह आभास दिया गया है कि " एक उपेक्षित और अबल प्रतीत होते हुए व्यक्ति की अन्तरात्मा का सत्य, प्रबल और समर्थ के मनोबल को भी तोड़ सकता है। "1

संसार में चारित्रिक धरातल व्यक्ति के जीवन को उत्कर्ष प्रदान करता हैं। युयुत्सु चारित्रिक–धरातल पर दासी–पुत्र होकर भी धृतराष्ट्र का राजपुत्र है। किंतु वह सौ कौरवों से भिन्न अपना अस्तित्व रखता है। उसे सत्यासत्य का बोध है, और सत्य के प्रति आग्रह करने का साहस भी है। किंतु मानसिक स्तर पर हीन–भावना एवं जाति–हीनता का आश्रय, यह पात्र राज–सुख से वंचित होने के कारण, विस्मत नहीं कर पाता है कि वह दासी पुत्र है। अतः युयुत्सु अपने को माँ के साथ स्वयं को, स्वयं से स्वाधीन नहीं मानता हुआ कहता है–

" तुमको पीछे परिताप न हो,
मुझको लेकर अपलाप न हो।
वह किसी रानी से हीन कहीं ,
स्वेच्छा से ही स्वाधीन नहीं।" 2

सामाजिक रूढ़ियों और परम्पराओं के कारण व्यक्ति कभी भी असाधारण और गौरवशाली नहीं हो सकता है। सामर्थवान उसका शोषण करते हैं, और शोषित होना उसकी नियति हैं। कवि

---

1. मैं कुछ करने के लिए तुला,
होगा मेरा विद्रोह खुला।
मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत पृ. सं. 247

2. वहीं, पृ. सं. 248

गुप्त ने युयुत्सु के माध्यम से वर्तमान जाति–प्रथा, छुआछूत, वर्ग–वैषम्य को बिम्बित किया है। उसकी चिंतनधारा में प्रगतिशीलता है। वह मनुष्य के कर्माधिकार तथा श्रम–शक्ति के महत्व को प्रतिष्ठित करने वाला सक्षम पात्र है। वह पसीने की कमाई को हाथ का मैल है, कहकर समझने का प्रयास करता है–

" धनियों के हाथ भले धन है,
पर जन के साथ स्वजीवन है।
पाता, जो स्वेद बहाता है,
धन तन का मैल कहाता है।" 1

कवि गुप्त ने युयुत्सु को दलित–वर्ग में के क्रांतिकारी तथा अपने अस्तित्व के प्रति सावचेत् पात्र के रूप में प्रकट किया है। वह नैतिक बल, सिद्धांत, निष्ठा और न्यायप्रियता के साथ नवीन चेतना का संचार करता है।

शुद्धोदन–

कविवर गुप्त ने अपने 'यशोधरा' चम्पूकाव्य में गौण परन्तु अत्यंत महत्वपूर्ण पात्र सिद्धार्थ के पिता, यशोधरा के ससुर तथा राहुल के दादा के रूप में शुद्धोधन की सृजना की है। शुद्धोदन अभिजात्य वर्ग के शिष्ट और सुसंस्कृत व्यक्ति है। शुद्धोदन वास्तव में शुद्ध धन के समान है। वे अपने पुत्र के वीतरागी स्वभाव से पूर्व परिचित होने के कारण उसका विवाह कर संसारिकता में बांधने के प्रयत्नों को निष्फल होते देख यही कहते हैं –

" मैंने उसके अर्थ यह रूपक रचा विशाल,
किन्तु भरी खाली गई, उलट गया वह थाल।
चला गया रे, चला गया, चला गया। "2

परिवार में ससुर, बहू का जैविक पिता न होकर वास्तविक पिता होता है। शुद्धोदन पुत्र–वियोग से उतने संतृप्त नहीं है, जितने पति–विहीन यशोधरा की दयनीय स्थिति से । कवि गुप्त ने

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : जयभारत — पृ. सं. 246
2. मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा — पृ. सं. 25

निस्सन्देह उन्हें आदर्श पिता के रूप में स्थापित किया हैं। उनके पितृ–वात्सल्य में यशोधरा भी समा जाती है। वे यशोधरा की प्रगति पुत्री के समान तथा उसे स्नेह कुलवधू के रूप में स्थापित करते हुए कहते हैं–

" तू है सती, मान्य रहे इच्छा तुझे पति की,
मैं हूँ पिता, चिन्ता मुझे पुत्री को प्रगति की। " 1

शुद्धोदन अपने समक्ष यशोधरा के असीम आत्मबल, सहिष्णुता तथा स्वाभिमान से अभिभूत होकर इतने व्यापक हो जाते है कि उनका पुत्र–स्नेह धूमिल हो जाता है। वे बहू यशोधरा के सदाचरण, कुलशीलता तथा उच्चशयता के प्रति पूर्ण स्नेह और श्रद्धा रखते हुए पुत्र–मोह को त्यागकर अंत में यही कहते हैं–

" बेटी, उठ, मैं भी तुझे छोड़ नहीं जाऊँगा,
तेरे अश्रु लेकर ही मुक्ति–मुक्ता छोड़ूँगा।
तेरे अर्थ ही तो मुझे उसकी अपेक्षा है,
गोपा–बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।" 2

इस प्रकार कवि गुप्त ने शुद्धोदन के माध्यम से नारी जाति के प्रति सम्मानजनक भाव से अपने श्रद्धा–सुमन अर्पित करते हुए, नारी के स्वाभिमान, स्वत्व और आत्मबल को मजबूती प्रदान की है।

अन्य पुरुष पात्रों में नारी चेतना

कल्लू–

संसार का अन्नदाता किसान को माना गया है। लेकिन आज हमारा देश कृषि–प्रधान देश न होकर कुर्सी–प्रधान देश हो गया है। आज देश में किसानों की दुर्दशा चरम पर है। एक ऐसी ही दुर्दशा की भेंट चढ़ा कृषक पुत्र कल्लू है। कवि गुप्त ने अपने 'किसान' खण्डकाव्य में कल्लू के जीवन का चित्रण किया है। कल्लू के साहस की बानगी यह

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा पृ. सं. 27
2. वहीं, पृ. सं. 95

है कि वह बालिका कुलवन्ती की रक्षार्थ तेंदुआ से भिड़ जाता है। वह कुलवन्ती के रूप में एक नारी की रक्षा हिंसक पशु से इस प्रकार करता है–

" करके फिर हुंकार मचा दी मारामार वहाँ मैंने,
सुध न मुझे भी रही कि कितने किये प्रहार वहाँ मैंने
लगे एक दो घाव मुझे भी किन्तु तेदुआ मार दिया। " 1

कवि गुप्त ने कल्लू के रूप में एक पूर्ण चेतनाशील मनुष्य को रूपायित किया है। वह माता–पिता की सेवा में रत्, पत्नी के प्रति प्रेम तथा कर्त्तव्य भाव से समर्पित सामाजिक दायित्वों तथा व्यवस्थाओं के प्रति अनुगृहीत मानवीय गुणों की प्रतिमूर्ति हैं। जीवन में प्रत्येक चरण में पीछे धकेले जाने पर भी वह हतोत्साहित नहीं होता है। जीवन–संघर्ष को मानों वह जीवन की स्वाभाविक व्यवस्था के रूप में स्वीकार करता है। इन परिस्थितियों में कल्लू की पथ–दृष्टा उसकी पत्नी कुलवन्ती ही बनती है। कल्लू अपने जीवन में पत्नी के योगदान को इस प्रकार स्मरण करता है –

" तू ही मेरी एक मात्र है सम्पदा,
दीप–शिखा–सी मार्ग दिखाती रह सदा।
था मैं भी सावेग उसे पकड़ा खड़ा। " 2

मातृभूमि का लगाव मानव को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करता है। कल्लू भी अपने देश में जी–तोड़ मेहनत करके भूखा तथा अभावग्रस्त रहने के कारण देश छोड़कर जाना चाहता है। परन्तु देश से दूर हो जाने पर मातृभूमि की स्मृति उसकी वेदना को कई गुना बढ़ा देती है। विदेश–प्रवासकाल में अपने देश की मिट्टी की सोंधी स्मृति उसे व्याकुल किए रहती है–

" अब भी गांधी–जैसे सुत की जननी भारत–माता,
तुझसे यह दुर्दृश्य निरन्तर कैसे देखा जाता।
देकर अन्न दूसरों को भी माँ तू पालन करती,
पर तेरी सन्तति उसके हित परदेशों में रहती। " 3

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : किसान पृ. सं. 18
2. वहीं पृ. सं. 34
3. वहीं पृ. सं. 42

अतः किसान के रूप में कल्लू एक परम पुरुषार्थी, उत्साही, कर्मठ, त्यागी, देशभक्त तथा विवेकशील व्यक्ति है। कवि ने कल्लू के चरित्र को कुलवन्ती जैसी आदर्श नारी के स्पर्श से चमकाया है।

अजित–

समाज में अनेक प्रकार की वृत्तियों वाले व्यक्ति रहते है। उनकी मनोवृत्तियां, परिस्थितियां और अपेक्षाएं भिन्न–भिन्न होती है। व्यक्ति इन्हीं स्थितियों और अपेक्षाओं से प्रेरित होकर अपराध करते हैं, और जब कानून तथा पुलिस के चक्र में फंस जाते है तो बंदी जीवन जीने पर विवश होते है। 'अजित' खण्डकाव्य में भी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने "अपने बंदी जीवन तथा वहाँ की स्मृतियों को चित्रित किया है। जिसमें कवि ने ईश्वर से मुक्ति तथा स्वच्छंद विचरण की प्रार्थना की है।" 1

अजित समाज के सामान्य मध्यमवर्गीय परिवार का आदर्शोन्मुख युवक है। उसकी जीवन–परिकल्पना सुकुमार, संवेदनापूर्ण और उदार है। वात्सल्यमय पिता का आज्ञाकारी तथा कुटुम्ब–हितैषी पुत्र और सरल पतिव्रता तथा त्यागमूर्ति पत्नी का पति अजित को परिस्थितियों की विषमताओं तथा सामाजिक कुटिलताओं का लक्ष्य बनाया जाता है। अजित नारी सम्मान तथा स्वयं के अस्तित्व की रक्षार्थ जेल जाते समय अपनी पत्नी को अकेली छोड़कर कारागार में आकर उसे अनुभव होता है कि पत्नी के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन वह नहीं कर पाया, अजित को इस अपराध–बोध का आभास करता है। वह आत्मग्लानि से वशीभूत होकर कह उठता है–

" गिरती अपनी ध्यानमूर्ति वह मैंने साधी
मैं औरों का नहीं, एक तेरा अपराधी।
अवश आज हूँ, मुझे क्षमा कर मेरी देवी,
समझ आज से मुझे सदा अपना पद–सेवी।" 2

---

1. प्रभो, मुक्ति दो हमें हाय, किस भांति कहें हम ?
बँधे गुणों से रहें, कहीं भी क्यों न बहे हम।
मैथिलीशरण गुप्त : अजित — पृ. सं. 07

2. वहीं, — पृ. सं. 21

एक समय बाद अजित जेल से रिहा हो जाता है। परन्तु ग्रामीण जनों की ईर्ष्या–द्वेषपरक प्रतिस्पर्द्धाएं और देश स्वातंत्र्य की उत्कृष्ट अभिलाषाएं उसे अपने इस निजत्व में स्थिर नहीं रहने देती है। अपने शत्रुओं से प्रतिशोध की भावना, देश को विदेशी–आक्रान्ताओं से देश को मुक्त कराने की चेतना तथा समाज के पद्दलित लोगों द्वारा नारी के रूप में पत्नी का अपमान करना आदि से अभिभूत होकर वह क्रान्तिकारी का रूप धारण कर लेता है। तब अजित जेल से मुक्त होने पर पिता तथा पत्नी उजियारी के अभाव में उनकी स्मृतियों में खोकर यहीं सोचता है–

" मेरी लक्ष्मी, चलूँ न क्यों मैं तेरे पीछे ?
पर वह बोला कौन अचानक मेरे पीछे–
'लल्लू, अब घर चलो रात' हो गई अँधेरी,
ले, उजियारी बहू रही यह चतरा, तेरी। "1

इस प्रकार कवि गुप्त ने 'अजित' जैसे क्रांतिकारी युवक के माध्यम से चिरकाल से बंदी भारत माता एवं शोषित, पीड़ित समाज तथा नारी के प्रति नवीन चेतना का संचार किया है। जिसमें अजित का चरित्र तथा व्यक्तित्व विशेष रूप से दृढ़ तथा अपने संकल्प के प्रति परिनिष्ठित होकर सहज रूप में उभरा है।

निष्कर्ष –

भारतीय समाज में नर एवं नारी के समान अधिकारों के अधिष्ठाता राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की विविधोन्मुखी काव्य–प्रतिभा जीवन और जगत् के नैसार्गिक तथा व्यावहारिक मूल्यों से सम्पृक्त होकर नवीन चेतना के साथ उद्घाटित हुई है। कवि गुप्त ने अपने काव्य में नारी–पात्रों की प्रमुखता के साथ पुरुषों के नारी–विषयक आदर्श अवधारणा को भी जीवन–भूमि प्रदान की है। उन्होंने अपने काव्य–साहित्य में नारी को नवीन चेतना, चरित्र उज्ज्वलता तथा दृढ़ता प्रदान करने में पुरुषों के योगदान को सहज स्वीकारा है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : अजित पृ. सं. 41

कवि गुप्त के पुरुष–पात्रों की नारी चेतना की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उन्होंने वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक के पुरुषों में महान महत्ता की उपेक्षा न करते हुए लघु तथा उपेक्षित पुरुष–पात्रों के माध्यम से भी नारी चेतना का संचार किया है। इन सभी पुरुष पात्रों ने अपने संक्रान्ति युग में भी नारी के मौलिक अधिकारों की रक्षा करते हुए एक सामाजिक स्वीकृति प्रदान की है।

इस प्रकार कवि गुप्त के काव्य–साहित्य में वर्णित पुरुष–पात्रों ने नारी को स्थान–स्थान पर संबल प्रदान किया है। अतः इस वास्तविकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है, कि उनके काव्य में वर्णित नारी चेतना के लिए पुरुषों को प्रेरक माना जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा।

सप्तम् – अध्याय

उपसंहार

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

मानव समाज की सभ्यता एवं विकास की मूलस्रोत रही नारी भारतवर्ष में प्राचीन युग से पर्याप्त सम्मान प्राप्त करती रही है। आदिम समाज के समस्त कार्यों में स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से भाग लेते थे। अतः दोनों में पारस्परिक सम्मान की भावना विद्यमान थी। नारी पुरुष के सामाजिक, धार्मिक आदि प्रत्येक कार्यों में समान रूप से भाग लेती थी। उसे शिक्षा का पूर्ण अवसर प्राप्त था। बाल विवाह नहीं होते थे। विधवा को नियोग तथा पुत्र प्राप्ति का अधिकार था वह दया, क्षमा, शांति का सौन्दर्यपूर्ण प्रतिमा के रूप में गौरवान्वित थी।

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील चेतना और मानवतावादी विचारधारा से आबद्ध नवजागरण के अग्रदूत यशस्वी एवं प्रतिष्ठित राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में जहाँ युगीन स्पन्दनाओं का घर्षण है, वहीं कुछ कर गुजरने की चाह के साथ नारी जागरण तथा नारी उत्थान की अनिवार्यता से वे प्रभावित एवं प्रेरित थे और कवि नारी की त्यागमयी मूर्ति, तपस्यावृत्ति, स्वार्थ–निरपेक्ष, धार्मिक आस्था, उदारता, सहिष्णुता तथा पुरुष के प्रति समर्पण भाव से विशेष अभिभूत थे। उनके समस्त काव्य में नारी चेतना और उसके मज़बूत धरातल एवं समाज में वजूद स्थापित करने से सम्पोषित होकर ही प्रखर हुई है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि गुप्त के काव्य में चित्रित नारी चेतना सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विविध आयामों को समेटकर प्रवाहित हुई हैं। नारी चेतना का यह फैलाव समाज के सम्पूर्ण परिवेश से जुड़ा हुआ है। समाज में नारी माता, पत्नी, भगिनी, पुत्री, सखी, सेविका, परिचारिका, तपस्विनी आदि अनेकानेक रूप में सम्पूर्ण समाज का नेतृत्व कर उसे नई दिशा प्रदान कर रही है। भारतीय समाज में नारी से पृथक होकर किसी भी सामाजिक संरचना की कल्पना नहीं की जा सकती है। वह व्यक्ति एवं समाज के बीच की एक मर्यादित इकाई है। वह परिवार की संरचना में विश्वास कर सामाजिक इकाई के रूप में समाज को मजबूती प्रदान करती है।

कवि गुप्त की नारी एकल परिवार की नहीं संयुक्त परिवार की अधिष्ठात्री है। आज नारी जहाँ अपने व्यक्तित्व के अस्तित्व हेतु संघर्ष कर रही है, वहाँ उसे एक

तरफ समाज की रूढ़ परम्पराओं का सामना करना पड़ रहा है, तो दूसरी तरफ उसके सामने कई नवीन समस्याऐं उभर कर सामने आ रही हैं। इन समस्याओं का कारण समाज की रूढ़ियों के बँधन है। रूढ़िगत बंधनों के कारण पारिवारिक सीमाओं में रहते हुए नारी को परम्परागत वर्जनाओं से मुक्ति हेतु प्रयास करना पड़ रहा है। कवि गुप्त ने यशोधरा चम्पू काव्य में अपने दुःख को यशोधरा परम्परानुसार स्वयं ही वहन करती है। वह किसी से भी नहीं बताना चाहती है कि नारी के मरण में भी परम्परा व रूढ़ि अपना स्थान रखती हैं।

नारी का समाज में शोषण सदियों से हो रहा है उसके शोषण की समस्या सदियों पुरानी है। वह सदैव ही पुरुषों की वासना और आततायीय का शिकार रही है। आज समाज में उसके शोषण के कई आयाम दिखाई देते हैं। जिसमें स्त्री–पुरुष के भेद, शारीरिक शोषण, यौन शोषण आदि हैं। कविवर गुप्त अपने काव्य में नारी पर होने वाले अत्याचार, अनाचार, मारपीट, प्रताड़ना एवं शोषण का तीव्र विरोध करते हुए समतामूलक समाज की स्थापना पर बल देते हुए लिखते हैं –

''बनें कूप मंडूक निरे, रहो घरों में ही न घिरे,
आओ अब बाहर आओ, ममता में समता लाओ।''

भारतीय मनीषियों ने कार्य व्यापारों की प्राप्ति हेतु धन की आवश्यकता महसूस की तथा चारों पुरुषार्थों में 'अर्थ' को द्वितीय स्थान पर इसलिए रखा ताकि इसका अनुचित संग्रह और दुरुपयोग न हो। धन को समाज कल्याण के कार्यों में लगाना ही उचित जान पड़ता था। वर्तमान में भौतिक वस्तुओं की चकाचौंध ने 'अर्थ' को आज धर्म, काम, मोक्ष सभी तत्त्वों में प्रमुख बना दिया। संसार के सम्पूर्ण क्रिया–कलाप 'अर्थ' पर ही आधारित हैं। वर्तमान में अर्थहीन व्यक्ति का समाज में कोई स्थान नहीं है।

लेकिन संसार में जब 'अर्थ' सभी पहलुओं को निर्धारित करने वाला केन्द्र बिन्दु बन जाये तो उसके उपार्जन का भी बड़ा प्रश्न बन जाता है। अनुचित तरीकों एवं सरलता से प्राप्त धन मनष्य की मनुष्यता को भी नष्ट करने वाला होता है। 'नहुष' खण्डकाव्य में उर्वशी का मानना है कि धन का प्रभाव पृथ्वीलोक पर अनैतिकता एवं दुराचरण को बढ़ाने वाला है।

वर्तमान आर्थिक परिदृश्य ने मानव जीवन को बदल दिया है। समकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था आदर्श अर्थव्यवस्था नहीं कहला सकती, क्योंकि समाज में संसाधनों का वितरण असमान है सरकारी भण्डारण गृहों की स्थिति में पहले और अब में कोई सुधार नहीं

हुआ। कारण एक ओर तो अन्न के भण्डार भरे पड़े हैं जिनमें अनाज सड़ रहा है, तो दूसरी ओर मनुष्य को दो जून की रोटी नसीब नहीं हो रही है यह कहाँ का अर्थोचित न्याय है ?

हमारे देश की दो–तिहाई जनता गाँवों में निवास करती है जहाँ व्यक्ति को मेहनत करके अपनी आजीविका चलानी पड़ती है तो दूसरी ओर व्यापारी वर्ग शूदखोरी एवं मजदूरों का शोषण करके धन जमा करता है जिससे निम्न वर्ग की कई पीढ़ियाँ कर्ज में डूब जाती हैं। कवि गुप्त के 'पृथ्वीपुत्र' खण्डकाव्य में मार्क्स की पत्नी जैनी श्रमिकों की मेहनत के बदले मिलने वाले पारिश्रमिक की न्यूनता को देखकर आर्थिक व्यवस्था को ललकार उठती है कि –

" किन्तु श्रमिकों को फल मिलता है कितना,
पूंजीपतियों का जूठन भी नहीं जितना ''।

वर्तमान समय में अर्थ को अधिक महत्त्व दिया जाता है व्यक्ति को नही। आज व्यक्ति की पहचान गुणों से नहीं आर्थिक सम्पन्नता से आंकी जाती है। कवि गुप्त ने भारतीयों को भारत माता के सच्चे सपूत मानते हुए परिश्रम करने का संदेश दिया। भारतीय संविधान में महिलाओं को आर्थिक अधिकार दिये उनमें पिता की सम्पत्ति में अधिकार 2005 से लागू हुआ वहीं स्त्रीधन का अधिकार, पति की सम्पत्ति में अधिकार देकर महिलाओं की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया है।

नर नारी प्रकृति की दो अनमोल धरोहर हैं, दोनों का समाज से गहरा संबंध है। समाज और राजनीति में भी अटूट संबंध हैं। नारी द्वारा ही समाज एवं शासन के प्रत्येक स्तर पर अपना योगदान निर्धारित किया जाता है यह राजनीतिक चेतना वर्तमान समय में स्पष्ट देखी जा सकती है। 'सैरेन्ध्री' खण्डकाव्य की नायिका शासक वर्ग को चेतावनी देते हुए यह पूछ बैठती है कि –

'' तुममें यदि सामर्थ्य नहीं है अब शासन का,
ो क्यों करते नहीं त्याग तुम राजासन का। ''

वर्तमान समय में भारत देश में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के समक्ष आतंकवाद एक चुनौती बनकर उभर रहा है। कवि गुप्त संगठन शक्ति द्वारा ही इस कलयुगीन दैत्य की चुनौती को समूल नष्ट करने का संदेश देते हैं। वे परिवेश में घटित होने वाली घटनाओं से रूबरू होते हुए एक ओर शासक वर्ग को अपने कर्त्तव्य याद दिलाते हैं, वही दूसरी ओर प्रजा

को भी अपने कार्यों के बारे में बतलाने से नहीं चूकते हैं।

प्रजा को धारण करने वाला धर्म है, जो धारणा शक्ति से युक्त है। धर्म वह नियम है जो आत्मा को ऊपर उठाकर परमात्मा के साथ सारुप्य स्थापित्य करने का मार्ग प्रशस्त करते हुए मोक्षत्व की ओर ले जाता है। धर्म ही ऐसी अदृश्य शक्ति है जिसका प्रभाव भारतीय संस्कृति पर ही नहीं, अपितु विश्व संस्कृति पर भी रहा हैं। इसका मूल आधार विश्वास, श्रृद्धा एवं पवित्रता है और यही मानव जाति के कल्याण हेतु निर्मित हुआ है।

भारतीय नारी ने अपने संस्कृति के अनुरूप आचरण करते हुए पुरुषों के कदम से कदम मिलाकर साथ चली। कहीं–कहीं पर पुरुषों से बढ़–चढ़कर कार्य भी किया, तभी तो रमा, उमा, सरस्वती आदि देवियों के त्याग की प्रतिमूर्ति माता सीता को मानकर वे उनकी सेवा में प्रस्तुत हैं। कवि गुप्त ने अपने काव्य में लक्ष्मी और सीता जैसी गुणवान माताओं के पदचिह्नों का अनुसरण करके समाज को उन्नति की ओर अग्रसर किया है। दूसरी ओर इनके आचरणों के विपरीत जाने वाली नारी को समाज के लिए धातक माना है।

मानव समाज धर्म के बिना पंगु माना जाता है। मानव गलती को स्वीकार कर ले तो उसे क्षमा किया जा सकता है। माता कैकेयी भी 'साकेत' महाकाव्य में सहज ही आत्म स्वीकार कर कह उठती है– अपराधीन हूँ तात तुम्हारी मैया। ''

कवि गुप्त की नारी लज्जा, शील, संयम, पतिव्रताधर्म तोड़ने वालों के विपरीत खड़ी है चाहे वह स्वयं का भाई व पति ही क्यों न हो तभी तो सैरन्ध्री के पतिधर्म को तोड़ने वाले कीचक को उसकी बहन सुकीर्ति चेतावनी देते हुए कहती है कि ऐसे अधर्मी की जीवन में हार निश्चय है।

सृष्टि में नारी ही वह शक्ति है जब–जब नर ने धर्म के विपरीत आचरण किया तब उसने चण्डिका बनकर उसका विनाश किया है। इसके विपरीत देवों के समान मर्यादा में रहने वालों की ''तू हम सबकी शक्ति तुझे है बारम्बार प्रणाम'' कहकर कृतकृत हुए हैं। स्त्री–पुरुष दोनों को समान रूप से धार्मिक मान्यताओं को अपनाना होगा तभी समाज का मर्यादित विकास संभव होगा। भारतीय संस्कृति में नारी की आजादी की सीमा निर्धारित है। परिजनों के अनुकूल चलकर वह सद्गृहिणी और इसके विपरीत आचरण वाली वंशव्याधिनी कहलाती है।

नारी की इन्हीं बदलती भूमिका को स्वीकारते हुए मुझे यह कहने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं है कि नारी कमजोर है या शक्तिविहीन। बल्कि आज नारी पूरी शक्ति, सामर्थ्य के साथ जीवन संघर्ष करने को तत्पर है। यह और जुदा बात है कि उस पर अधिकार के साथ कर्त्तव्य की डोर से उसे बांधित किया गया है तथापि नारी अपनी सहृदयता से इसे स्वीकार कर रही है। कवि गुप्त के महाकाव्यों की नारियाँ कौशल्या, सुमित्रा, सीता, उर्मिला, गान्धारी, कुंती, द्रौपदी अपनी हृदय की विशालता का परिचय देती हैं।

भारतीय संस्कृति में त्याग और परोपकार मानवीय गुण माने गये हैं 'साकेत' की उर्मिला में त्याग और परोपकार का विराट रूप देखने को मिलता है। कवि गुप्त उर्मिला के माध्यम से त्याग, तपस्या, तितिक्षा, स्वार्थनिरपेक्षता, उदारता, सहिष्णुता तथा पुरुष जाति के प्रति समर्पण का दिग्दर्शन कराते हैं। उर्मिला अपने कर्त्तव्य के साथ स्वयं में ही नहीं, अपितु लक्ष्मण के माध्यम से आत्म चेतना और नव आलोक की सृष्टि का संदेश देती हुई आधुनिक युग में समाज में भ्रातृत्व भावना को बलवती करती है।

कुशल मातृत्व एवं उदारता की प्रतिमूर्ति कौशल्या वीर क्षत्राणी अत्याचार एवं अनाचार से कोसों दूर रहकर त्याग का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करती है। उनका त्याग और स्वाभिमान आत्मगौरव से परिपूर्ण है। वह एक ऐसी नारी–पात्र है, जो राजधर्म और कर्त्तव्यधर्म को भली भाँति निभाती हुई भावी पीढ़ी के प्रतीक लक्ष्मण को निडरता का पाठ पढ़ाती है। वहीं सुमिंत्रा स्वार्थरहित, उदार, तटस्थ तथा आदर्शोन्मुख नारी के रूप में उभर कर सामने आई है। सीता ने स्वावलम्बन वृत्ति की श्रेष्ठा के साथ भील किरात बालाओं को साथ लेकर सामाजिक समरसता का संदश दिया है।

कवि गुप्त के 'साकेत' महाकाव्य की नारी परम्परागत होकर भी हमेशा मानव जीवन की मुख्य प्रेरक–शक्ति रही है। इसमें स्त्री, पुत्री, पत्नी और माता आदि विभिन्न रूपों में नारी के व्यक्तित्व, नव आदर्श एवं नूतन मूल्यों का उद्घोष हुआ है। 'जयभारत' महाकाव्य की द्रौपदी के चरित्र की सद्वृत्तियों में नारी–तेज, अस्मिता, स्वाभिमान आदि को विशेष रूप से लक्षित करते हुए उसके संघर्षमय जीवन को आलोकित किया है। पाँच पाण्डवों के साथ जीवन से अंत तक निर्वहन करना, इससे बढ़कर जीवन में और कौनसा संघर्ष हो सकता है ? 'वन–वैभव' की सुभद्रा सहनशील, त्याग, पतिपरायणता के साथ परिवार, कुटुम्ब एवं गृहस्थ जीवन का दायित्व स्वयं पर लेकर पाण्डवों को हिमालय जाने के लिए मुक्त कर देती है। उसमें

नारी के कर्त्तव्यबोध, त्याग और परोपकार की पराकाष्ठा देखते ही बनती है।

'जयभारत' की उत्तरा भी वीर बालिका क्षत्राणी है। पति की रण क्षेत्र में मृत्यु हो जाने पर भी जीवन की श्रेष्ठा पति की वीरगति में ही मानती है। भानूमती आर्य संस्कृति की रक्षा के साथ मानव–मूल्यों की स्थापना करती है और रावण पत्नी मन्दोदरी की भाँति अपने पति की पथ–दृष्टा बनती है। गान्धारी अपने पुत्र कौरवों में मानव मूल्यों का संचार करना चाहती है वह अपने पुत्रों के अहंकार, कठोरता एवं कर्कश्ता के भाव को त्याग कर नम्रता धारण करवाना चाहती है।

गान्धारी विवेकशील होने के साथ ही तटस्थ नारी भी है। वह सत्य के मार्ग पर चलने वाले पाण्डवों की प्रशंसा करते हुए दुर्योधन की आलोचना करने से भी नहीं चूकती है। वह अपने पुत्रों की मानवीय दुर्बलताओं को देखकर आजीवन लज्जित रहती है। कुन्ती उदारता, साहस, त्याग, आत्मविश्वास, सहिष्णु, पुत्राभिमान एवं वात्सल्य की प्रतिमूर्ति है, वहीं हिडिम्बा गांधीवादी अहिंसात्मक रीति–नीतियों की अवधारक। 'शक्ति' खण्डकाव्य में स्थापित दुर्गा–शक्ति असत्य पर सत्य, पाप पर पुण्य और अकर्मण्यता पर कर्म की प्रतीक होने के साथ ही वर्तमान जीवन में अत्याचार का विरोध कर मानव जीवन से उसका अंत करना शक्ति का मुख्य उद्देश्य है।

नारी की उदारता, व्यापकता और जीवनोत्सर्ग का विराट समन्वयवादी व मानवतावादी जयघोष का स्वर 'अजित' खण्डकाव्य की जयिनी में देखते ही बनता है। आलोच्य काव्य में कवि ने अहिंसा धर्म को अपनाते हुए मर्यादित हिंसा अपनानें का आह्वान किया है। नहुष की शची विवकशील, मर्मज्ञ तथा पतिपरायणा नारी है, वह पत्नी समर्पण में ही स्त्री की सार्थकता मानती है। शराब–व्यसन आदि सामाजिक बुराइयों से मानव को सदैव बचाना चाहती है। साथ ही वह शराब के दुष्परिणामों को भी रेखांकित करती है। 'उर्वशी स्वर्ग की अप्सरा होकर भी मानव को संयमी होने का संदेश देती है और उसका यह संदेश प्रासंगिक एवं अमूल्य माना गया है।

मत्स्यगंधा आधुनिक संदर्भों से युक्त नारी का प्रतीक होते हुए भी शील, करुणा, लज्जा, पतिव्रतधर्म का पालन करने वाली है। वहीं सत्यवती वर्गभेद एवं वर्णभेद से चिन्तित है। सुदेष्णा शासक एवं वैभवशाली होते हुए भी नारी अधिकारों की संरक्षिता, मानव

मूल्यों की संवाहिका बनकर पराधीन भावों एवं धर्मच्युत तथा साँस्कृतिक दृष्टि से पराभूत नारी समाज में संजीवनी शक्ति का संचार करती है। कवि गुप्त की नारियाँ कर्म को जीवन की सार्थकता मानती है। पुरुष और पौरुष की अहम् को तोड़ने में ये नारी पात्र सरलता से प्रहार करते हैं।

'पृथ्वीपुत्र' में मनुष्य को मातृभूमि के रूप में नारी निरन्तर कर्मशील होने का संदेश देती है। वर्तमान समय की युगीन समस्या युद्ध की विभीषिका, युद्ध के परिणामों की भयंकरता का चित्र 'युद्ध' खण्डकाव्य में खींचा है। एक पीढ़ी ही नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ियाँ भी युद्ध के परिणामों को झेलती है। हिरोशिमा और नागासाकी या भोपाल गैस काण्ड की त्रासदी मानव जाति के लिए अभिशाप बन गई है।

'रत्नावली' नारी जीवन की करुणा, स्वाभिमान और पतिव्रता भावना का आलोकित चित्र उपस्थित करती है। वह आत्मनिवेदन और आत्मग्लानि की द्विधात्मक धारा के बीच वेदना सहती हुई पुरुष के रूप में तुलसी की प्रेरक–शक्ति बनकर अपनी उपेक्षा से उन्हें जीवन और जगत् की चरम ऊँचाइयों पर ले जाती है।

'अर्जन और विसर्जन' की वीरांगनाएँ सर्वस्व समर्पण के साथ आन–वान–शान पर मर मिटने को तत्पर है। 'गुरुकुल' खण्डकाव्य शिक्षा के महत्त्व को स्थापित करता है वहीं अशिक्षा से होने वाले नुकसान से मानव जाति को आगाह करता है। 'किसान' खण्डकाव्य के माध्यम से देश में शोषक और शोषित के मध्य बढ़ते वैषम्य को दूर कर भूदान आन्दोलन की उपादेयता स्थापित कर समानाधिकारों वाले समाज की संरचना पर बल दिया है।

'रंग में भंग' की हाडा रानी संकल्प–शक्ति की प्रतिमूर्ति है। रानक दे स्वाभिमान एवं सम्मान की भावना से परिपूर्ण है वहीं मीलन दे परम्परागत रूढ़ियों से मुक्त नारी है। इउडोसिया, त्याग, कर्त्तव्य, आत्मगौरव, धर्मनिष्ठा एवं शुद्ध सात्त्विक प्रेमादर्श की प्रतिनिधि पात्र हैं। अफ्रीका की मूर जाति की रानी काहिना स्वतन्त्रता के लिए त्याग भावना एवं चारित्रित उत्कर्ष की मिसाल बनती है।

लेकिन आज नारी ने परिवार एवं समाज के बंधनों को तोड़ने का साहस बटोरा है, उसका जीवंत उदाहरण राधा के इन शब्दों में स्वतः मिल जाता है। राधा आभूषण के बंधन को समाज का बंधन समझती है। तभी तो वह सहज ही कह उठती है– ''फेंक दिये हैं मैंने सौ–सौ रत्नाभूषण रम्य नितांत।''

'विरहिणी व्रजांगना' की राधा स्वक्लेश सहकर परदुःखकातरता का भाव रखती है। उनके 'मेघनाद वध' का मूल उद्देश्य अहंकार रहित समाज की स्थापना करना रहा है। पुरुष अपने दंभ के वशीभूत हो नारी के स्वाभिमान पर प्रहार करता है तो उसका दुष्परिणाम उसे तो भोगना ही पड़ता है साथ ही आने वाली पीढ़ियाँ भी इस दंश को झेलती हैं। 'स्वप्नवासवदत्ता' में वासवदत्ता त्याग, बलिदान, परोपकार, समर्पण तथा उदारता की प्रतिमूर्ति होने के साथ ही नारी आदर्श का जीवन्त दस्तावेज है।

पुरुषों के भक्ति (सिद्धि) मार्ग में नारी बाँधक बनती है, पुरुष समाज के इस पूर्वाग्रह को कवि गुप्त ने 'यशोधरा' चम्पूकाव्य में तोड़ा है। यशोधरा एक ऐसी भारतीय नारी का प्रतीक है, जो अपने अस्तित्व को नगण्य बनाकर लोक जीवन तथा समाज को प्रेरणा एवं चेतना प्रदान करती हुई अपनी अस्मिता तथा गौरव का उद्घोष करती है साथ ही भारतीय नारी के शाश्वत मूल्यों को चित्रित करती है। यशोधरा पुरुष की अहम् एवं अविश्वासी धारणा को चूर–चूर करते हुए कह उठती है–

''सिद्धि हेतु गये स्वामी, यह गौरव की बात,
पर चोरी–चोरी गये , यही बड़ा व्याघात।''

खण्डकाव्यों के पुरुष–पात्र इतिहास प्रसिद्ध आदर्श, कर्मठ, वीर, बुद्धिमान, त्याग, दूरदर्शिता एवं सम्मान के प्रेरक रहे हैं। महाकाव्यों के अधिकांश पुरुष–पात्र दंभ, अहम्, स्वार्थ के वशीभूत होकर भी, अंत में नारी के सम्मान एवं गरिमा की रक्षा करने को तत्पर रहे हैं। युधिष्ठिर जयभारत का ज्येष्ठ पुरुष होने के नाते उदारता एवं आदर्श से युक्त होते हुए भी कीचक द्वारा द्रौपदी का अपमान करने पर उग्र हो उठता है। भीम अपनी पत्नी द्रौपदी की रक्षा में तत्पर रहकर किसी भी संकट के निवारण में अपने को समर्पित रखता है।

'सिद्धराज' का जगदेव अपनी पत्नी की रक्षा को ही जीवन का उद्देश्य मानता है। 'किसान' का कल्लू नारी की प्रेरणा एवं उसके सम्मान के प्रति स्वयं के जीवन को समर्पित कर देता है। कुणाल विश्वबन्धुत्व की बात करता है तो गांधीवादी सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए अम्बेड़कर को शोषित, दलित, निम्नवर्गीय तथा उत्पीड़ित मानवता का सच्चा सेवक घोषित करते हैं। युयुत्सु के माध्यम से वर्तमान जाति प्रथा, वर्ग वैषम्य, सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करते हैं। कहा जा सकता है कि कवि गुप्त के काव्य में चित्रित सभी पुरुष पात्रों ने संक्रान्ति युग में नारी के मौलिक अधिकारों की रक्षा का दायित्व निभाया है।

प्रकारान्तर रूप से कहा जा सकता है कि कवि मैथिलीशरण गुप्त के नारी–पात्र संयमित, संतुलित, मितभाषी, कर्मशील, आत्मकेन्द्रित, स्वमर्यादित, संयमी, विवेकशील, बोलने से पूर्व चिंतन मनन करने वाले, बदलते परिवेश में स्वयं को स्थापित करने वाली पीढ़ी के सूत्रधार का प्रथम सोपान बनकर कण्टकाकीर्ण मार्ग को पशस्त करते हैं।

सम्पूर्ण मानव जाति का दायित्व स्त्री की नूतन चेतना का पक्षधर रहा है। नारी की चेतना पुरुष के सोये हुए भाग्य को ही नहीं जगाती अपितु उसे आलोकित भी करती है। दाम्पत्य जीवन में प्रेम की पराकाष्ठा में लक्ष्मण उर्मिलामय हो सहज ही कह उठते है– ''किन्तु मैं भी तुम्हारा दास हूँ। '' वहीं उर्मिला लक्ष्मण का साह्चर्य चाहती है और कंधे से कंधा मिलाकर जीवन रूपी गृहस्थी को निपुणता के साथ चलाने की आकांक्षिणी है।

कवि गुप्त की नारी सैरन्ध्री सामंती विलासिता पर चोंट करती है और अपने अस्तित्व को पहचानते हुए घर, परिवार की लक्ष्मण रेखा को पार कर पुरुष कार्य क्षेत्रों में समानता के साथ पदार्पण करती हुई आत्म निर्भरता की बात यों कहती है – 'उनका सा उद्योग करो, किन्तु भोग में योग भरो।'

निःसंदेह रूप से कहा जा सकता है कि महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, अनुदित काव्यों एवं चम्पूकाव्यों में नारी विषयक चेतना को समाज के समक्ष लाकर नारी की अस्मिता उसका त्याग, तपस्या, तितिक्षा के भावों को उजागर करते हुए सम्पूर्ण मानव जाति के विकास हेतु उसका अध्ययन करना मेरा अभीष्ट प्रयोजन रहा है।

ग्रंथ – सूची

मूल ग्रंथ–सूची

– रंग में भंग – साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1910
– जयद्रथ–वध – साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1910
– पद्य–प्रबन्ध – साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1912
– शकुन्तला – साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1914
– किसान – साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1917
– सैरन्ध्री – साहित्य प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1919
– मंगलघट – साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1924
– अनघ – साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1925
– पंचवटी – साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1925
– वन–वैभव – साहित्य प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1927
– वक–संहार – साहित्य प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1927
– विकट–भट – साहित्य प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1928
– शक्ति – साहित्य प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1928
– गुरुकुल – साहित्य प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1929
– यशोधरा – रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा, प्र.सं. 1932
– साकेत – साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1932
– द्वापर – साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1936
– सिद्धराज – साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1936
– नहुष – साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1940
– अर्जन और विसर्जन – साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1942
– कुणाल गीत – साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1942
– काबा और कर्बला – साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1943
– अजित – साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1946
– दिवोदास – साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1950
– पृथ्वीपुत्र – साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1950

–	जय भारत	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1952
–	युद्ध	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1955
–	अंजलि और अर्घ्य	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1957
–	प्रदक्षिणा	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1957
–	विष्णुप्रिया	–	साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1957
–	हिडिम्बा	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1957
–	रत्नावली	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1960
–	लीला	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, प्र.सं. 1960
–	तिलोत्तमा	–	साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, प्र.सं. 1985
–	गुरु तेगबहादुर	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, सन् 2001
–	विरहिणी व्रजांगना	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, सन् 2003
–	स्वदेश–संगीत	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, सन् 2004
–	पत्रावली	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, वि. सं. 1989
–	राजा–प्रजा	–	साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, वि.सं. 2013
–	वैतालिक	–	साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, वि.सं. 2028
–	हिन्दू	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, वि. सं. 2029
–	जय भारत	–	साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, वि. सं. 2033
–	भारत–भारती	–	साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, वि.सं. 2040

उपजीव्य ग्रंथ–सूची

–	अज्ञेय	–	चिंता
–	अनीता नायर	–	प्रसाद के कथा साहित्य में नारी चेतना
–	डॉ. अर्चना शेखावत	–	समकालीन हिन्दी महिला कहानीकारों की कहानियों में नारी चेतना
–	डॉ. आशारानी व्होरा	–	भारत की प्रथम महिलाएँ
–	डॉ. इन्द्रराज सिंह	–	नारी और त्याग
–	डॉ. कमलेश कटारिया	–	नारी जीवन वैदिककाल से आज तक
–	कालिदास	–	अभिज्ञानशाकुन्तलम्
–	डॉ. कृष्ण देव शर्मा	–	भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र
–	डॉ. कृष्णा कुमारी	–	मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतना
–	डॉ. के. एस. मणि	–	मैथिलीशरण गुप्त और वल्लत्तोल के काव्यों में सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना
–	डॉ. गणपत राम शर्मा	–	अधिगम शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक आधार
–	डॉ. जगदीश श्रीवास्तव	–	समाज दर्शन की भूमिका
–	जयशंकर प्रसाद	–	कामायनी
–	डॉ. टी. रवीन्द्रन	–	आधुनिक हिन्दी काव्य में दलित वर्ग
–	डॉ. डी. डी. बसु	–	भारतीय संविधान
–	तुलसीदास	–	रामचरितमानस
–	डॉ. नगीन चन्द्र सहगल	–	साकेत : एक अध्ययन
–	डॉ. नगेन्द्र	–	साकेत एक अध्ययन
–	डॉ. नगेन्द्र	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास
–	डॉ. नामवर सिंह	–	आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृतियाँ
–	डॉ. नीलिमा शर्मा	–	स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी कहानी में नारी चरित्र की अवधारणा

–	पी.बी.काणे	–	धर्मशास्त्र का इतिहास
–	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	–	हम विषपायी जनम के
–	डॉ. भगीरथ मिश्र	–	भारतीय काव्यशास्त्र
–	डॉ. मंजू अग्रवाल	–	मैथिलीशरण गुप्त की काव्यकला
–	महर्षि मनु	–	मनुस्मृति
–	महर्षि वाल्मीकि	–	रामायण
–	डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा	–	मध्यकालीन भारतीय साहित्यिक कवि
–	डॉ. माधुरी खोंसला	–	मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में पात्रों की परिकल्पना
–	डॉ. मुकुल रानी सिंह	–	प्रसाद के नाटकों में नारी–पात्र
–	डॉ. रमेश कुमार त्रिपाठी	–	समकालीन हिन्दी पत्रकारिता में नारी संदर्भ
–	डॉ. रश्मि शर्मा	–	साकेत का विशिष्ट अध्ययन
–	रामचन्द्र शुक्ल	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास
–	रामधारी सिंह दिनकर	–	उर्वशी
–	रामधारी सिंह दिनकर	–	रश्मिरथी
–	डॉ. रामानंद तिवारी	–	अहल्या
–	डॉ. रामानन्द तिवारी	–	उर्वशी
–	रामेश्वर प्रसाद मीना	–	राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त
–	रामविलास शर्मा	–	निराला की साहित्य साधना
–	डॉ. वंदना जादौन	–	शिक्षा मनोविज्ञान के आधार
–	डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल	–	कला और संस्कृति
–	डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज	–	भारती भारती : एक अध्ययन
–	डॉ. सत्येन्द्र	–	गुप्त की काव्यकला
–	डॉ. सरला दुआ	–	आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी
–	डॉ. सुमन शुक्ला	–	ऐतिहासिक महिलाएँ
–	सुमित्रानंदन पंत	–	ग्राम्या
–	सुषमा जैमन	–	भारतीय समाज और महिलाएँ

- डॉ. सुषमा शुक्ला – वैदिक वाङ्मय में नारी
- डॉ. सौ.जे.एम. देसाई – आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी
- हरिकृष्ण 'प्रेमी' – आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि

हिन्दी कोश–ग्रंथ

- द्वारिका प्रसाद शर्मा – संस्कृत–शब्दार्थ–कौस्तुम्
- रामचन्द्र वर्मा – मानव – हिन्दी शब्दकोश
- शिवराम आप्टे – संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश
- डॉ. हरदेश बाहरी – वृहद हिन्दी शब्दकोश

अंग्रेजी कोश–ग्रंथ

- Dr. R.K. Kapoor – Oxford Hindi-English Dictionary

पत्र–पत्रिकाएँ

- दैनिक नवज्योति – जयपुर
- दैनिक भास्कर – जयपुर
- राजस्थान पत्रिका – कोटा/जयपुर संस्करण
- मधुमती – उदयपुर
- साहित्य अमृत – दिल्ली

शोध पेपर

Year : 7
Issue : 25
July-Sept. 2017
www.chintanresearchjournal.com
Impact factor : 2.645

ISSN : 2249-2976
Price : ₹500

(Art, Humanity, Social Science, Commerce, Law, Management & Science Subjects)
(Indexed & Listed at : Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest. U.S.A.)
(Indexed & Listed at : Copernicus, Poland & Research Bib, Japan)
(Indexed & Listed at : Indian Journal Index (IJINDEX))
(UGC Approved Sl. No. 41241)

(International Refereed)

Pramāna

Research Journal

Editor-in-Chief
Acharya (Dr.) Shilak Ram

Acharya Academy
Bharat
ISO 9001 : 2008

website : www.chintanresearchjournal.com
Impact Factor : 2.645

ISSN : 2249-2976

Pramāna

Research Journal

(Art, Literature, Humanity, Social Science, Commerce, Management, Law & Science Subjects)

(Indexed & Listed at :
Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest. U.S.A.)
Copernicus, Poland
Research Bib., Japan
(Indexed & Listed at : Indian Journal Index (IJIND EX))
UGC Approved List Sl. No. 41241

Year : 7
Issue : 25
July-September 2017
www.chintanresearchjournal.com

यावत जीवेत् सुखं जीवेत

Acharya Academy, Bharat

ISO : 9001-2008

शोध-आलेखानुक्रम

सम्पादकीय

* किसान की व्यथा-कथा का सांगी : चंद्रलाल बादी
  डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर 12–17
* **An Analysis of Changing Nature of the Office of C&AG**
  Jyoti 18–25
* **Genetic and Environmental Influences on Human Behaviorral Differences**
  Dr. Rekha 26–31
* **Crimes and Punishments in Medieval Period**
  Dr. K. Somasekhar 32–35
* **GONOO: A Tribal Hero of 1857 Revolt in Chotanagpur**
  Dr S N Singh 36–38
* **Right to Maintenance: An Indian Perspective**
  Alka Rani 39–42
* **Exchange Rate**
  Ajay Singh 43–47
* **Socio-Legal Aspects of Surrogacy in India**
  Usha Kiran 48–52
* **Man's Alienation from Man and Nature in the Poetry of Nissim Ezekiel**
  Payal Jain 53–57
* **The Role of Some Social Forces for Determing The Behaviour of Khap Panchayat In Haryana: An Analysis**
  Manu Dev 58–63
* **Gender Equality: Yet a Distant Dream**
  Manjit Kaur 64–67
* **Impact of the Second Administrative Reforms Commission Reports – An Assessment**
  K. Sukumar 68–71
* **E-Commerce in India**
  Dr. Kumbampati Pullarao 72–73
* **Management Theories in Kautilya's Arthashastra**
  Mandala Venkat Reddy 74–78
* **Socio-Cultural Relations in Telugu Literature**
  Sandhya Rani, M. 79–85
* **Skill India: A Long Way to Go**
  Swati 86–93
* **Position of Martial Rape in India**
  Dr. Preety Jain 94–97
* **Reservation Policy for Admission in Educational Institutions and its Relevancy in Modern India**
  Sanjay Kumar 98–107
* वाल्मीकि रामायण में सांस्कृतिक परिवेश का अध्ययन-विश्लेषण
  डॉ॰ मनजीत कौर 108–111
* पाण्डुलिपिविज्ञान : एक अध्ययन
  डॉ॰ पूनम 112–114

- वैदिककालीन कृषि प्रबन्धन का स्वरूप
  -डॉ. हरकेष बैरवा 97-101
- मध्यप्रदेश के जावद विधानसभा क्षेत्र में दलीय राजनीति
  -डॉ. बिनू झंवर 102-106
- डॉ. शकुन्तला कालरा के बाल साहित्य में बिम्ब-विधान
  -डॉ. भीम सिंह 107-111
- मानवता की संजीवनी : कबीर वाणी
  -डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर 112-119
- प्राचीन भारतीय इतिहास में शिल्प श्रेणी (600-300BC)
  -उमेश कुमार 120-123
- अभिनवभारती में निरुक्त का विवेचन
  -सुनील कुमार 124-129
- वीरता के प्रतीक : गुरु गोविंद सिंह
  -सुधा महला 130-136
- कवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्यों की अमर विरहिणी : उर्मिला और यशोधरा
  -संजय सिंह बैरवा 137-140
- बलबन कालीन मेवात : एक अध्ययन
  -शर्मिला यादव 141-145
- आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे आक्रोष
  -रेखा साहू
  146-153
- विमुक्त जातियों की शिक्षा, रोजगार, इतिहास और विकास पर मंथन (विशेषकर हरियाणा के संदर्भ में)
  -कृष्ण कुमार 154-158
- भारत में पंचायत राज का विकास
  -कृष्ण कुमार 159-164
- भूमंडलीकरण और गांधी : एक संक्षिप्त परिप्रेक्ष्य
  -अंजना कुमारी 165-169
- Innovations and Challenges in The Field of Teacher Education
  -Sushil Kumar 170-174
- Emergence of Modi's Foreign Policy
  -Dr. Sanjay Kumar 175-180
- Pakistan as a Factor in India-China Relationship
  -Sunil Kumar 181-186

Impact Factor : 2.645

Pramāna
International Refereed

Research Journal (ISSN : 2249-2976)
Year-7, Issue-25(July-Sept. 2017) (Page No. 137-140)

कवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्यों की अमर विरहिणी : उर्मिला और यशोधरा

संजय सिंह बैरवा
शोधार्थी (हिन्दी–विभाग)
राजकीय महाविद्यालय
बून्दी (राजस्थान)

शोध–आलेख सार

साकेत में जब एक उपेक्षिता ललना की आत्म–पीड़ा को वाणी देने का प्रयत्न किया गया तो उसकी विरहव्यथाजन्य संवेदनशील उदारता समस्त समदुःखभोगिनी प्रोषितपतिकाओं को निमंत्रण दे बैठी। इसी संदर्भ में उनका ध्यान कपिलवस्तु के राजोपवन में बैठी उसके ही समान स्थितिवाली एक अन्य प्रिय द्वारा परित्यक्ता राजवधू यशोधरा की ओर भी जाना स्वाभाविक ही था। इसलिए काव्य रचना के अन्य स्रोतों में गुप्तजी ने सर्वोपरि स्थान उसी को दिया है। इस संबंध में डॉ. रश्मि शर्मा का मानना है कि "भगवान बुद्ध और उनके अमृततत्व की चर्चा तो दूर की बात है, राहुल जननी के दो–चार आसूँ ही तुम्हें इसमें मिल जायें तो बहुत समझना और उनका श्रेय भी साकेत की उर्मिला देवी को ही है।"

मुख्य–शब्द : वियोगजन्य वेदना, भोग, तर्क–वितर्क, विरह, आत्मविश्वास ।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने 'काव्य की उपेक्षिताएं' शीर्षक निबंध में प्रिय द्वारा परित्यक्ताओं में सबसे प्रथम स्थान उर्मिला को देकर इस नाम के लिए आदिकवि वाल्मीकि के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की थी, इसके बाद पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' नामक लेख लिखकर एक बार पुनः कवि–कुल–गुरु वाल्मीकि की दयार्द्र न्यायवंचिता उर्मिला की ओर कविवर्ग का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया। आधुनिक युग के मानवतावादी राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी उसी काव्योपेक्षिता उर्मिला की विरहवेदनाभुति को 'साकेत महाकाव्य' में हिन्दी काव्य–जगत् की अनुपम निधि बना दिया।

साकेत में जब एक उपेक्षिता ललना की आत्म–पीड़ा को वाणी देने का प्रयत्न किया गया तो उसकी विरहव्यथाजन्य संवेदनशील उदारता समस्त समदुःखभोगिनी प्रोषितपतिकाओं को निमंत्रण दे बैठी। इसी संदर्भ में उनका ध्यान कपिलवस्तु के राजोपवन में बैठी उसके ही समान स्थितिवाली एक अन्य प्रिय द्वारा परित्यक्ता राजवधू यशोधरा की ओर भी जाना स्वाभाविक ही था। इसलिए काव्य रचना के अन्य स्रोतों में गुप्तजी ने सर्वोपरि स्थान उसी को दिया है। इस संबंध में डॉ. रश्मि शर्मा का मानना है कि "भगवान बुद्ध और उनके अमृततत्व की चर्चा तो दूर की बात है, राहुल जननी के दो–चार आसूँ ही तुम्हें इसमें मिल जायें तो बहुत समझना और उनका श्रेय भी साकेत की उर्मिला देवी को ही है।[1]"

आदिकाल से लेकर आज तक के सभी कवि और महाकवि इसके प्रति अपनी कृतज्ञता स्वीकारते आये हैं। कालिदास के काव्य की सफलता शकुंतला को मिली। भवभूति के 'उत्तर' की करुणा को कौन भूल सकता है? जायसी के 'पद्मावत' को अमरता नागवती के आसुँओं ने प्रदान की, इन सबके साथ स्वर मिलाकर मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपने काव्य में मौन वियोगिनी उर्मिला और दुःखी यशोधरा के प्रति अपनी सद्भावना व्यक्त की है। कवि के मान्य आदर्शानुसार यह भी एक तरह की साधना ही है। यदि प्रिय के साथ वनवासी होने का सीता का–सा सौभाग्य उसे सुलभ न हुआ तो क्या हुआ–

मानस–मन्दिर में सती पति की प्रतिमा थाप।
जलती–सी उस विरह में बनी आरती आप।।[2]

यह भोग से भी विषम वियोगजन्य वेदना इसे अति प्रिय है, क्योंकि सदा भाव सजग रखने वाली अभाव में भाव की स्थिति बनाये रखनेवाली यह वेदना ही तो है। कितने मनुहार से इस वेदना के प्रति उर्मिला के द्वारा आभार प्रकट किया गया है–

वेदने! तू भी भली बनी।
पाई मैने आज तुझी में अपनी चाह घनी।।[3]

प्रियतमा की वेदना से युक्त उर्मिला तो ठीक है, लेकिन इसके विपरीत यशोधरा प्रियतम द्वारा छोड़कर चले जाने पर मानवसुलभ तर्क जिज्ञासा के कुछ प्रश्न से शेष रह जाते हैं। यशोधरा के लिए यही कसक रही रह जाती है --

सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात।
पर चोरी–चोरी गये, यही बड़ा व्याघात ।।
सखि, वे मुझ से कह कर जाते।[4]

लक्ष्मण तो दिन के प्रकाश में राम के साथ विनम्र तर्क–वितर्क के पश्चात् सेवाभाव एवं स्नेहाग्रह से ही साथ चलने की अनुमति पाकर, समस्त आत्मीयजनों तथा उर्मिला की आँखों के सामने वनगामी हुये थे। एक विचारणीय प्रश्न यह भी है कि एक ओर तो भारतीय संस्कृति के अनुरुप सीता अपने पत्नित्व के अधिकार रक्षण स्पष्ट रुप से उद्घोषणा करती है कि –

सीतो ने सोचा मन में,
स्वर्ग बनेगा अब वन में ।
धर्मधारिणी हूँगी में,
वन–विरहिणी हूँगी में।[5]

इस प्रकार पति–परित्यत्कता तथा वियोग–विदग्धता की दृष्टि से दोनों की स्थिति सामान्य है साथ ही दोनों राजकुलोत्पन्न लाडली राजवधुएँ भी हैं। दोनों ने ही आदर्श हिन्दू नारियों की भाँति प्रिय के संयोग सुख से बढ़कर वियोग दुःख को दुलराया है, सहर्ष स्वीकारा है किन्तु एक दृष्टि से दोनों की स्थिति में बहुत बड़ा अंतर भी है। उर्मिला को इस वियोग अवस्था से पूर्व पति का भरपूर प्यार व सम्मान प्राप्त था। चौदह वर्ष की अवधिरेखा लाँघने के बाद पुनः प्रिय के सम्पूर्ण–संयोग सुख की प्राप्ति का निश्चय भी था। पर यशोधरा का भूत भी उतने निश्चय संयोग सुख में नहीं बीता था और अब वियोग भी निरावधि था। अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्ति का निश्चित सुखद विश्वास व आशा का सम्बंध ही तो समप्रति मार्ग की बीहड़ता व

कंटकाकीर्णता इतनी दुष्कर नहीं लगती। यशोधरा का वियोग तो जैसे चिर–वियोग अथवा अनिश्चित परीक्षा काल था। लेकिन अंत में इसकी उदार वरदाता पति की मंगलकामना करती हुई कहती है –

जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुःखी न हो इस जन के दुख से।
उपालम्भ में दूँ किस मुख से ?
आज अधिक वे भाते।[6]

लोकहित हेतु स्वेच्छा से समस्त राज सुखोपभोगों को त्यागकर वनवासी होने वाले राम के ही वंशज गौतमबुद्ध की पत्नि यशोधरा वज्रादपि कठोर बनकर विरहाग्नि परीक्षा देने को कृतसंकल्प है–

अब कठोर हो वज्रादपि, ओ कुसुमादपि सकुमारी।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।।[7]

यशोधरा ने तो जैसे हर स्थिति से समझौता कर लिया हो उसकी खुशी अपने प्रिय की खुशी में ही है। उसके व्यक्तित्व की गरिमा को ईर्ष्या जैसा तुच्छ विकार भला छू ही कैसे सकता है ? एक आदर्श पतिपरायणा साध्वी हर स्थिति में अपने पति की मंगलकामना में ही अपना हित देखती है। भारतीय संस्कृति के पुजारी गुप्तजी इस आदर्श को कैसे भूल सकते हैं –

आराध्य युग्म के सोने पर,
निस्तब्ध निशा के होने पर
तुम याद करोगे मुझे कभी,
तो बस फिर मैं पा चुकी सभी।[8]

ऐसा ही आत्मविश्वास उर्मिला में भी विद्यमान है। लक्ष्मण के शक्ति लगने की सूचना पर सभी आत्मीयजनों को दुखी कर देती है तो जाने क्यों उसके निरंतर अश्रु–प्रवाह पर जैसे रोक लग जाती है। ऐसी स्वभाविक पीड़ा प्रसंग के समय उस विषादिनी के विरह सन्तप्त व्याकुल मन को शान्त–स्थिर करने वाला उसका दृढ़ आत्मविश्वास ही तो था, जो उसको सहज बना रहा था। कितने सरलभाव से वह शत्रुघ्न को कहती है कि –

देवर तुम निश्चिन्त रहो, मैं कब रोती हूँ
जीते है वे वहाँ, यहाँ जब मैं जीती हूँ।[9]

उर्मिला एवं यशोधरा के विरह–संदर्भ में उल्लेखनीय बात यह भी है कि यशोधरा केवल पतिपरायणा पत्नि ही नहीं थी, बल्कि कर्तव्यनिष्ठ वधू के साथ–साथ मातृ–वत्सला माँ भी है। राहुल की जननी होने का सौभाग्य भी उसे प्राप्त है। उसके सहारे उसे जहाँ अपनी विरह विदग्ध घड़ियों को थोड़ा हल्का करने की सुविधा प्राप्त है, वहीं उसका मातृत्व–जन्य कर्त्तव्यभार भी बढ जाता है। उर्मिला भी विरह पीड़ित होने के साथ–साथ पारिवारिक सम्बंधों का निर्वाहन करने वाली है। दोनों विरहणियां विरहवेदना के साथ–साथ परिवार की नैतिक जिम्मेदारी भी उठाती है। यशोधरा के शब्दों में –

स्वामी मुझको मरने का भी, दे न गये अधिकार।
छोड गये मुझ पर अपने, उस राहुल का भार।।[10]

इस प्रकार उर्मिला एवं यशोधरा के सहर्ष दुःख–भोग ने एक ऐसे कर्तव्यनिष्ठ आशावाद को जन्म दिया। जिससे सिद्ध होता है कि भारतीय नारी अत्यधिक विषम वियोग ताप से व्यथित होने पर भी न

आत्महत्या करना चाहती है, न किसी भी प्रकार मर्यादा का उल्लंघन करना चाहती और न ही कर्त्तव्यपथ से पलायन होना चाहती है। तर्क की कसौटी पर यह सब चाहे व्यर्थ सिद्ध हो किन्तु जीवन में भावना की गहनता व तीव्रता भी कुछ भी करा सकने की प्रेरणा शक्ति के रुप में सर्वमान्य सत्य है इस आधार पर यशोधरा के आत्म–सम्मानित व्यथित वियोग के साथ ही उर्मिला का करुण अश्रुगान भी उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

सन्दर्भ————————————————————

1. डॉ. रश्मि शर्मा, साकेत का विशिष्ठ अध्ययन, पृ. 206
2. साकेत, पृ. 168
3. साकेत, पृ. 176
4. यशोधरा, पृ. 20
5. साकेत, पृ. 58
6. यशोधरा, पृ. 66
7. यशोधरा, पृ. 106
8. यशोधरा, पृ. 46
9. साकेत, पृ. 307
10. यशोधरा, पृ. 94

ISSN : 2348-0114
Impact Factor : 2.632
मूल्य : ₹ 500

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्

वर्ष : 4
अंक : 16
(अगस्त 2017–अक्टूबर 2017)
www.chintanresearchjournal.com
(UGC Approved List No. 42742)

संपादक
आचार्य (डॉ.) शीलक राम

हिन्दू

(International Refereed)

कला, साहित्य, मानविकी, समाज–विज्ञान, वाणिज्य, प्रबंधन, विधि एवं
विज्ञान विषयों का अंतरराष्ट्रीय मूल्यांकित त्रैमासिक रिसर्ज जर्नल

आचार्य अकादमी, भारत
ISO : 9001:2008

website : www.chintanresearchjournal.com

ISSN : 2348-0114
Impact Factor 2.632

International Refereed

हिन्दू

अतरराष्ट्रीय मूल्याँकित रिसर्च जर्नल

(कला, साहित्य, मानविकी, समाज-विज्ञान, विधि, प्रबंधन, वाणिज्य एवं विज्ञान विषयों पर केंद्रित)

(Indexed & Listed at : Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest. U.S.A.)
(Indexed & Listed at : Copernicus Poland)
(Indexed & Listed at : Research Bib, Japan)
(Indexed & Listed at : Indian Journal Index (IJIND EX))
(UGC Approved Journals List Sr. No. 42742)

वर्ष : 4 अंक : 16
श्रावण विक्रमी सम्वत् : 2074
अगस्त - अक्तुबर 2017

सम्पादक
आचार्य (डॉ०) शीलक राम

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्

आचार्य अकादमी, भारत
(ISO : 9001 : 2008)

शोध–आलेखानुक्रम

सम्पादकीय

* किसान की व्यथा–कथा का सांगी : चंद्रलाल बादी
  डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर 12–17
* An Analysis of Changing Nature of the Office of C&AG
  Jyoti 18–25
* Genetic and Environmental Influences on Human Behaviorral Differences
  Dr. Rekha 26–31
* Crimes and Punishments in Medieval Period
  Dr. K. Somasekhar 32–35
* GONOO: A Tribal Hero of 1857 Revolt in Chotanagpur
  Dr S N Singh 36–38
* Right to Maintenance: An Indian Perspective
  Alka Rani 39–42
* Exchange Rate
  Ajay Singh 43–47
* Socio-Legal Aspects of Surrogacy in India
  Usha Kiran 48–52
* Man's Alienation from Man and Nature in the Poetry of Nissim Ezekiel
  Payal Jain 53–57
* The Role of Some Social Forces for Determing The Behaviour of Khap Panchayat In Haryana: An Analysis
  Manu Dev 58–63
* Gender Equality: Yet a Distant Dream
  Manjit Kaur 64–67
* Impact of the Second Administrative Reforms Commission Reports – An Assessment
  K. Sukumar 68–71
* E-Commerce in India
  Dr. Kumbampati Pullarao 72–73
* Management Theories in Kautilya's Arthashastra
  Mandala Venkat Reddy 74–78
* Socio-Cultural Relations in Telugu Literature
  Sandhya Rani, M. 79–85
* Skill India: A Long Way to Go
  Swati 86–93
* Position of Martial Rape in India
  Dr. Preety Jain 94–97
* Reservation Policy for Admission in Educational Institutions and Its Relevancy in Modern India
  Sanjay Kumar 98–107
* वाल्मीकि रामायण में सांस्कृतिक परिवेश का अध्ययन–विश्लेषण
  डॉ० मनजीत कौर 108–111
* पाण्डुलिपिविज्ञान : एक अध्ययन
  डॉ० पूनम 112–114

* मैथिलीशरण गुप्त के काव्यों की वर्तमान युग में प्रासंगिकता
संजय सिंह बैरवा 115-118
* भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में पुलिस सुधार
राजेश कुमार चौहान 119-122
* प्रेमचन्द की दृष्टि में नगरीय जीवन
डॉ॰ शीला श्रीवास्तव 123-127
* साहित्य का बदलता समाजशास्त्र और भारतेन्दु युगीन नाटक
मीनू देवी 128-131
* वर्तमान समय में विभिन्न क्षेत्रों में योग का योगदान
सुमन 132-134
* चीन की सैनिक क्षमता और भारत के साथ चला डोकलाम विवाद - एक अध्ययन
डॉ॰ मुकेश देवी 135-138
* महिला समाज सुधार आंदोलन और गांधी जी
डॉ॰ हरदीप सिंह 139-144
* एम0ए0 जिन्नाह और पाकिस्तान की स्थापना
अमित कुमारी 145-148
* ਸਮਾਜ ਦੇ ਹਰ ਵਰਗ ਤੇ ਵੱਧਦੀ ਮੀਡੀਆ ਦੀ ਪਹੁੰਚ : ਸਕਾਰਾਤਮਕ ਤੇ ਨਕਾਰਾਤਮਕ ਪ੍ਰਭਾਵਾਂ ਦੀ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰੀ ਕਿਸਦੀ?
ਪਰਮਿੰਦਰ ਕੌਰ 149-152
* हरियाणा से प्राप्त गुप्तवंश और शाहीवंश के सिक्के एक अध्ययन
सुनील 153-159
* हुकम की दुग्गी : एक सामान्य परिचय
स्नेहलता 160-162
* भारत में राष्ट्रवादी आन्दोलन का उद्भव एवं विकास
Dr. Braham Parkash 163-166
* सूचना प्रौद्योगिकी और हिन्दी
डॉ॰ ललिता शर्मा 167-173
* वेद व उसकी वैज्ञानिकता
डॉ॰ जय सिंह 174-175
* श्रीमद्भगवद्गीता के सामाजिक पक्ष
डॉ॰ विशम्बर दास 176-178
* ऋग्वेद में नैतिक आदर्श
प्रमिला 179-182
* काव्य के साधारण लक्षण में भिन्न-भिन्न आचार्यों द्वारा परिवर्तन-परिवर्धन
वजीर सिंह 183-187
* Managing Workforce Diversity
Komal Vashisht 188-191
* Importance of Yoga in Sports in Modern Times
Vickey Punia 192-196

(International Refereed)
Impact Factor 2.632

हिन्दू अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक शोध-पत्रिका
वर्ष:4, अंक:16 (अगस्त-अक्तूबर, 2017) (पृ.सं. 115-118) (ISSN 2348-0114)

मैथिलीशरण गुप्त के काव्यों की वर्तमान युग में प्रासंगिकता

संजय सिंह बैरवा
शोधार्थी, हिन्दी-विभाग
राजकीय महाविद्यालय
बून्दी (राजस्थान)

शोध-आलेख सार

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ऐसे ही एक प्रासंगिक कवि है इनका आविर्भाव वर्तमान शती के प्रारंभिक काल में उस समय हुआ जब काव्य-भाषा एवं काव्य-विषय रीतिकालीन काव्य परम्परओं से आच्छादित एवं तद्‌युगीन प्रवृत्तियों से पूरी तरह आक्रांत थी तब गुप्तजी ने खड़ी बोली हिन्दी काव्य धारा को आचार्य महावीर प्रासाद द्विवेदी की प्रेरणा से नव-संस्कार प्रदान किया। गुप्तजी की प्रारंभिक काव्य-रचनाएं ब्रजभाषा में थी, परंन्तु बाद में खड़ी बोली हिन्दी के विकसित स्वरुप में अपने सर्जनात्मक दायित्व-बोध की पोषक बनी। अतः गुप्तजी ने खड़ी बोली के प्रतिष्ठापनार्थ ही अपनी सृजनात्मक मेघा का परिचय ही नही दिया अपितु काव्य भाषा का वह स्वरुप भी प्रतिपादित किया जो कवि के रुप में उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा, भाषा-भंडार और अनुभूतियों के परिष्कृत प्रतिपादन में समाहित रहती है तथा जीवन के साथ-साथ मानवीय मूल्यों के सतर्क चिंतन में युगयथार्थ का प्रतिपादन करती है। इस दृष्टि से प्रासंगिकता के संदर्भ में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त प्रासंगिक सिद्ध होते हैं।

मुख्य-शब्द : युगयथार्थ, राश्ट्रीय-अखंडता, सर्जनषील विचारक ।

संसार का शाश्वत सत्य मूलतः परिवर्तनशीलता है इसके कारण ही मानव और प्रकृति गतिमान, सक्रिय अथवा जीवन्त बने रहने की अनुभूति ग्रहण करते हैं। इसके साथ वैज्ञानिक सत्य यह भी है कि इस परिवर्तनशील संसार में परिवर्तन भौतिक, रासायनिक एवं जीव-वैज्ञानिक रुप में होते रहते है और इन परिवर्तनों से मानव-चेतना प्रवाहित होती रहती है। इसका सभी जीवधारियों पर प्रभाव होता है, परन्तु कभी सर्वाधिक संवेदनशील एवं चेतनाशील होता है और सामान्य मानव से कहीं अधिक प्रभावित अनुभव करता है। अतः जो जितना अधिक संवेदनशील, जितना बहुज्ञ, जितना अधिक पुरातनता के निकट और जितना अधिक समसामयिकता से प्रतिबध रहकर काव्य-सर्जना में संलग्न रहता है, वह उतना ही वर्तमान से आगे बढ़कर किसी भावी नवीनता की सृष्टि में सदैव प्रासंगिक हो जाता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ऐसे ही एक प्रासंगिक कवि है इनका आविर्भाव वर्तमान शती के प्रारंभिक काल में उस समय हुआ जब काव्य-भाषा एवं काव्य-विषय रीतिकालीन काव्य परम्परओं से आच्छादित एवं तद्‌युगीन प्रवृत्तियों से पूरी तरह आक्रांत थी तब गुप्तजी ने खड़ी बोली हिन्दी काव्य धारा को आचार्य महावीर प्रासाद द्विवेदी की प्रेरणा से नव-संस्कार प्रदान किया। गुप्तजी की प्रारंभिक काव्य-रचनाएं ब्रजभाषा में थी, परंन्तु बाद में खड़ी बोली हिन्दी के विकसित स्वरुप में अपने सर्जनात्मक दायित्व-बोध की पोषक बनी। अतः गुप्तजी ने खड़ी बोली के प्रतिष्ठापनार्थ ही अपनी सृजनात्मक मेघा का परिचय ही नही दिया अपितु काव्य

भाषा का वह स्वरुप भी प्रतिपादित किया जो कवि के रुप में उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा, भाषा-भंडार और अनुभूतियों के परिष्कृत प्रतिपादन में समाहित रहती है तथा जीवन के साथ-साथ मानवीय मूल्यों के सतर्क चिंतन में युगयथार्थ का प्रतिपादन करती है। इस दृष्टि से प्रासंगिकता के संदर्भ में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त प्रासंगिक सिद्ध होते हैं।

वर्तमान युग में देश, राष्ट्रीय अखंण्डता और विविध परिस्थितियों में राष्ट्रहित चिंतकों की दशा में भारत भारतीकार के रुप में ही प्रासंगिक है वे हमारे प्राचीन मूल्यों पर विचार करते हुये नव पीढ़ी को बतलाते हुये लिखते हैं -

हम कौन थे क्या हो गये
और क्या होगें अभी ?
आओ विचार करें मिलकर
ये समस्याएं सभी।[1]

वर्तमान परिस्थितियों में राष्ट्रीय अखंण्डता जिस संक्रमण काल से गुजर रही है, उसका अंकन गुप्तजी ने अपने समकालीन परिवेश में ही कर लिया था। पर वह अपनी प्रासंगिकता वर्तमान में भी यथानुगत हो रही है-

जाति धर्म का सम्प्रदाय का
भेद नही व्यवधान यहाँ,
सबका स्वागत सबका आदर
सबका सम सम्मान यहाँ।[2]

भारतीयता का संदर्भ धर्म-जाति-सम्प्रदाय से परे रहेगा तभी राष्ट्रीय-अखंण्डता का स्वरुप साकार हो सकता है। इस स्वरुप के सरंक्षण के लिए राष्ट्रकवि अतित गौरव के स्मरण के साथ समसामयिक असहाय अवस्था के परिवेश में भविष्य गामी उत्थान के प्रासंगिक सन्दर्भो में देख पाते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि गुप्तजी भावी पीढ़ी की चिंतनधारा के निर्देशक बनकर आज अप्रासंगिक नहीं हो सके हैं, क्योकिं वे जातीय गौरव के सम्मानकर्त्ता और वर्तमान में जीते हुये अतित से प्रेरित सर्जनशील विचारक कवि है उनकी काव्य-सर्जना मनोरंजन से परे आदर्श एवं प्रेरणाशील रही है। उनकी निगाह में काव्य सृजन का उद्देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं, बल्कि उपदेशात्मक रहा है -

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमे उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।[3]

गुप्तजी ने अपने समकालीन राष्ट्रनेताओं का प्रभाव ग्रहण किया, जिनमें महात्मा गांधी का प्रभाव सर्वोपरि है। नैतिक आदर्श एवं उनके पारिवारिक संस्कार और भावानूकुल मानस में शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति की कामना ने उन्हें काव्य में अपना आनुभूतिक स्तर विकसित राष्ट्रीयता का सांकेतिक आकलन करने में कभी भी पीछे नहीं रखा। उनकी राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति कोरी आग्रहशीलक और प्रचारात्मक न होकर स्वदेशी चिंतन से युक्त है। वे राष्ट्रीयता के लेशमात्र क्षय पर अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुये लिखा है -

खोया है अपने ही हाथों,
हमने अपना हिंदू राज्य,
सबका राज्य चाहता था, वह
रहे एक-सा जो अविभाज्य।[4]

गुप्तजी के काव्य की प्रासंगिकता आज भी मलिन नहीं है, क्योंकि उनकी काव्यानुभूति में जीवन्तता विद्यमान है। राष्ट्रीयता, स्वदेशीयता आदि का मात्र आकलन ही उनकी कृतियों का प्रतिपाद्य नहीं है और न ही राजनीतिक आन्दोलन। इन सबसे परे हटकर समाजिक एवं पारिवारिक परिवेश के चिंतन की दिशाएं राष्ट्रकवि को कदापि अप्रासंगिक नहीं होने देती। गुप्तजी के काव्य समाज और परिवार में नारी का स्थान नारी मूल्य अपनी पूर्ण व्याप्तता के साथ की काव्याभिव्यंजना की निधि बन गये है। नारी उत्थान का चिंतन उनकी प्राथमिकता है, इसलिए उनके काव्य कृतियों में नारी का उदात्त और गरिमामय चरित्र चित्रण है। साकेत की

कैकेयी की स्थिति में गुप्तजी की समसामयिक चेतना सम्पन्न नारी का औदात्य और पश्चाताप वृत्ति लिये हुये है –

थूके , मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई कह सके कहे, क्यों चूके।
छिने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
रे राम दुहाई करुँ और क्या तुझसे।।[5]

वर्तमान युग के मुक्त यौनाचरण को भारतीय संस्कारिता में कोई स्थान नहीं है, क्योंकि मुक्त यौनाचरण अनेक सामाजिक एवं पारिवारिक विसंगतियों का जनक है तथा सामाजिक संस्कारों की पतितावस्था की पराकाष्ठा का प्रतीक है। गुप्तजी का संस्कार इन यौनाचरण की स्वच्छंदता की अनुमति न देकर अपने कृतित्व को निश्चित ही प्रासंगिक बनाये रखता है। 'पंचवटी' में शूर्पणखां के स्वेच्छाचरण कि स्थिति में लक्ष्मण द्वारा उनके प्रति किया गया व्यवहार प्रतिबंधात्मक प्रक्रिया का अंग बनकर स्वयं प्रासंगिक हो गया है –

न तू फिर छल सके किसी को,
मारुँ तो क्या नारी जान ?
विकलांगी ही तुझे करुँगा,
जिससे छिप न सके पहचान।[6]

आज नारी समाज की महत्वपूर्ण इकाई के रुप में अपनी महत्ता और अस्मिता के लिए संघर्षरत है, क्योंकि वह पुरुष की मात्र अंकशायिनी ही नहीं है, सहयोगिनी हो सकती है। इसलिए गुप्तजी की यशोधरा की प्रतिक्रिया स्वयं आज भी प्रासंगिक है। गुप्त की नारी अपने पति को सिद्धी हेतु चोरी-चोरी जाने पर अपना दुख प्रकट करते हुय अपनी अस्मिता पर प्रश्न उठाती हुए कहती है –

सिद्धि हेतु स्वामी गये
यह गौरव की बात
पर चोरी-चोरी गये यही बड़ा व्याघात।[7]

गुप्तजी के काव्य नारी जीवन के सांस्कृतिक, पारिवारिक तथा संस्कारित दायित्व के विविध स्तरों में प्रासंगिकता को ग्रहण करते है। नारी अस्मिता की प्रासंगिकता की निरंतरता बनाये हुए साकेत की उर्मिला अपने पति लक्ष्मण को अपनी चिंता छोड़कर अपने कार्य में रत रहने का संदेश देती हुई संबोधित करती है–
मेरी चिंता छोड़ों,

मग्न रहो नाथ आत्मचिंतन में,
बैठी हूँ मैं फिर भी
अपने इस नृप – निकेतन में।[8]

गुप्तजी के नारी पात्र आज भी प्रासंगिक है क्योंकि करुणा और सहानुभूति के प्रश्रय में न पलकर, संघर्षरत परिवेश में अपनी मर्यादा, गौरव, अस्मिता, धैर्यशीलता, उदात्तता की उच्चता ग्रहण करते हैं। जो युग-मार्ग प्रशस्त करने में सहगामी तत्व बन जाते है। उनके नारी पात्र पुरुष की भोग लिप्सा के रीतिकालीन उपादान न होकर स्वतन्त्र नारी अस्तित्व के परिचायक बनकर आज भी प्रासंगिक हो उठते है तभी साकेत की सीता अपने अस्तित्व बोध के निकष पर यह कहने में नहीं चूकती कि –

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ।
अपने पैरों पर आप खड़ी चलती हूँ ।।
श्रमवारि बिन्दु सम स्वस्थ युक्ति पलती हूँ।
अपने आंचल से व्यजन आप झलती हूँ ।।[9]

निष्कर्षतः गुप्तजी के काव्यों की प्रासंगिकता के संदर्भ में यह कहना भी अधिक समाचीन होगा कि उन्होंने पौराणिक, रामायणिक और महाभारतकालीन पात्रों की सर्जना कर अपनी काव्य प्रतिभा का आधुनिक

युगबोध के साथ ऐसा परिचय दिया है कि भारतीय समाज एवं परिवार की असमर्थता, अभावग्रस्तता और विसंगतियों के उन्मूलन के लिए नवीन प्रतिबद्धता की सर्जना होने लगती है उनके नारी पात्र आज भी अप्रासंगिक नहीं हो पाते, क्योंकि उनके माध्यम से ही भारतीय पारिवारिकता की स्थितियों में नारी जीवन के नाना रुपों नाना प्रसंगों एवं मानवीय संबंधो की युगीन संवेदना प्रेरक सिद्ध होती है जो आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ

1. भारत भारती, मुक्तककाव्य, पृ० 11
2. भारत भारती, मुक्तककाव्य, पृ० 154
3. भारत भारती, मुक्तककाव्य, पृ० 157
4. अंजलि और अर्घ्य, मुक्तककाव्य, पृ० 10
5. साकेत, महाकाव्य, पृ० 155
6. पंचवटी, खण्डकाव्य, पृ० 47
7. यशोधरा, चम्पूकाव्य, पृ० 20
8. साकेत, महाकाव्य, पृ० 183
9. साकेत, महाकाव्य, पृ० 138